श्री निरंजन ग्रंथमाला पुष्पमाला-30

ॐ

श्री

ललिता

सहस्त्रनाम-भाष्य

"श्री" सोमानन्द

श्री सोमानन्दनाथ

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मै वाहं न शोभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥

।। श्रीः ।

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्यवर्य
श्रीमच्छंकर भगवत्पादप्रतिष्ठित
श्रीकांञ्ची कामकोटि पीठाधिप जगद्गुरु
श्रीमच्चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती श्रीपादादेशानुसारेण
श्रीमज्जयेन्द्रसरस्वतीश्रीपादैः क्रियते नारायणस्मृतिः ।

ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गतं श्रीहयग्रीवा गस्त्यसंवादरूपेण प्रवृतं श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रं 'मिथ्याजगदधिष्ठाना, त्रिवर्गदायी, स्वर्गापवर्गदा' इत्यादिभिः सहस्रनामभिः सकलब्रह्माण्डजनन्याः श्रीललिताम्बिकाया निर्गुन, सगुणात्मकत्व-सकलेष्टफलदातृत्वादि मह्मिमविशेषान् प्रतिपादयति। शतस्त्रोत्रस्य अम्बिकोपासकाग्रेसरेण श्री भास्कररायाचार्येण संस्कृतभाषायां श्रुति-स्मृति पुराणादि प्रमाणानुसारेण कृतंभाष्यं मन्त्रोद्धारादि विशेषादियुतंभक्तेषु प्रसिद्धं प्रकाशते।

शतन्नान्मामर्थं हिन्दीभाषाज्ञानां निकटे प्रचारयितुं वद्धश्रद्धेन बिहारप्रान्तीयदरभंगा-अभिजन श्रीसूर्यकान्तठाकुरमहोदयेन (श्रीसोमानन्देन) सरलहिन्द्यां कृता टीका श्री भास्कररायभाष्यानुसारं क्रमश शतन्नाम्नामर्थं विशदयति ।

हिन्दीज्ञाः देवीभक्ताः एतटीकासाहाय्येन श्रीललितासहस्रनामार्थं जानन्तःतत्तदधिकारानुरूप्येन देवीनाराधयन्तः एतदनुग्रहा भाष्यपरम्पराः प्राप्नुयुरिति,

श्री सूर्यकान्तठाकुरमहोदयोऽपि एवंविधोतमग्रन्थरचनेन भक्तलोकरस्योपकुर्वन् अभ्युदय निःश्रेयसपरम्परा अवाप्नुयादिति चाऽऽशास्महे।

यात्रास्थानम् नारायणस्मृतिः
फतुवा (बिहार)
विक्रम सं-2031
आनन्द चैत्रबहुलाष्टमी

ॐ

श्री गणेशाय नमः

श्री भासुरानन्द नाथ विरचितया

श्री नाथ नवरत्न मालिका

श्री नाथादि त्रितयं नत्वा गम्भीर राय सूरिसुतः
नाथ नवरत्न माला गूढ़ार्थ व्यावृत्ति तनुगते

हंसः सोऽहं मन्त्रमयै श्वास निकायैर्या गायत्री जन्तुषु पिनद्धा ।
तद्रूपः सन्नाविरभद्वासनया यस्तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।1।।
उद्यद्भास्वन्मण्डल कालाह्निन नित्या विद्यारूपः प्रापषऽथीनरभावम ।
यस्तीर्थात्मा मण्डल पूर्णाक्षर वर्ष्मा तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।2।।
तत्पाश्चात्य प्राण समहैर्नवनाथा यः षष्ठ त्रिंशत्तत्वमयः षोडशनित्या ।
एवं रीत्या वासित संध्या त्रय मुर्तिस्तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।3।।
श्वासै षष्ट्या षष्टि घटी दैवत रूपो मेष प्रष्ट द्वादस राशि प्रतिमानः ।
अर्काद्यात्मा यो नव संख्या ग्रह मुर्तिस्तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।4।।
पञ्चात्मा भूत निकायो गतमायो यः पञ्चाशद्वर्ण वपुश्चक्रगताभिः ।
शक्यालीभिः संङतिमानेक नवम्या तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।5।।
यद्वापञ्चाशिलपि पीड़ैकरदाना मावृत्या सीद्यः फलवान देशिक वर्यः ।
ज्ञानोतुङ्गो डरलकसह षटक वृत्तैस्तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।6।।
नत्रोदगढ़ो (4320)देकिराडभत (5)समहैरेनोवारी यो नवनाथ ग्रहचक्रेः ।
नक्षत्रम्या वृत्तिभिरानन्द शरीरस्तं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।7।।
नित्या वृत्ता वीशलयः सन्नचलोऽभुनाड्या वृत्तौ राशिषु नाना जप रूपः ।
अभ्यस्यभ्दिस्तत्त्व गणैरून्नत मर्तिस्त्वं सन्मार्ग मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।8।।
धत्युर्वीशाष्टैष्द्र दिगाशाष्टैन्द्र दिगाशाहि यग त्रिप्रोक्ताभिः ।
प्रोक्ताभिः पुंहेतिभिरम्वाभिरभिन्नः मत्त मयूरं गुरूमीडे ।।9।।
इतग्रन्थ्नाभुदास्कर रायो नवरत्नैर्मालामग्रयां नाथ रहस्यं गमयन्तीं ।
यषामेषा कण्ठगताते जगदम्बा विद्याभ्यासादत्र जनुष्येव महेशः ।।10।।

इति श्री महेश नाथ कृता नाथ नवरत्न माला समाप्ता ।।

ॐ

ॐ श्री सद्‌गुरवे नमः ॐ श्री गणेशाय नमः

उद्‌गम-उल्लास

"1927 पौष पूर्णिमा 4 बजे संध्या
गर्भ में ही बिक गया नागा जी के हाथ से
कहा उसने, 'काँता देवी ने खरीदा है'
तब हुआ जन्म 48 घंटों की दौड़ धूप के बाद
बंदियों और चारणों में बांटे गये वस्त्र
बजते नगाड़ों मे नाचते थे सभी

* * *

अयोध्या के परमसंत नरसिंह दास ने
'राम मंत्र' देकर फूँक दी चेतना
अपने मे सदा आनन्द परम मिलता था
महामण्डलेश्वर विद्यानन्द स्वामी मे, 11 की
आयु में, कृष्ण का मंत्र मोहन भर दिया
तभी से दसोपनिषद् और तुलसीदास के
द्वादश ग्रंथों मे अनुशीलन चला था
गीता ज्ञानेश्वरी और दासबोध से तत्व जगा

* * *

चौदह की आयु में सिद्ध कलिया बाबा ने
काली का महामंत्र कानों मे पूर्ण किया
तबसे बारह वर्षों तक चले अनुष्ठान सब

तेज का अनुभव होता था प्रतिक्षण

* * *

छब्बीस की आयु में गुरु श्री निरंजन ने प्रसन्न हो
ब्रह्मविद्या का ज्ञान दिया था
पाँच वर्ष बाद श्री फ्रेंच बाबा ने
समाधि विद्या से नेत्रोन्मीलन किया था
तब से भवजाल छूटा भवसागर
उदासीन वदासीन जीवन चलने लगा
संतों की सेवा निरंतर 35 वर्षों से
कर रहा था करने ही लगा
भक्तों से शिक्षा ली प्रभु शरणागति की
इन्द्रिय शास्त्रीय हों, विवेक भरा रहे
सर्व कर्म प्रभु अर्पणमय हो
शान्ति पाठ समता को सदा बरसावें
विश्व मे सबका जीवन रहे मंगलमय
जय सब गुरुओं की, जय हो 'श्री' की
जय सब संतों की जो आने वाले हैं"

ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ गुरुदेव का परिचय देती है। फिर भी उल्लास के अतिरेक में लिख रहा हूँ। ज्ञानीजन, बुधजन क्षमा करें। गुरुजनों का मातृवत् स्नेह प्रसिद्ध है। उसी स्नेह और क्षमाशीलता का आश्रय है। वैसे अकुल का कुल क्या होगा! विदेह के दैहिक परिचय का प्रयोजन ही क्या है!

विदेह जनक की भूमि है मिथिला। जगज्जननी जानकी सीता की जन्मभूमि है। याज्ञवल्क्य, गार्गी कपिल कणाद की है मिथिला। मिथिला भारत माता का हृदय प्रदेश है। जह्नु, कात्यायन, शृंगी ऋषि जैसे तपस्वियों का क्षेत्र है। गौतम बुद्ध, मंडन मिश्र और भारती की मिथिला। वस्तुतः

मिथिला वही है जहाँ जीव भाव तिरोहित हो, शिव भाव रह जाय, देहभाव नष्ट हो, शुद्ध चैतन्य रह जाय। मिथिला विदेह है, विदेहों और वैदेहियों का क्षेत्र है।

मिथिला के सिंहवारा क्षेत्र में, अनुपम हरितमाओं के मध्य बसा है सुरम्य ग्राम हनुमाननगर। जनवरी 1927। पौष पूर्णिमा के दिन माता कुमुदिनी देवी की गोद मे आया एक अद्‌भुद्‌ बालक। अत्यन्त कठिनाइयों के उपरान्त जन्म हुआ। मानों भूमि पर आना ही न चाहते हों। आये थे एक नागा साधु दरवाजे पर और जन्म सम्बन्धी कठिनाइयों को देखते हुए, किसी की सलाह पर, पितामह श्री रामेश्वर शर्मन्‌ ने गर्भस्थ शिशु को उनके हाथ ''बेच'' दिया। नागा बाबा ने घोषणा कर दी, ''कांता देवी ने खरीदा है।'' जन्म के पहले ही जिनकी काया बिक गयी, उनमे कभी भेदभाव टिक नहीं पाया, तो इसमें क्या आश्चर्य। माता पिता के एक मात्र पुत्र! सभी के प्रिय। एक अनाम सन्यासी द्वारा शिशु का नामकरण सूर्यकान्त। बान्यकाल दरभंगा नगर में बीता। कर्मक्षेत्र ऐसा कि सब दिन दूर-दराज के ग्रामों में ही रहकर अनवरत सेवा का कार्य चला, चल ही रहा है। बीच मे तीन वर्षों के लिए, भारतीय सेना के साथ, चिकित्सा पदाधिकारी के रूप मे, पार्वत्य प्रदेश भूटान प्रवास। दैहिक, दैविक, आधि-भौतिक सभी जाल से उद्धारक हैं।

अपनी स्वयं की विलक्षण प्रतिभा के साथ ही, अयोध्या के परम संत नरसिंह दास, व्योम-बिहारी महामण्डलेशवर विद्यानन्द स्वामी, सिद्ध कलिया बाबा, श्री शिवराम किङ्कर योगत्रयानन्द स्वामी, तिब्बत के लामा गुरु श्री केमछो रिम्पोची, श्री फ्रेंच बाबा और गुरु श्री निरञ्जनानन्द नाथ की सम्मिलित शक्ति के तेज-पुञ्ज का नाम है श्री सोमानन्द नाथ। इसी नाम से पुकारा ब्रह्म विद्या गुरु श्री निरंजन ने।

समाधि विद्या के गुरु श्री फ्रेंच बाबा। महा अवधूत। फ्रांस देश मे जन्म। जेट ईंजनों के प्रारम्भिक आविष्कारकों में एक। डिजाइन ईञ्जिनीयर। नाम एडम पॉल। बौद्ध भिक्षु आर्यदेव के रूप में भारत आये। बम्बई में

भिक्षाटन करते भिक्षु जगदीश कश्यप से भेंट हुयी। उन्ही के साथ आये नालन्दा पाली संस्थान (बिहार),-फ्रेंच, जर्मन और हिब्रू भाषा के प्राध्यापक रूप में। फिर गये दरभंगा मिथिला अनुसंधान संस्थान में। पॉन एशियन बुद्धिस्ट सोसाइटी के अध्यक्ष रहे। भृगु-पद-चिन्ह शोभित वक्ष-स्थल। आगम-पुराणों के ज्ञाता। 1968 मे डा. रिचर्डसन के साथ फ्रांस लौटे। वहीं महानिर्वाण। ये है श्री फ्रेंच बाबा।

*   *   *   *

मनुश्चन्द्र कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ।।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा ।
क्रोध भट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः ।।
(त्रिपुरा रहस्य, मा. ख. 48/58-60)

ब्रह्मविद्या विशारदों की लम्बी परम्परा रही है। कपिल, अत्रि, वशिष्ट, सनक, सनन्दन, भृगु, सनत्सुजात, वामदेव, गौतम, शौनक, शक्ति, मार्कण्डेय कौशिक, पराशर, शुक, अङ्गिरा, कण्व, जाबालि, भारद्वाज, वेदव्यास, ईशान, रमण, कपर्दी, भूधर, सुभट, जलज, भूतेश, पद्‌म, विजय, मरण, पद्‌मेश सुभग, विशुद्ध, समर, कैवल्य गणेश्वर, सुपाथ, योग, बिबुध विज्ञान, अनङ्ग, विभ्रम दामोदर, चिदाभास, चिन्मय, कलाधर, वीरेश्वर, मन्दार, त्रिदश, सागर, मृड, हर्ष, सिंह गौर, वीर, घोर, ध्रुव, दिवाकर, चक्रधर, प्रथमेश, चतुर्भुज, आनन्द भैरव, धीर, गौरपाद-सभी गुरुमंडल के देदिप्यमान्‌ नक्षत्र हैं। उपासकों में और भी दिव्य नाम हैं। श्री गौड़पादाचार्य के पाँच शिष्य प्रख्यात हैं पावक, पराचार्य, सत्यनिधि, रामचन्द्र और गोविन्द। श्री गोविन्दपादाचार्य के ही शिष्य हुए आद्य शंकराचार्य। भगवत्‌पाद आद्य शंकराचार्य की ख्याति सनातन धर्म के उद्धारक रूप में सर्वविदित है। इनके अनेक शिष्यों में 5 सन्यासी और 9 गृहस्थ, 14 शिष्य मुख्य है। इनकी शिष्य परम्परा, जिनमें सन्यासी भी हैं, गृही भी, पूरे देश विदेश में व्याप्त है। भगवत्‌पाद आद्य शंकराचार्य के शिष्यों में एक प्रमुख शिष्य हैं सुरेश्वराचार्य (मंडन मिश्र)। ये ही श्री

शंकर द्वारा स्थापित शारदा पीठ के प्रथम शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। (एक मत यह भी है कि सुरेश्वराचार्य श्रृंगेरी के प्रथम शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त हुए)। इस आम्नाय का क्रम इनके बाद इस प्रकार चला।

श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य, श्री चित्सुखाचार्य, श्री सर्वज्ञानाचार्य, श्री ब्रह्मानन्द तीर्थ, श्री स्वरूपाभिज्ञानाचार्य, श्री मङ्गलमूर्त्याचार्य, श्री भास्कराचार्य, श्री प्रज्ञानाचार्य, श्री ब्रह्मज्योत्स्नाचार्य, श्री आनन्दवीरभावाचार्य, श्री कलानिधितीर्थ, श्री चिद्विलासाचार्य, श्री विभूत्यानन्दाचार्य, श्री स्फूर्तिनिलयपाद, श्री वरतन्तुपाद, श्री योगारूढ़ाचार्य, श्री विज्ञानडिण्डिमाचार्य, श्री विद्यातीर्थ, श्री चिच्छक्ति देशिक, श्री विज्ञानेश्वर तीर्थ, श्री ऋतम्भराचार्य, श्री अमरेश्वर गुरु, श्री सर्वमुखतीर्थ, श्री स्वानन्द देशिक, श्री समर रसिक, श्री नारायणाश्रम, श्री बैकुण्ठाश्रम, श्री त्रिविक्रमाश्रम, श्री शशिशेखराश्रम, श्री त्र्यम्बकाश्रम, श्री चिदम्बराश्रम, श्री केशवाश्रम, श्री चिदम्बराश्रम, श्री पद्मनाभाश्रम, श्री महादेवाश्रम, श्री सच्चिदानन्दाश्रम, श्री विद्याशंकराश्रम, श्री अभिनव सच्चिदानन्दाश्रम, श्री नृसिंहाश्रम, श्री वासुदेवाश्रम, श्री पुरुषोत्तमाश्रम, श्री ज्ञानार्चनाश्रम, श्री हरिहराश्रम, श्री भावाश्रम, श्री ब्रह्माश्रम, श्री वसनाश्रम, श्री सर्वज्ञानाश्रम, श्री प्रद्युम्नाश्रम, श्री गोविन्दाश्रम, श्री चिदाश्रम, श्री विश्वेश्वराश्रम, श्री दामोदराश्रम, श्री महादेवाश्रम, श्री अनिरूद्धाश्रम, श्री अच्युताश्रम, श्री माध्वाश्रम, श्री आनन्दाश्रम, श्री विश्वरूपाश्रम, श्री चिद्घनाश्रम, श्री नृसिंहाश्रम, श्री मनोहराश्रम, श्री प्रकाशानन्द सरस्वती, श्री विशुद्धानन्दाश्रम, श्री वामनेश, श्री केशवाश्रम, श्री मधुसूदनाश्रम, श्री हयग्रीवाश्रम, श्री प्रकाशाश्रम, श्री हयग्रीवाश्रमसरस्वती, श्री श्रीधराश्रम, श्री दामोदराश्रम, श्री केशवाश्रम, श्री राजराजेश्वर शंकराश्रम, श्री माधवतीर्थ, श्री शान्त्यानन्द, श्री चन्द्रशेखराश्रम, श्री श्रीविष्णु तीर्थ, श्री त्रिविक्रम तीर्थ ।

प्रभु श्री त्रिविक्रम तीर्थ के शिष्य थे भगवान श्री निरंजन श्री निरञ्जनानन्दनाथ, श्री गुरुदेव के ब्रह्मविद्या गुरु। परम योगी, ब्रह्मनिष्ठ महात्मा।

भगवान् निरंजन
(श्री निरञ्जनानन्द नाथ)
अगाध संशयाम्भोधि समुत्तरण तारिणीम् ।
वन्दे विचित्रार्थपदां चित्रातां गुरुभारतीम् ॥

बचपन का नाम मुरारी। कच्छ का पावन क्षेत्र। कच्छ में है माण्डवी। माण्डवीभरत। रामानुज भरत। ''भरत सरिस को राम सनेही'' उन्हीं भरत की महीयसी गृहणी माण्डवी। मिथिला की राजकुमारी, अवधेश की वधू। मनस्विनी सीता की अनुजा माण्डवी। सदा अपने को गौण बनाकर रखने वाली महिमामयी नारी। इधर कच्छ की माण्डवी। विचित्रा-विभाति। माण्डवा के राजकुल के, सारस्वत ब्राह्मण राजगुरु के पुत्र के रूप में भगवान् निरंजन का जन्म। 13 वर्षों तक विन्ध्याचल के काली खोह में रहकर गहन साधना। 1927 ई. मे मिथिला आये। 1965 ई. में महासमाधि। ''व्याप्त रिरंजन मिथिला देश।'' कैसा संयोग योग है कि मिथिला के मंडन मिश्र (सुरेश्वराचार्य) शारदा पीठ गये। उसी पीठ के भगवत्पाद शंकराचार्य प्रभु श्री त्रिविक्रमतीर्थ के शिष्य श्री निरंजनानन्द नाथ पश्चिमतटवर्ती कच्छ से आकर मिथिला मे जागरण का तूर्यनाद किया। श्री विद्या का एक बार फिर बीजारोपण हुआ। वही शंख है गुरुदेव श्री सोमानन्दनाथ के हाथ में। शंखनाद गूञ्ज रही है, दिक्-दिगन्त में महाप्राण शक्ति आलोड़ित है

''उत्तिष्ठा जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधयत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति।।''

(कठो. 1/3/14)

रत्नेश्वर

ॐ श्री गुरुम् गजमुखम् भजे

श्री गुरु स्तवनम्

वन्देऽहम् प्रभुवर श्री दत्तम्
गौड़ाचार्यम् गुरु गोविन्दम् ।
शंकर पाद सुरेश्वर वंद्यम्
देव निरंजन पाद प्रतिष्ठम् ।।
सोमानन्दम् शशिद्युति युक्तम्
वाक चतुशष्टय पूजित वन्द्यम् ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीयम्
भक्त चतुर्विधि पूजित चरितम् ।।
अग्निकला साधार प्रतिष्ठम्
सूर्यकला सुपात्रम् धेयम् ।
इन्दुकला परिपूरित पात्रम्
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर सहितम्।।
कला सदाशिव शोषित पुण्यम्
आर्द्रम् ज्वलतीति हंसः सोहम्।
नाथ त्रय सुतर्पण नित्यम्
तत् परिपूज्य सदा श्री चरणम् ।।
इन्द्र महेन्द्रोपेन्द्र सुरासुर
वक्ष यक्ष गन्धर्व सुपूज्यम् ।
सिद्ध गणार्चित सेवित पाद्यम्
रवि शशि शुचि नीराजित चरणम् ।।
हनुमति नगरे मिथिला देशे
कुमुदिनी पालित जातं पुष्पम् ।
सदा बिहार निकुञ्ज निवासे
भक्तोद्धारीति लक्ष्यम् पूतम ।।

पूर्णानन्द

अक्ष-माल

अमृत का सन्धान कहो
आगम का भास्वर गान कहो
इस कुल का ऐसा मान कहो
ईहा इति का ध्यान कहो
उर्वी का उन्नत प्राण कहो
ऊसर का महल उतान कहो

ऋजुरोहित साधक सम्मोहित
ऋतुभुज देख जिसे हों मोहित
लृक स्मरहर शब्द रचाते
लृक तौर्यत्रिक डमरू गाते

एकाकिन के मंगल दाता
ऐतिह्य सकल गुण कीर्तन गाता
ओष त्रितय का जो भय त्राता
औरस जिनके उनको जाता
अंवर मे है रास रचाता
अहह! हृदय को बहुविधि भाता

कमलासन पर बैठी माता
खल-खल करती मधुरा कान्ता
गम्य गणार्चित आदि प्रमाता
घट प्रमेय झट खोल अनंता
ङकारं पञ्चामृतं, भज पाहिमां भज पाहिमां

चन्द्रशेखर हैं मृदुल, मन देख-देख
छत्र-कलि वारिद् स्वयंभू हैं त्रिरेख
जगत्प्राण प्रमथाधिप जो लेता परेख
झर्झर-स्वर संधान यथा धुर्जटि सरेख

ञकार अहु संयुक्तं, वर्ण पञ्च प्राणात्मकं

टन-टन-टन टेरत चन्द्रघंटिका
ठहर जरा ऋषिरुक्त अम्बिका
डमर पीठ पर ज्ञान मुद्रिका
ढक्का निनाद स्वतंत्र कालिका
णाकारं देवि नमस्तुभ्यं, महासौख्य प्रदायकम्

तरल तंत्र श्रीकंठ प्रभष्टक
थल पद, नभ उनके हैं मस्तक
दभ्र प्रवृत्ति प्रकाश त्रयम्बक
धवल धनद धी शान्ति प्रवर्तक
नमस्ते ॐकाराय-त्रिविन्दु सहितं सदा

पञ्चतत्व नित्या विराजित पंचदशी
फलिन कला संफुल्ल, निरख तू षोडषी
बद्ध अयन वत्सर प्रतिष्ठित, अग्नि, सूर्य मंडलशशी
दभ्रकुंभ सहस्त्रपद्मा, शिवा साम्भवि श्रेयषी
महाप्रलय साक्षिण्यै, महामोक्ष प्रदायकम्

यज्ञ मात्रिका वर्ण तीर्थ श्री विष्णु परात्पर गुरु यत्र
रत्न सानु पर भासमान, परमेष्टि त्रिविक्रम गुरु छत्र
लता वृक्ष स्कंध परम गुरु, व्याप्त निरंजन मिथिला देश
वरिवस्या उन्मेष विंव रवि, स्वगुरु ''सोमानन्द महेश''
शर्व शक्ति संयुक्त पुष्पका, महिमह मिश्रित परा पराग
षट्पद श्री विद्या प्रसून का, साधक करता नित्य योग
सकल सरोज सूर्य सरसी के, मानस संगम का उद्यान
हर्म्य इष्ट औ मंत्र गुरु का, कौन कहे वह गुप्त ज्ञान
क्षमा महेश्वर, गुरु, पितु माता, अक्ष कक्ष तापस द्युतिमान

मदन मिश्र

अर्घ्य

श्री गुरु चरणों मे पुष्प-वृष्टि
व्याप्त निष्कल सकल सृष्टि
शिव उमा प्रणव में एक दृष्टि
ओम् नमो नमः गणपति उच्छिष्ट

निर्विघ्न निरापद सर्व कर्म
निष्काम विरागी प्रबल वर्म
जप-तप नित्यार्चन योग मर्म
है सार्वभौम कल्याण धर्म

नीरव मौन शान्त अनुशीलन
नारद वीणा शाश्वत गायन
तुम्बरु तन्मय मधुर मिलन
सोमामृत आनन्द सघन
आनन्द स्वरूप निमग्न निरन्तर
लख उदासीन निरपेक्ष शुभंकर
अमृत-दान विषपान कंठतर
साधु सन्त सन्यासी प्रियवर

नटी चित्-शक्ति क्रीड़ा लीलामयी
नृत्यशीला सकल सृष्टि मृण्मयी
सर्वज्ञा सर्वाङ्ग सुन्दरि तन्वंगी तन्मयी
अन्तर्मुखसमाराध्या श्रीविद्या चिन्मयी

ललिता विलासिनी महालास्य
गुरु तत्त्व प्रचालित सहज भाष्य
नयनाश्रु अर्घ्य अर्पित सहास्य
वृत्त परिधि उपासक विन्दुलास्य

व्यष्टि ललिता स्वात्मरूप
समष्टि महाकामेश्वर स्वरूप
गुरुदेव जिनके सगुण रूप
संविद् सशक्ति समरस अनूप

श्री नाथ गुरुदेव सतत् ध्यान
ललिता ललिताम्बा महत् मान
गुरुदेव ललिता ऐक्य ज्ञान
ललिता गुरुदेव सादर प्रणाम्

रत्नेश्वर

श्री ललिता त्रिपुर सुन्दरी
अति मधुर चापहस्ताम परिमितामोदवाणसौभाग्यम् ।
अरुणामतिशयकरुणामभिनव कुल सुन्दरीं वन्दे ॥

श्री

ललिता

सहस्त्रनाम-भाष्य

गुरोर्मध्ये स्थिता माता, मातृमध्ये स्थितोगुंरु।
गुरोर्माता नमस्तुभ्यं, मातृगुरु नमाम्यहम् ॥

''श्री'' सोमानन्द

ॐ

प्रस्तावना

बीसवीं सदी ने विश्व को विज्ञान की अनेक चमत्कारी उपलब्धियाँ दी है। कार्यकारणवाद से परे एक आइन्स्टाइन, जीन्स, एडिंग्टन और मैक्सप्लैंक के विचार बढ़ गये हैं। भौतिक शास्त्र एवं गणित को प्लैंक ने अपने क्वान्टम सिद्धान्त द्वारा बहुत दिया है। जीन्स भी महान ज्योतिषी और दार्शनिक हुए हैं। एडिंग्टन भी इस युग के भौतिक वैज्ञानिक और दार्शनिक थे। रसेल तो अभी जीवित ही हैं।* वैज्ञानिक उपलब्धियों के कुशल समीक्षक जोड़ का भी बड़ा नाम है। डा. सल्लीवन भी विश्व के पाँच महानतम् भौतिक विज्ञान विशारदों में एक माने जाते हैं। प्रियरी ले कोन्हे डून्वाय भी विश्व विख्यात वैज्ञानिक हैं। डा. एलेक्स कैरेल की पुस्तक ''मैन दि अननोन'' के अनुसार बड़े-बड़े वैज्ञानिक इस विचार पर पहुँचे हैं कि मन और भूत या पदार्थ का सम्बन्ध मन के ही आश्रित हैं। दृश्य प्रपंच की ओट मे कोई अगोचर शक्ति है, इस पर अनेक वैज्ञानिक सहमत हैं। यह अगोचर शक्ति ही वास्तविकता है। परन्तु यह मन का ही एक अंग है या तटस्थ-चेतन है, वे नहीं बता सके हैं। वे यह मानते हैं कि विज्ञान हमें विश्व की प्रतीति का एकांगी बोध ही दे सकता है और इस प्रतीति के पीछे कोई यथार्थतत्व है। यहाँ मन, जीवन, पदार्थ, शक्ति, काल और अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में उनके कतिपय विचार उद्धृत किये जाते हैं।

मैक्स प्लांक का कथन है ''चेतन को मैं मूलभूत वस्तु मानता हूँ। पदार्थ को मैं चेतना का उपादान समझता हूँ। चेतन से हम अपने को पृथक नहीं कर सकते हैं। जिन वस्तुओं की हम बातें करते हैं, जिन्हें हम अस्तित्व पूर्ण समझते हैं, वे सभी चेतना की ही पुष्टि करते हैं। जोड़ कहते हैं कि वैज्ञानिक प्रयोगों से, या तर्क से, या प्रत्यक्ष ध्यानगम्य अन्तर्दृष्टि से इस निहित वस्तु-स्थिति को हम जान पाते हैं। इसकी पुष्टि करने में प्रो. जीन्स या एडिंग्टन को भी कहीं हिचक नहीं हुई है कि यह यथार्थ तत्व चेतना या विचार के स्वरूप या प्रकृति का है। एडिंग्टन का मत है: ठोस पदार्थ को तरल भाव या रूप तक वैज्ञानिकों ने देखा है, फिर परमाणु तक, फिर विद्युत्कण तक। वहाँ आकर वे भौतिक विज्ञान शास्त्री खो गये हैं। वाह्य-जगत में जो वस्तु

*यह प्रस्तावना लिखते समय श्री रसेल जीवित थे।

प्रकट होकर आविष्कृत होती है उसे ही वे पदार्थ मानते हैं। मन ने उस पदार्थ को नहीं मान्यता दी है इसी से यह पदार्थ दृश्य जगत का ही मालूम पड़ता है। प्रो. जीन्स के अनुसार विश्व का पूर्ण चित्र उतारने के लिए किसी व्यापक शब्द या विचार का अभाव उन्हें खटकता है। देश और काल की व्यापकता तक एडिंग्टन को ईश्वर का तन मानने में सुविधा नहीं है। बर्कले का भाव है कि स्वर्ग के सोपान या पृथ्वी के उपस्कर मन के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। प्रो. जीन्स, बर्कले की इस उक्ति से सहमत हैं कि पदार्थों की वास्तविकता किसी शाश्वत शक्ति के मन मे रहने के कारण ही है।

रसेल का तटस्थ अद्वैत मन या पदार्थ को निमित्त कारण नहीं मानता है, बल्कि दोनों को समरसमय पदार्थ का उपादान कहता है। उसी समरसमय पदार्थ के तत्वों के न्यूनाधिक होने से ही मन और भूत का सर्जन माना गया है। विज्ञान ने विश्व का गणित का नया अंकन किया है। जिससे धर्म की वास्तविकता सिद्ध हो सके। विज्ञान ने यथार्थत: विश्व के पेट को धर्म के हेतु स्पष्टतर कर दिया है। यह श्री जोड का मत है। जेम्स और एडिंग्टन इस तथ्य पर सहमत हैं कि सत्य (1) इन्द्रिय एवं विज्ञान से अतीत है। (2) यह मानसिक है। (3) ज्ञान के उपक्रम में ज्ञाता ज्ञेय के साथ तदाकार हो जाता है।

एडिंग्टन के अनुसार सत्य मनोमय कोष है, हमारी व्यक्तिगत चेतना जो एकान्त शिखर जैसी है, मनोमय कोष के अन्तर्गत का ही द्वीप है। अत: धीरे-धीरे दार्शनिक और वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर आए कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुणों के पुँज है। ये गुण मन में ही रहते हैं। चेतन की रचना में ही परमाणु और तारे अटके हुए हैं। वे मनुष्य के मन मे उपजे सनातन प्रतीक जैसे हैं। आइन्सटाइन ने इस तर्क को अन्तिम छोड़ तक यह कह कर पहुँचा दिया कि देश, काल हमारी एकाग्रता या अन्तर्दृष्टि के ही स्वरूप हैं और चेतन तत्व से वे सर्वथा पृथक नहीं किये जा सकते हैं। रंग एवं आकार-प्रकार से ही हम पार्थक्य का भाव पाते हैं। देश या अन्तरिक्ष में स्वयं पुष्ट वास्तविकता नहीं है बल्कि वस्तुओं के लिए हमारी ग्राह्य क्षमता के क्रम मात्र है। काल की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। घटनाओं के माप-दंड का वह उपक्रम ही है। लिंकन वार्टलरे ने ''विश्व और आइन्सटाइन'' ग्रन्थ में लिखा है कि........हमारा धर्म उस असीम सर्वोच्च शक्ति की स्तुति करता है जो हमारे क्षीण मन को ग्रहण

करने योग्य अपनी हल्की झलक दिखा देती है। यही निगूढ़तम विश्वास संसार मे, हम में, भगवान का भाव भरने को विवश करता है। मनुष्य प्रकृति के अपने सिमित क्षेत्र में अपनी रहस्यपूर्ण स्थिति को समझने में सक्षम हो जाता है। शक्ति और पदार्थ की समता की पुष्टि आइन्सटाइन ने की है। पदार्थ तो घनीभूत शक्ति पूञ्ज ही है। शक्ति और पदार्थ का भेद क्षणिक या अस्थायी है। इन दोनों का सार तत्व क्या है, पदार्थगत सत्यता क्या है, विज्ञान इसी का उद्घाटन करना चाहता है। परीक्षण में विद्युत-शक्ति का गतिमानता एवं स्थिति में विघटनकारी या अवरोधी तत्व कैसे समाविष्ट है, यह विचारणीय है। मन का विज्ञान अपनी प्रारम्भावस्था में है। यह मनोविज्ञान एक दिन अपने हाथ में नियन्त्रण ले सकता है। प्रस्तार सिद्धान्त की सेवा मे इसकी धारण पूर्ण-प्रकृति में विकसित होकर विज्ञान को उस एकता की ओर ले जा सकता है। मन, जीवन और पदार्थ मे जो भेद प्रतीत होता है वह एक दिन मिट जायगा। देश और काल अन्तयुक्त होने के कारण सृष्टि-कार्य को विचार के अन्तर्गत की वस्तु मानते हैं। वे ईश्वर की प्रेरणा के अनुरूप ही क्रियाशील है, ऐसा जोड मानते हैं। देश-काल का भेद हमारी मनोवैज्ञानिक विचित्रता है। मन की चयन प्रवृत्ति से ही भौतिक विश्व की सत्ता बनती है। प्राणी के विकास या जीव विज्ञान के अनुसार अमीबा से मानव तक का क्रम चला है। आगे ऐसा जटिल जीवन भी हम देख सकते हैं जहाँ हमारा मन और व्यक्तित्व हमसे छिन जाएगा। हम साधन मात्र हैं, उसकी इच्छा की एक अभिव्यक्ति। सत्य का सतत् दर्शन प्राप्त होते रहने के मार्ग में आवरण हमारे सम्मुख पड़ा रहता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि दस लाख वर्षों से पृथ्वी पर मानव सृष्टि है। जीवन और विकास की इसी महान सत्ता की इच्छा पर आश्रित है तथा उसी के संकेत पर गतिमान भी है, विज्ञान भी इसी अद्वैत की ओर आता सा लग रहा है। आधुनिक सभ्यता ने मानव के जीवन और विचार को अधिक प्रभावित किया है। व्यक्तिगत संतोष एवं उत्साह पर सभ्यता का ऐसा दबाव है कि चाहते हुए भी लोग अध्यात्म या धर्म कृत्यों में उत्साह पूर्वक संलग्न नहीं हो पाते हैं। मानव को पशुता या पाशबद्ध जीवन से ऊपर उठाने हेतु विश्वास और श्रद्धा की गहराईयों मे जाना है और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आत्मघात् या आत्मप्रवंचना से मुक्त होता है। ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी धर्मों में नियम एवं अनुशासन है। सनातन धर्म मे गायत्री की उपासना एक मुख्य साधन

है। परमशिव या चैतन्य की शक्ति-पूजा, श्री गायत्री या श्री ललिता के रूप में चली आयी है। बुद्धिमानों एवं मनीषियों के लिए इनका आकर्षण स्वाभाविक ही है। इस साधना मे क्रमशः निगूढ़तम तथ्यों से अवगत होते हैं साधक। जीवन चेतना और सत्य की अनुभूति होकर व्यक्तिगत जीवन-काल अवाधित हो जाता है।

आधुनिक विज्ञान हमारे उपनिषद् दर्शन की ओर चला आ रहा है। यद्यपि अद्वैत ने सत्य को निर्गुण रूप मे स्वीकार किया है, फिर भी बुद्धि के सहारे हम सुविधा पूर्वक अन्तर्हित शक्ति का चरम सत्यमय शिव के संग विश्व रचना में अभेद रूप से सक्षम पाते हैं। अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति की भाँति हम शिव और शक्ति को अभेद पाते हैं। यह परमा शक्ति हमारी अनुभूतियों की सभी वस्तुओं की सृष्टि करनेवाली है। माता के रूप में उसकी पूजा अनादि-काल से होती आ रही है। मोहन्जोदरो और हरप्पा के निर्माण काल में भी इसके प्रमाण मिले हैं। एडिनवरा के पुरातत्व विभाग के आचार्य गिब्बेट की उक्ति है ''बलूचिस्तान मे पायी गई स्त्रियों की मृत्तिका प्रतिमायें माँ देवी की पूजा के उदाहरण लगती है। भारत और सिन्धु की घाटियों में भी ये उपलब्ध है। ग्राम देवियों के रूप में भी शक्ति की पूजा होती रही है। इसी तरह पुरुष और स्त्रियों के लिंग चिन्हों की भी पूजा हुई है। वैदिक काल मे ऋग्वेद में उषा और अरण्यामी, यजुर्वेद में गायत्री और अन्यत्र महालक्ष्मी तथा दुर्गा की पूजा का उल्लेख आया है। उपनिषदों में उमा और हेमवती का नाम आया है। पुराणों में वह ललिता और काली के रूप में पूजी गई है। आगम और तन्त्रों मे महाकाली, त्रिपुर सुन्दरी और राजराजेश्वरी एवं अन्य नामों से पूजिता रही हैं। अतः 4500 वर्षों से चली आ रही माँ की पूजा के प्रमाण विद्यमान हैं। अभी भी शायद ही कोई सनातन धर्मो का ऐसा घर हो जहाँ दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती या ग्राम देवता के रूप में शक्ति की पूजा न होती हो। शक्ति साधना की इस लम्बी रेखा में देवी के मुख्यतया दो रूप दीख पड़ते हैं। एक है भयावनी मूर्ति, दूसरी प्रेम एवं दया से पूर्ण सुहावनी मूर्ति। ये दो रूप अन्य धर्मों की उपासना में भी दृष्टिगत होते हैं। ईसाईयों में भी हैं। पहली मूर्ति राजसिक या तामसिक अभिव्यक्ति प्रधान है। साधक की उपासना के पूर्व या प्रारम्भ में भय का प्रमुख हाथ रहता है। दैविक, दैहिक और भौतिक इन तीनों तापों का भय रहता है। उसके रूप में अनेकों सिर, हाथ, आयुध, अस्त्र, वाहन

आदि कतिपय भयानक तत्व देखने को मिलते हैं। सिंह या शव पर सवार होना भी भय प्रकट करते हैं। एकान्त, वन, गिरिशिखर एवं श्मशान भूमि में उसका आवास रहता है। वह सदा अभय मुद्रा में हाथ को रखे दिखाई देती है। उसे मद्य की आहुति दी जाती है और छाग, महिष, बकरे की वलि प्रदान करते हैं। कभी-कभी काम्य कर्मों या अभीप्सित वस्तुओं के लाभ के लिए विकृत रूप में भी उसकी अर्चना होती है। भगवत् गीता में अर्जुन विश्व रूप संदर्शन से भयभीत हो जाते हैं।

दूसरा रूप सात्विकी मूर्ति है। उपनिषदों द्वारा पुष्ट है। सुकुमारता है इसमें, स्निग्धता और अनुपम सौन्दर्य भी है। इसमें साधक निर्भय होकर माँ से स्नेह करता है। इसके हाथों मे कमल, जपमाला, इक्षु-धनु या वीणा है। दीक्षा देने वाली उपदेश मुद्रा या अभयमुद्रा में सामान्यतः देखी जाती है। सर्वोच्च चेतना और बोध के लिए उपासना पुष्प, दुग्ध या मधु से होती है। शक्ति का वह महासरस्वती भाव है जो साधकों को अभय प्रदान कर आत्मज्ञान द्वारा आत्मसाक्षात्कार देता है।

देवी के बहुत से ऐसे रूप भी प्राप्त हैं जहाँ इन दोनों में साम्य या सामंजस्य रख कर न्यूनाधिक क्रम मे उपासना होती है। कहीं-कहीं पंचमुख, त्रिनेत्र, हाथों में खप्पर, तीर, कमल और अभय-मुद्रा धारण किये हैं। साधक अपनी साधना में अग्रसर होने के साथ-साथ सात्विक वृत्तियों को अपने में विकसित पाता है। मृदुता एवं अकलुष भावनायें तीव्रतर होती जाती है। सामान्यतया शक्ति साधना के दक्षिणाचार में ऐसा पाते हैं। भगवान शंकर ने शक्ति साधना या शाक्त माता को सर्वोपरि स्थान दिया है। सभी पीठों की अधिष्ठात्री देवी के रूप में शारदा को ही रखा है। यजुर्वेद ने वेदमाता गायत्री की उपासना को प्रश्रय दिया है।

प्राग् ऐतिहासिक काल से पुराणों की सृष्टि तक, प्रायः दो हजार पाँच सौ वर्षों तक, शक्ति-पूजा का इतिहास मिलता है। अनेकों देवताओं, ऋषियों और सिद्धों ने जो माँ की पूजा की है उसका प्रमाण शास्त्रों में भरा है। इनकी उपासना पद्धतियों और मन्त्रों का संग्रह आगम और तन्त्रों में उपलब्ध है। ज्ञान-प्रस्तार ही तन्त्र का सामान्य अर्थ है। आगम उसे कहते हैं जो ज्ञान बाहर से हम में आये। व्यक्तिगत विकास क्षमता को हमारे शास्त्रों ने पहचाना है। तन्त्रों में दर्शन, पूजा, धर्मकृत्य, मन्त्र बौद्धिक एवं शारीरिक उपचारों के क्रम

वर्णित है। पुराणों के समय में बौद्ध और जैन धर्म भी कार्यरत है।

भारत के विभिन्न धर्मों में पारस्परिक पुष्टियाँ भी उस काल में हुई है। वेदों और उपनिषदों की तरह तन्त्र एवं आगम ने भी साधना में उच्च स्थान प्राप्त किया। यामल आदि तन्त्रों को लोग वेदों से भी प्राचीन मानते हैं। दुर्गाष्टमी आदि के अवसर पर जो धर्मानुष्ठान देखे जाते हैं उनमें भी अधिक तन्त्र प्रधान ही हैं। तन्त्र में वामाचार एवं दक्षिणाचार या समयाचार की दो पद्धतियाँ स्वीकृत है। वामाचार में माँ की पूजा अनादि काल से होती है। कालान्तर मे कुलार्णव, कामिका एवं परशुराम-कल्प-सूत्र ने उसका प्रतिपादन किया।

वामाचार को लोग कौलाचार भी कहते हैं। यहाँ ऋषि भैरव हैं, देवता भैरव और भैरवी हैं। शिव-शक्ति सामरस्य के मुख्य अंग शक्ति की पूजा का विधान है। ''परशुराम-कल्प सूत्र'' के अनुरूप ही यह पूजा होती है। दिगम्बर एवं कापालिक भी वामाचार से साधना करते हैं। पंच तत्व या पंचमकार से धर्मकृत्य का विधान है। मद्य, मांस, मुद्रा, मत्स्य और मैथुन ये पाँच अंग हैं।

मानव की प्रवृत्तियों को दमन करने के हेतु अनेक प्रकार के जीवन-दर्शन दृष्टि पर आते हैं। वामाचार, असंयमी लोगों के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसी चेतावनी तंत्र में है। तंत्र का यौन संबंध लोग बौद्धग्रन्थ ''गुह्य समाज तंत्र'' के बाद से मानते हैं। इस तंत्र का समय लोग तीसरी शताब्दी मानते हैं। इस तंत्र के 18वें अध्याय में प्रज्ञाभिषेक का उल्लेख है। इसमें शिष्य को प्रज्ञा द्वारा दीक्षा दी जाती है, जो दिव्य दीक्षा है। परन्तु स्थुल भाव में बहुतों ने प्रज्ञा का अर्थ स्त्री माना है। लोग कहते हैं कि गुरु तथागत को साक्षी रखकर किसी सुन्दरी स्त्री का पाणिग्रहण करते हैं। फिर अपने हाथ से शिष्य का मस्तक स्पर्श कर कहते हैं ''वृद्धावस्था शक्ति के बिना असम्भव है, अत: इस प्रज्ञा या देवी को अंगीकार करना है।'' वस्तुत: विमल बुद्धि या अव्यभिचारिणी बुद्धि ही साधक की प्रज्ञा बन जाती है। तंत्र को दूषित करने के हेतु समाज एवं विरोधी अभ्यास कुछ लोगों ने प्रारम्भ कर दिये। बज्रयान सम्प्रदाय के सिद्धान्त विलक्षण अर्थ रखते हैं। जिन लोगों ने उसके मर्म को पूर्णरूपेण नहीं समझा उन्होंने विकृति का प्रश्रय लिया। शक्ति-पूजा में ही नहीं वरन् सूर्य और गणेश की अराधना में भी इनकी मान्यता मिलती है। शंकराचार्य ने समया-माता या दक्षिणाचार के वेदान्त-शुद्ध पथ का अनुसरण कर लोगों को संशय से मुक्त

किया। सौन्दर्यलहरी में समया-माता को स्वतंत्र तंत्र घोषित किया है। समयाचार में मंत्र, लय, भक्ति और ज्ञान का समावेश है। ऋषियों ने परमात्मा की प्राप्ति की अनेक युक्तियाँ बताई है। प्रखर बुद्धि वाले साधकों में श्रद्धा और विश्वास का होना अनिवार्य है। दक्षिणाचार की विधियाँ ''सौभाग्य पंचक'' में सन्निहित हैं। इसमें सनक, सनन्दन, सनतकुमार, वशिष्ठ और शुक की संहितायें हैं। यहाँ दक्षिणामूर्ति ऋषि हैं, कामेश्वर और कामेश्वरी उपास्य हैं। श्री चक्र के विभिन्न अंगों के सहारे शिष्य को शिव-शक्ति की एकता का अनुभव करना है। मूलाधार के सहस्रार तक सप्त सोपानों से उन्हें परिचित होना है। भावनोपनिषद् के अनुसार शक्ति की मानस पूजा करती है। यह अन्तरयाग है। मस्तिष्क के के केन्द्र सहस्रार में उसे अपने मन का विलिनीकरण करना है। यही संक्षिप्त समयामाता है। यदि साधक मानस-पूजा में पूर्ण सक्षम नहीं है तो परशुराम-कल्प-सूत्र के अनुसार उसे दूध और मधु से पूजा करनी है। समयाचार के साधको के मानसिक अनुशासन के मार्ग जो भावनोपनिषद् में है, उनकी कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं। इस क्रम से साधक सर्वेश्वरी से एकात्मबोध या तादात्म्य स्थापित कर पाते हैं।

इच्छा शक्तिमयी भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही भक्तों के मन की उपास्य मूर्ति सच्चिादानन्दमयी कामेश्वरी हैं। शान्ति प्रदान करने वाला सत्य ही देवी का अर्घ्य है। शुभ और अशुभ का विचार ही देवी की सेवा है। अन्तर और वाह्य एकता का बोध ही देवी का आवाहन है। सार और असार में चिरन्तन तत्व ही उप-सेवायें हैं। बाहर-भीतर सामरस्य का बोध देवी का आसन है। शिव और शक्ति (रक्त और श्वेत) की एकता चरणों का धोना है। परम आनन्द की प्राप्ति ही पाद्य है। स्फटिक सदृश निर्मल तत्व की अनुभूति आचमनीय है। चैतन्य अग्नि से आनन्द-विभोर हो जाना आभूषण है। उपनयन अर्पण ब्रह्मनादि में समर्पण है। अनाशक्त भाव आभूषण, मन की दृढ़ता पुष्पांजलि है। श्वासों का आवागमन ही देवी का भोग-राग है। जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाओं में एकता पान या ताम्बूल है। सहस्रार से मूलाधार पर्यन्त, फिर मूलाधार से सहस्रार तक प्राणों का आवागमन ही उसकी प्रदक्षिणा है। चतुर्थ अवस्था तुरिया की सतत् अनुभूति ही वंदना है। देह भाव का पूर्ण विसर्जन ही बलि प्रदान करना है। एकमात्र सत्य ही सदा स्थिर है, यह यज्ञाग्नि है। उसके चरणों में खो जाना ही उसका ध्यान है। तीन मुहूर्तों तक ऐसी पूजा

करने वाला अपने उपास्य देवता के साथ एक हो जाता है। समयाचार के विभिन्न अंगों से निकटतम परिचय प्राप्त होने पर हम श्री ललिता सहस्रनाम का भाव अच्छी तरह पा सकेंगे।

श्री पुण्यानन्द यति ने कामकला-विलास नामक ग्रंथ में समयाचार पद्धति से माँ की उपासना का मार्ग सुलभ एवं स्पष्ट किया है। कामकला-विलास का प्रथम सूत्र कहता है ''सृष्टि, स्थिति और लय का परम कारण चैतन्य-प्रकाश पूर्णपरमेश्वर हमारी रक्षा करें। असीम आनन्द की बीज से स्फुरण प्राप्त कर शिव के दर्पण में अपना स्वरूप विश्व के प्रांगण में देख कर मुग्ध रहने वाली आद्या शक्ति विजयिनी हो।'' शिव-शक्ति की अभेद भावना इन सूत्रों में परिलक्षित है। इस शक्ति के प्रकट होने पर ही हम इसकी चित्शक्ति से परिचित हो पाते हैं। परम-चेतना रूपा उसी शक्ति से सभी पदार्थ निकल कर इसी में विसर्जित होते हैं। समयामाता का विश्वास है कि शिव के बिना शक्ति नहीं और शक्ति के बिना शिव नहीं। चन्द्र और चन्द्रिका की तरह दोनों अभेद हैं। नाम और रूपमय जगत की सृष्टि के लिए दोनों संयुक्त होकर उद्यत है। सृष्टि अभी हुई नहीं है। यही उपास्य स्वरूप है। प्रत्येक जीवित वस्तु में एक रूद्र गौंण हैं। माया और रूद्र उनके व्यक्त और अव्यक्त रूप हैं। वह (शिव) वही (शक्ति) है। वे भिन्न नहीं हैं। इसे जानने वाले अमरत्व पाते हैं। कामकला-विलास का तीसरा सूत्र सृष्टि से सम्बन्धित हैं। चैतन्य और उसकी शक्ति की एकता का यह व्यक्त भाव वह बीज है जिससे जगत की सृष्टि का अंकुर निकलता है। ''अ'' से ''ह'' तक प्रकाश मूर्ति की भाँति इसका प्रस्तार है और ध्यान गम्य है। यह पूर्ण अहं है और जीव के खण्ड अहं से सर्वथा विलक्षण है। सभी साधन उपचार या अनुशासन इसी अहं में अन्तर्हित शक्ति को देखने के लिए है। इसका आलय सहस्रार है। ''अहं'' ही वह आसन है जिससे क्रियाशील संसार प्रकट होता है। नवम् सूत्र में विश्व-सृष्टि क्रिया उल्लेख है। ''अहं'' की शक्ति भाग वाले लाल विन्दु का वृत्त से जो प्रसारित होना प्रारम्भ करता है, 'नाद' का अंकुर निकलता है, उसी विश्वमय नाद से पंच-भूतों के प्रतिनिधि वर्ण अक्षर निकलते हैं। अतः प्रथम शब्द की सृष्टि उस अक्षर के रूप में हुई जिसमें आविर्भूत जगत के सभी नाम सन्निहित हैं। नाम के जगत की हमारी भावनायें मातृका वर्ण पर ही आधारित हैं। ये वर्ण ही सभी मन्त्र और देवता के उद्‌गम स्थान है। मन्त्र ऋषियों द्वारा ध्यान में देखे गये

देवताओं के स्वरूप का वर्णात्मक चित्र है। समयामाता के क्षेत्र में मन्त्रों का प्रमुख स्थान है। जिसको मनन करने से हमारा त्राण या हमारी रक्षा हो वे ही मन्त्र हैं। एक प्रतिमा साधक का मनोलय कर सकती है तथा प्रतिमा में अन्तर्हित सत्य की धारणा की अनुभूति दे सकती है। देवताओं के प्रतिनिधि वर्णों का विशुद्ध संयोजन या मिलन रहता है मन्त्रों में। साधक जो ध्यानपूर्वक जप करेंगे वे उस मन्त्र के देवता का साक्षात्कार कर सकेंगे। ये मातृकायें हमारी मनोगत भावनाओं की धारणा पुष्ट करने में समर्थ हैं। वस्तुतः ये वाणी और लेखनी के श्रोत हैं। ''अंह'' से ही सभी भूत एवं आकार की रचना हुई है। शब्द सृष्टि के बाद श्वेत-विन्दु या वृत्त से पंच भूतों का विस्तार हुआ। जगत के परमाणु से विराट तक इसी शृंखला से निकले हैं। आकाश तत्व देश-कालमय है, वायु-देशकाल के अधीन है। अग्नि वायु की शक्ति से प्रकट है। उसी शक्ति का प्रस्तार जल तक है। उस शक्ति के संचालन एवं आकार परिवर्त्तन से भूमि की रचना हुई है। यह कहा जाता है कि चेतना रूपा ज्योतिर्मयी ''अहं'' शक्ति से ही प्रकारान्तर भेद से सभी पदार्थ प्रगट हुए हैं। सूक्ष्मतम अंश मन बना और स्थूल अङ्ग वाह्य आवरण। वाह्य शृंखलाओं और क्रमिकताओं की भांति भीतरी साधनाओं में भी, सप्त धातुओं में भी, शक्ति समान भाव से विराजिता हैं। समयामाता के अनुसार विश्व के नामरूप पराशक्ति से सदा जुटे हुए हैं। यहाँ शब्द ब्रह्म की धारणा, नाद का व्यापक तत्त्व, उन मीमांसकों के अनुरूप ही है जिन्होंने शब्द को शक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में माना है। सांख्यवादी का विश्वास है कि पंचभूत भी शक्ति से ही प्रकट हुए हैं। तन्त्र इन दोनों को मानता है। ललिता सहस्रनाम में भगवान के साक्षात्कार के अनेक मार्ग सन्निहित हैं। इसमें मन्त्र भाग प्रमुख है। कामकला विलास के एग्यारहवें सूत्र में कहा है कि जिस तरह शिव बिन्दु और शक्ति बिन्दु अभेद हैं वैसे ही मन्त्र और देवता, तथा भक्त एवं उसका उपास्य भी अभेद है। एक ही शक्ति के अभिन्न व्यक्त रूप हैं मन्त्र और देव। यहाँ देवता से गायत्री, बाला त्रिपुरसुन्दरी और पंचदशी से तात्पर्य है। जब तक साधक को इस सूत्र में पूर्ण विश्वास नहीं होगा, प्रगति अशक्य है। अभेद भावना द्वारा वह साक्षात्कार में सफल हो सकता है। ललिता सहस्रनाम में सभी नाम अपने में मन्त्र ही है। साथ ही लीला और गुणों का वर्णन भी है। एक परमाशक्ति के गायत्री इत्यादि महामन्त्र है। मानव शरीरधारी शिवस्वरूप गुरुदेव

की दीक्षा आवश्यक है। अपवाद जो भी हो। गायत्री को ''द्विजत्व साधनी विद्या'' कहते हैं जिसके द्वारा आध्यात्मिक जीवन में साधक का नया जन्म होता है। इसमें चौबीस अक्षर हैं। प्रत्येक अक्षर एक-एक देवता के द्योतक हैं जैसे अग्नि, वायु, वरुण इत्यादि। चौबीस तत्वों के भी प्रतिनिधि हैं ये। पंचभूत, पंच-तन्मात्रा, दश इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय् ये तत्व हैं। व्यष्टि और समष्टि दोनों में सामान्य तत्व हैं। विश्वामित्र कल्प में कहा है कि ''चौदह प्रकार की विद्यायें हैं जिन का सार है वेद। वेदों की माता गायत्री हैं। गायत्री के दो रूप हैं। एक से तो सभी द्विज परिचित हैं। दूसरा रूप गुप्त है और वेदों में सन्निहित है। इसका लक्ष्य विलक्षण है। अतः चौबीस वर्णों की गायत्री त्रिपादात्मिका है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इससे सधते हैं। साधक जब पूर्ण विकसित हो जाता है तब उसे गुप्त गायत्री में दीक्षा मिलती है। यह भी त्रिपादमयी है तथा अन्त में ''परो रजसे सावदोम'' युक्त है जिसे चतुर्थपाद या तुरिया पद कहते हैं। ललिता सहस्रनाम की देवी की साधना या तो तुरिया पद वाली गायत्री या श्री पंचदसी, श्रीषोडशी और बाला त्रिपुर सुन्दरी के महामन्त्र के द्वारा होती है। गायत्री मंत्र का अर्थ यों है : ''हम उस सर्वव्यापिका शक्ति का ध्यान करें जिसमें सत, चित् और आनन्द के सिवा कोई उपाधि नहीं है, जो आदित्य के हृदय से प्रस्फुटित हुई है। वह शक्ति हमारे मन पर शासन करती है। वेद उसकी स्तुति करते हैं। हमें सीमाओं एवं पापों से मुक्त करती है। वह सृष्टि, स्थिति और लय का कारण है। वह आनन्दमय विश्राम है। वही गुणातीता माँ हमारी रक्षा करें।'' संध्या बन्दन में, गायत्री आवाहन श्लोक में, जो गायत्री मंत्र का ध्यान है वह अर्थ के हेतु मनन करने योग्य है। वह ध्यान इस प्रकार है :

एकाक्षर ॐ परम सत्य का द्योतक है। शक्ति ही अधिष्ठात्री देवी है। परमेश्वर ब्रह्म ही इस मंत्र के ऋषि हैं। इसके छन्द गायत्री हैं। परमाशक्ति की यह अभिव्यक्ति है। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन ही इसके साधना का लक्ष्य है। वह वेद पूज्या, अविनाशिनी, वेदमाता गायत्री हमें वर दे। हमारे समक्ष प्रकट हो और हमें सत्य का स्वरूप बतलाए। जितने अशुभ कर्म होते हैं वह शीर्घ ही नष्ट हो जाते हैं। रात्रि में अशुभ कर्म होते हैं वह रात्रि में ही नष्ट हो जाते हैं। हे महाशक्ति, दानों संध्याओं मे दिवारात्रि के संगम काल में, जितने वर्णों के समूह तथा देवता का ध्यान करते हैं वह आप ही हैं। आप विज्ञान

की शक्ति हैं। सभी अशुभ पदार्थों के आप शत्रु हैं। आप बल हैं, विश्व हैं, तथा अनन्त भी हैं। सभी देवताओं के आप आश्रय रूप हैं। मैं गायत्री, सावित्री, सरस्वती और लक्ष्मी तथा ऋष्यों की वन्दना करता हूँ। गायत्री मंत्र के विश्वामित्र ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, सूर्य शक्ति, सविता देवता हैं। अग्नि उसका वदन है, पालन कर्त्ता विष्णु उसका हृदय है, संहारकारी रुद्र उनका मुकुट है, पृथ्वी उसकी सृष्टि का माध्यम है। वह प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पंचप्राणों से ओतप्रोत है। वह श्वेत वर्ण की है, चौबीस अक्षर हैं, उनके तीन वेदमय त्रिपाद हैं और षडाकाश हैं। उसका उद्देश्य है हमें पूर्णत्व की ओर ले जाना।'' गायत्री का विशद् अर्थ कामकला विलास और वरिवस्या रहस्य में वर्णित है। आत्मा का स्थान सहस्रार में है। निर्गुण ''अहं'' का यहाँ वास है। सूक्ष्मतम रूप से इसका स्वरूप विकसित होता है। स्थूल होकर यह शक्ति मूलाधार में स्थित होती है। सूक्ष्मतर रूप के विभिन्न अंग स्वाधिष्ठान आदि षट्चत्रों में अवस्थित हैं। ये स्थूल शरीर में खोजने पर चर्मचक्षुओं से नहीं दिख पड़ते हैं। भ्रूमध्य या नाभि स्थान इनसे संलग्न या सम्बन्धित रहते हैं। प्राणायाम का आश्रय लेकर इन शक्तियों का विभिन्न केन्द्रों मे ध्यान करते हैं। चैतन्य की शक्ति को स्थूल रूप मे कुण्डलिनी कहते हैं। वह हमारे मूलाधार में संचालिका शक्ति होकर रहती है। वह हमारी भौतिक मनोवैज्ञानिक शारीरिक या आध्यात्मिक क्रियाओं में रहती है। योग मार्ग से यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार से मन की गतियों का देख रेख करते हैं। तब मन शान्त हो जाता है। देवी का ध्यान विभिन्न चित्रों में किस प्रकार किया जाय और साधना किस प्रकार होवे इसका विधान ललिता सहस्रनाम में दिया गया है। यह स्पष्टतया जानना आवश्य है कि साधन काल में सद्गुरु निश्चित रूप से सचेष्ट करते रहें। अमिट विश्वास, समर्पण और सद्ग्रन्थ भी हमें जाग्रत रखते हैं। अनन्य भक्त तो माँ स्वयं गुरु बन कर सब बता देती है। तंत्र शास्त्र में मन्त्रों के संग यंत्र या चक्र भी सहायक हैं। साधक को मंत्र, या चित्र या यंत्र को अभेद मानना है। समयामाता में भी श्री चक्र को श्री ललिता मानते हैं। श्री चक्र को निकट से देखने पर लगता है कि एक त्रिभुज या त्रिकोण का केन्द्र अपने व्यापकत्व क्रम में किस तरह त्रिकोण वृत्त के सहारे समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का प्रतीक श्री चक्र बन जाता है। त्रिकोण और वृत्त की महत्ता को जानकर हमें श्री चक्र का ध्यान करना है। परम सत्य के अनेक प्रकारान्तर हैं।

शक्ति रूप मन और भूत पर ये प्रभाव विस्तार करते हैं। उन्हें आवरण या सीमायें भी कहते हैं। विश्व सृष्टि प्रक्रियाओं मे इनका प्रयोजन सिद्ध होता है। जैसे मांस का आवरण त्वक् सप्रयोजन रहता है। साधक की इस तत्त्व की अनुभूति होती है कि शाश्वत अभिन्न चैतन्य से किस प्रकार व्यष्टि और समष्टि का उद्‌भव हुआ है और नामरुपमय ये कैसे बने। श्री चक्र के माध्यम से इसकी अनुभूति सहज है। इस क्रम में पूर्ण परिचित होने पर उसे साधना के लक्ष्य का पता चल जाता है। इस साधना की इति साधक के व्यक्तित्व को सनातन तत्त्व या साध्य में खो देने में है। ज्ञानीजन माँ और श्री चक्र मे पार्थक्य नहीं मानते हैं। जो साधक मन्त्र, देवता और श्री चक्र को एक समझते हैं वे देखते हैं कि कामकला ही महा विद्या त्रिपुरसुन्दरी बन गई है और वह मुक्त हो जाता है। अत: समयामाता को संक्षिप्त मे ऐसे देखेंगे। संसार की जननी में साधक की अमिट विश्वास रहे। वह अपने खण्ड ''अहं'' को माँ के पूर्ण ''अहं'' में विसर्जित करे। श्रुति, स्मृति, पुराण एवं आर्य ग्रंथों का वह मनन करे तथा पूर्ण श्रद्धा-विश्वास रखे और संसार की अनित्यता को विवेक पूर्वक जान ले। सत्यवादी, संयमी, संतुष्ट, व्यापक रहकर, सद्‌गुरु को मानव के रूप में माँ मानकर उनसे दीक्षा प्राप्त करे। सर्वेश्वरी माँ के शरणागत सेवक का जीवन वह व्यतीत करे। सामान्यतया, श्री ललिता की उपासना से चतुर्विधि पुरुषार्थ की सिद्धी हो जाती है। अत: सांसारिक अल्प सिद्धियों के हेतु उसके जप या ध्यान का आश्रय नहीं ले बल्कि एकमात्र साक्षात्कार के लिए साधना करे। लघुभ्रान्तियों को माता सहज ही विसार कर अपने प्रिय पुत्र को स्नेह देती रहती है। उसे सन्मार्ग पर ले जाती है। समयामाता के अनुरूप यह शक्ति साधना का सार है।

श्री ललिता सहस्रनाम ब्रह्माण्डपुराण का एक अंश है। धार्मिक ग्रंथों में सहस्रनाम का प्रचलन उपनिषदों के दर्शन का परिणाम है। ये ''एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति'' की पुष्टि करते हैं। अनेक नाम रूपों में एक ही शक्ति का विद्यमान रहना इनसे प्रकट होता है। इसमें सभी प्रकार की अनेक धर्म कथाओं का समावेश रहता है। विष्णु के अवतार भगवान हयग्रीव श्री अगस्त्य को यह सहस्रनाम दिया था। कहते हैं कि श्री ललिताजी के आदेशानुसार वाग्देवी ने इसकी रचना की। कहते हैं कि कोई जप या पूजा भी करे और इस सहस्रनाम का पाठ भर करे तो साधक पूर्णकाम हो जाता है। अत: देवी की

आराधना में इस सहस्रनाम का बड़ा महत्व है। यह भी कहा जाता है कि इसका प्रत्येक नाम अपने में मन्त्र ही है और एक-एक नाम का ध्यान साधक की मनोकामना की पूर्ति में सक्षम है, पुष्ट है, पूर्ण समर्थ है। महान् भाष्यकारों ने इसकी व्याख्या लिखी है। उससे भी इसकी महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। विमर्शानन्द नाथ, विद्यारण्य मुनिश्वर, भट्टनारायण, शंकराचार्य एवं भास्कर राय जैसे शक्तिधर महात्माओं ने इसके भाष्य लिखे हैं। गणेश आदि देवताओं के नाम, व्रत एवं धर्मकृत्यों के उल्लेख ब्रह्माण्ड, स्कन्द और भविष्योत्तर पुराणों में उपलब्ध है। विनायक व्रत तो सभी वर्णों एवं वर्गों के लिए मान्य है। उसी प्रकार ललिता सहस्रनाम भा वाम और दक्षिण दोनों पन्थों के लिए मान्य है। ''दक्षिणा,'' ''दक्षिणाराध्या,'' ''कौलमार्ग तत्पर सेविता,'' ''सव्यापसव्यमार्गस्था'' इत्यादि से भी इसकी पुष्टि होती है। ''वक्त्रलक्ष्मी परीवाहचलन्मीनाभलोचना,'' ''ताटंकयुगलीभूततपनोडुपमण्डला,'' ''करांगुलि नखोत्पन्ननारायणसदाकृति'' के मर्म को जानने वाले माँ के निकट आ ही जायेंगे। उपासक चाहे भक्त हो या योगी, मंत्री हो या ज्ञानी , गृहस्थ हो या सन्यासी सहस्रनाम में वे ऐसे-ऐसे नाम पायेंगे जिससे वे मुग्ध हो जायेंगे। ललिता सहस्रनाम के पाठ के पूर्व गुरुदेव को प्रणाम करेंगे, गुरुदेव के बताये मंत्र न्यास और जप पूर्ण करेंगे। ध्यान श्लोक के अनुसार माँ का ध्यान करेंगे और सहस्रनामों से माँ की पूजा करेंगे। अरुणाभामयी, करुणामयी, दृष्टिवती, अणिमादि सिद्धियों की किरणों से घिरी हुई, कर-कमलों में पास, अंकुश, शर और चाप, धारण करने वाली मेरे हृदय में निवास कर रही है। कमल पर बैठी, कमल-नयना, स्वर्णमयी पीतावरण भूषिता, करों में स्वर्ण-कमल धारण करने वाली, वर अभय दात्री भक्तों के नतमस्तक भाव पर दृष्टिपात करने वाली, देवताओं द्वारा पुज्या तथा सभी वैभव देने वाली व्यापिका भवानी का मैं ध्यान करता हूँ। कस्तूरी से चर्चित ललाट वाली, लाल मालाओं एवं आभूषणों से अलंकृता, पाश, अंकुश, शर और चाप धारण करने वाली, कुंकुम विलेपिता मन्दस्मिता माता का मैं ध्यान करता हूँ।

इन ध्यान श्लोकों में साधकों का भावोद्दीपन होता है। उनके सभी चिन्ह विलक्षण है, रहस्य के प्रतीक हैं। सहस्रनाम से परिचित होने के क्रम में हम उन्हें पहचान पायेंगे।

♦

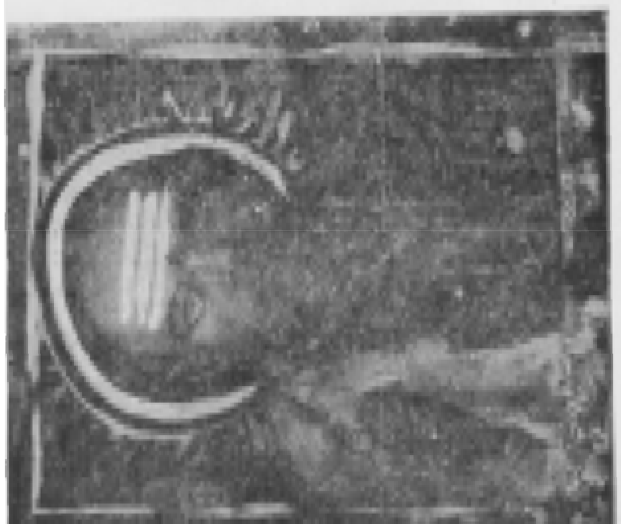

आमुख

विश्व का पालन करनेवाली ललिता के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ। सृष्टि, स्थिति और विनाश पर उसका शासन है। उसका ध्यान महात्रिपुर सुन्दरी के रूपे में करें। कोटि सूर्यों के समान उसका प्रकाश है। उसके हाथों में पाश, अंकुश, इक्षु-धनु और पुष्प-वाण है।

1. विद्वान गम्भीर के पुत्र कोणमाम्बा के गर्भ से सम्भूत, नृसिंह के द्वारा जिन्होंने अठारह विद्यायें जानी, विशुद्ध शिवदत्तशुक्ल से जिन्हें दीक्षा मिली उनका विश्वास तीन रक्षकों में है, तीन पवित्र अग्नियों में है, त्रिपुरा देवी के तीनों पुरों में है तथा तीनों वेदों में है।
2. पूज्य गुरुमण्डल से सुरक्षित भास्कर राय ने ललिता के सहस्रनाम पर भाष्य लिखा। ये नाम अति रहस्यमय हैं। महान् व्यक्तियों द्वारा सम्माननीय हैं। इसमें गुरुओं द्वारा बतायी गयी परिभाषाओं की व्याख्या है।
3. माँ की आज्ञा से पहले-पहल वाग्देवियों द्वारा दिव्य ललिता सहस्रनाम की रचना हुई जिससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अन्य देवता चकित हो गये। तब मेरे ऐसा व्यक्ति भला एक भी नाम की व्याख्या कैसे कर सकता है?
4. फिर भी विश्व-बन्धन के धागे को धारण करने वाली माँ की करुणा से एक वाग्देवी मेरी जिह्वा पर नाचती है। यह जिह्वा तीनों गुरुओं के चरण धोने वाले जलपीने से पवित्र हो चुकी है। उस देवता को मै अपना इष्ट देवता मानता हूँ।
5. विद्वानों के अनेक समूह हैं। पूर्व मे ब्रह्मपुत्र नदी के जल से सिंचित, कामरुप, पश्चिम में सिन्धु नदी से सिंचित गान्धार, उत्तर में केदारनाथ जैसे दुर्गम तीर्थ तक और दक्षिण मे श्री रामजी द्वारा निर्मित सेतुबन्ध पुल तक संतों के अनेक समूह हैं। मेरा यह प्रयास उन्हें आनन्द देवे। मनुष्यों की सभी इच्छाओं की पूर्त्ति एक मात्र

भगवती की पूजा से होती है। सहस्त्रनाम का पाठ उसको प्रसन्न करने का सर्वोत्तम मार्ग है। यह तरीका उच्च कोटि के गुरुओं से प्राप्त होता है। मेरे पूजनीय गुरुदेव नृसिंहानन्दनाथ ने अपने शिष्यों के हेतु दयावश इन रहस्यों को प्रकट किया है, इन श्लोकों की रचना अपने विद्यार्थियों के लिए की है। वे तो स्वयं वीतशोक हैं।

श्लोक १

''मैं त्रिपुरा की वन्दना करता हूँ जो कुलनिधि हैं, लाल वर्ण की हैं, जिनके हाथ पैर कामराज जैसे हैं, तीन गुणों के स्वामी त्रिदेव जिनकी स्तुति करते हैं, जो एकान्त देवता हैं, जो विन्दु में बसती है, जो विश्व में व्यापक हैं।''

त्रिपुरा

जो त्रिपुरमयी है। वृत्त, कोण, रेखा और मात्रा है। कालिकापुराण में कहा है, ''उसके तीन कोण, तीन वृत्त हैं, भूपुर तीन रेखाओं से बना है, मन्त्र तीन अक्षरों के हैं और उसके तीन प्रकार हैं।'' कुण्डलिनी शक्ति भी तीन रूपों की हैं जिससे त्रिवेदों की रचना होती है; अतः चूँकि वह सब जगह तीन है इसीसे उसका नाम त्रिपुरा है। (नाम सं. 626)

कुलनिधि

कुल=परिवार। निधि=खजाना। वह ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की एकता है। ज्ञान तभी तक है जब कोई कहे कि मैं इस पात्र (=बर्त्तन) को जानता हूँ। दक्षिणामूर्त्यष्टक में पूज्य आचार्य कहते है ''मुझे ज्ञात है कि विश्व उनका दर्पण है!'' कोश के अनुसार परमशिव से अपने गुरु तक की आध्यात्मिक रेखा को कुल कहते हैं। महाभाष्य का कथन है कि परिवार या कुल दो प्रकार का है, एक जन्म का, एक विद्या प्राप्ति का।'' कुल=आचार है। भविष्य-पुराण में है ''कुल वंश नहीं है बल्कि सदाचार है, हे राजन, जो सदाचार से विहीन है न वह इह लोक में सुखी है न परलोक में।''

सुषुम्ना मार्ग को कुल कहते हैं। कु=पृथ्वी; ल=लय। जिसमें पृथ्वी तत्त्व का लय होवे वह कुल है। मूलाधार केन्द्र है। चूँकि देवी उस केन्द्र मे रहती है इसीसे कुलनिधि है।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, राजस् सत् और तमोगुण के त्रिदेव हैं।

एकान्तम् अ+इ=ए। एका शिव की इच्छा शक्ति है। कर्मधारय। समास से यह शिव-काम है। अतः एका को शिव-पत्नी कहते हैं। 'विश्व' शास्त्र का कथन है कि अ का अर्थ ब्रह्मा, विष्णु, ईश और कच्छप है।

अनेकार्थ ध्वनि मञ्जरी के अनुसार अ मन्मथ है, काम है, इच्छा है।

विन्दु सर्वानन्दमय चक्र।

त्रिपुरा मे प एक का द्योतक है और र दो का।

वररुचि का कथन है, ''व्यञ्जन समूह के क त प य आदि संख्या के प्रतीक हैं। 16 स्वर और न गौण भाषा के प्रतीक है। गणना दायें से।''

सभी शब्दों में ये नियम लागू होते हैं, विशेषतः निम्नोक्त शब्दों में

इस 'पुरा' का अर्थ एक्कीस होता है। ललिता सहस्त्रनाम में 'त्रि' से शुरू होनेवाले 21 शब्द हैं 'त्रिनयना' (453) से त्रिकोणगा (986) तक।

कुलनिधि निधि नौ हैं। 'कुल' से प्रारम्भ होनेवाले नौ नाम हैं : कुलामृतैक रसिका (90) से कुलरुपिणी (897) तक।

अरुणाश्रियम् अरुण=सूर्य=12

'श्री' से प्रारम्भ होनेवाले 12 नाम हैं श्रीमाता (1) से श्री शिवा (998) तक।

कामराज राज=सोलह। 'काम' से प्रारम्भ होनेवाले नाम हैं सोलह कामेशबद्ध (30) से कामकेलितरंगिता (863) तक।

विदधाङ्गी ध=नौ, ग=3=39 । ''वि'' से प्रारम्भ होनेवाले 39 नाम हैं विशुक्रप्राणहरण (76) से विरागिनी (937) तक।

त्रिगुणैः गुण से प्रारम्भ होनेवाले तीन नाम हैं गुणनिधि (604) गुणप्रिया (722) तथा गुणातीता (961)।

निनूतं न 0 त 6 । अतः नि से प्रारम्भ होनेवाले साठ नाम हैं निजारुणा (12) से निरालम्बा (877)।

एकान्तं तं से शुरू एक ही नाम है ताम्बूलपूरितमुखी (559)।

विन्दुगं गं 3। विन्दु से प्रारम्भ होनेवाले तीन नाम हैं विन्दुमण्डल (380), वैन्दवासना (905), पिन्दुतर्पण (974)।

महारम्भं र=2, भ=4=42। महा से 42 नाम हैं, महालावण्य (48) से महेशी (932)।

चलाक्षर सूत्र के क्रम की कुछ परिभाषायें आगे है :

इस सहस्रनाम की भूमिका में 51 श्लोक हैं। ये नाम 182ऋ श्लोक में हैं, उपसंहार में 86ऋ श्लोक हैं। पूरा होकर 320 श्लोक हैं।

प्रथम भाग के 51 श्लोकों में अगस्त्य के 10, सूत के 1 हयग्रीव के 16ऋ देवी के 3ऋ हयग्रीव के 9ऋ, अन्त में ध्यान श्लोक हैं। ये ही वाणियाँ हैं।

श्रीविद्या उपासकों में प्रथम महामुनि अगस्त्य ने अपने गुरुदेव हयग्रीव से श्रीमाता के मन्त्र, न्यास, पूजा पुरश्चरण, होम और रहस्यों को सीखा जैसा कि ब्रह्माण्ड पुराण के सातों श्लोकों में वर्णित है। उन्होंने उनके प्रादुर्भाव के विषय में जाना। अपने तपबल से उन्होंने जाना कि सहस्रनाम उन्हें नहीं सिखाया गया है। इसी पर उन्होंने अपने गुरुदेव से प्रश्न किया

श्लोक १ :

अगस्त्यजी बोले, 'हे महाज्ञानी, सर्वशास्त्र-विशारद हयग्रीव महाराज, आपने मुझे ललिता देवी का अद्भुत इतिहास सुनाया है।

अग=पर्वत, स्त्य=युक्त। काशीखण्ड (भाग 1 अध्याय 5) में इसकी विस्तृत कथा है।

हयग्रीव

हयग्रीव की कथा देवी भागवत् (1-5) में है। एक बार यज्ञ-रक्षा हेतु जागरण के कारण विष्णु भगवान बहुत थक गए थे। अपन धनुष पर सिर रखकर वे सो गये। ब्रह्मा और रुद्र ने उन्हें जगाने के हेतु धनुष की डोरी काटने के लिए एक श्वेत चीटी से कहा कि यज्ञ का कुछ भाग तुझे भी मिलेगा, डोरी काट दे। ऐसा ही हुआ। पर डोरी से विष्णु की गर्दन कट गई। सिर की खोज लोगों ने की, पर मिला नहीं। इस पर लोगों ने माता त्रिपुर सुन्दरी की पूजा की। माँ ने उनसे घोड़े का सिर जोड़ देने को कहा। उन्होंने हयग्रीव विष्णु बनकर उसी नाम के एक राक्षस को मारकर श्री माता से ही देवी के विज्ञान का सब रहस्य सीखा। अतः हयग्रीव विष्णु ही हैं। इस कथा से हयग्रीव पर विष्णु की कृपा का पता चलता है।

ललिता

ललिता, जो खेलती है। पद्म-पुराण में है तीनों लोको के पार वह

खेल करती है अतः वह ललिता है।

शिव और शक्ति से परे पराशक्ति और सदाशिव के अनेक व्यक्त रूप और क्षेत्र हैं। सभी के अपने-अपने अधिकार श्रेणी हैं, किन्तु परम् शिव के समान जो महाशक्ति हैं वे महाकैलाश मे निवास करती है। महाकैलाश और अपराजित ऐसे ही स्थान हैं। उनका शरीर शुद्ध और घनीभूत सत्त्व से बना है जिसमें राजस् और तामस का मेल नहीं है। अन्य शक्तियाँ सत्त्व प्रधान है, शुद्ध सत्व से नहीं। अतः वह सर्वोपरि है, परब्रह्मरूपा हैं। इस देवी के अनेक गुप्त रूप हैं। किन्तु यहाँ कामेश्वरी का वर्णन है जो ललिता के नाम से विख्यात है। शृंगार रस की वस्तुओं को पसन्द करती हैं जिससे भी इन्हें ललिता कहते हैं। बहुत अद्भुत है इनके जैसा इतिहास पूर्व में न सुना गया था और न किसी के समान है।

श्लोक २ :

आपने विस्तारपूर्वक मुझे माँ के प्रादुर्भाव, फिर राज्याभिषेक और उनके द्वारा भण्डासुर के मारे जाने की कथा कही है।

प्रादुर्भाव-जन्म

तैतरीय उपनिषद् (2-7) में है प्रारंभ में मात्र असत् था। छान्दोग्य उपनिषद् (6/11) में भी है : प्रारम्भ में, हे वत्स, असत् मात्र था। तैत्तरीय ब्राह्मण (2-8-9-3) में है न सत् न असत्। अतः सृष्टि से पूर्व मात्र चैतन्य था। कामकलारूपा सृष्टि की इच्छा शक्ति पहले कैसे जगी यह तो गुरु से ही जान सकते है।

जन्म पवित्र यज्ञाग्नि से उनके अवतारों में एक का बोध होता है।

अभिषेक विश्व पर उनके शासन करने की दीक्षा।

श्लोक ३ :

श्रीपुर श्रीचक्र की महिमा और उसका प्रस्तार हम जान चुके हैं, साथ-साथ पञ्चदशी मंत्र की महत्ता भी।

श्रीपुर

रुद्रयामल में श्रीपुर के वर्णन में आया है : यह अनेक भुवनों से परे और ऊपर स्थित है। इसमें 25 दीवाल हैं जिनमें प्रत्येक हजारों योजन लम्बाई वाले हैं। यह एक वर्णन है। ललिता स्तवरत्न में गुरुओं के सम्राट दुर्वासा ने

इसके संक्षिप्त वर्णन में कहा है यह मेरु पर्वत के शिखर पर बसा है। विद्यारत्न के भाष्यकार का कथन है कि यह क्षीर सागर के मध्य में है। यह तीसरे तरह की उक्ति है, तीसरा मत है।

पञ्चदशी मंत्र

पञ्चदशी दो भागों में विभक्त है, कादि विद्या और हादि विद्या। दोनों में एक से यहाँ सम्बन्ध है। इस मंत्र में एक अक्षर 'श्री' जोड़ने का श्रुति भी समर्थन करती है : ''जिनमें चार ''ई'' हैं, वही लोगों के लिए कल्याण-प्रद हैं।''

कोई कोई कहते हैं कि यह शब्द श्री अत्यन्त गुप्त है और परम्परा से ही इसे प्राप्त करना चाहिये। चूँकि तन्त्र में इसका उल्लेख नहीं है, अतः अनेक महान् लोग इस तथ्य को नहीं मानते हैं। बहुतों का कहना है कि ऋग्वेद की यह उक्ति षोडशी से सम्बन्धित है। जब पञ्चदशी मन्त्र के अन्त में श्री लगाते हैं तो षोडशाक्षरी मन्त्र बनता है जिसे श्रीविद्या कहते हैं। कुछ कहते हैं कि ऐसे कुछ मन्त्र हयग्रीव द्वारा अविष्कृत है। यहाँ पर श्री से पवित्रता का अर्थ लेते हैं।

श्लोक ४ :

न्यास खण्ड में : षोडान्यास जैसे न्यासों का वर्णन हुआ है, अन्तर्याग और बहिर्याग (बाहरी) पूजा और

श्लोक ५ :

महायाग (वृहती पूजा) का भी वर्णन आया है। पुरश्चरण खण्ड मे आपने जप के नियम भी बताये हैं। छः मुख्य न्यास हैं गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि और पीठ। ये मिलकर षोडान्यास कहलाते हैं। ये कई प्रकार के हैं भूषण, मालिनी इत्यादि।

चक्रन्यास और अन्य कई न्यास हैं।

न्यास किसी एक देवता को अपने अङ्ग में उनके स्थान पर ध्यान करना है।

अन्तर्याग देवता की मानसिक पूजा है। मूलाधार से लेकर राजदन्त तक ज्योति के धागे पर ध्यान करना है।

बहिर्याग पूजा प्रारम्भ से लेकर, कलश गणेश स्थापन से लेकर,

शान्ति-स्तव तक की क्रिया है।

महायाग बहिर्याग आठ अष्टकों द्वारा करते हैं। वरिवस्या रहस्य के पूजा-प्रकरण में वर्णित है।

पुरश्चरण दीक्षा के बाद धारणा के बाद पूर्ण जप करना ही पुरश्चरण है। मन्त्र-जप में पाँच अवस्था, छः शून्य, सात विषुव और नौ चक्र आते हैं।

श्लोक ६ और ७ :

होमखण्ड में आपने होम-सामग्री एवं होम-विधि बताई है तथा रहस्यखण्ड में चक्रराज, विद्या (पञ्चदशी), श्री देवी, गुरु एवं शिष्य में मौलिक एकता, तादात्म्य के विषय में बताता है। चक्रराज में विन्दु से सभी चक्रों तक 9 संख्या है।

विद्या पञ्चमी या षोडशी

श्री देवी माता त्रिपुर सुन्दरी

तादात्म्य सभी ब्रह्म हैं। भगवद्गीता (17-23) में है ऊँ तत् सत्। ये तीन ब्रह्म-वाचक हैं। अतः सभी ब्रह्म हैं। इस तादात्म्य को वरिवस्था रहस्य में दिखाया गया है।

बहुविधा पञ्चमीस्तवराज और अन्य स्तुति।

श्लोक ८ :

मन्त्रिणी एवं दण्डिनी देवी के सहस्रनाम मुझे कह चुके हैं किन्तु ललिता देवी का सहस्रनाम मुझे नहीं कहा है।

मंत्रिणी राज संचालन में सहायिका है। तंत्रों में इन्हें राजश्यामला का कहते हैं।

दण्डिनी शत्रु या इन्द्रियों के दमन में सहायता करती है। इन्हें वाराही कहते हैं।

श्लोक ९ :

हे हयग्रीव, दयासागर, यहाँ पर मुझे संदेह है कि आप इसे कहना भूल गये हैं अथवा जानबूझ कर उपेक्षा की है?

श्लोक १० :

अथवा मैं इस सहस्रनाम के सुनने का अधिकारी नहीं हूँ। कृपया इसे छोड़ देने का कारण सुनायें।

सहस्रनाम उन्हें क्यों नहीं सुनाया इसके चार कारण हो सकते हैं:

1. गुरु भूल गये कहना। हयग्रीव सर्वज्ञ हैं अत: भूलने का प्रश्न ही नहीं।

(2) गुरु उदासीन रहे कहने से। यह भी संभव नहीं क्योंकि चार प्रकार के सम्बन्धों में (मित्र, शत्रु, सेवक, अन्य) शिष्य सेवक के रूप मे लिए जाते हैं। अत: वे पराया नहीं हो सकते। गुरु करुणामय होते हैं।

(3) शिष्य अधिकारी न रहे। यह भी संभव नहीं, क्योंकि अधिकार तो गुरु स्वयं प्रदान करते हैं। बोधसार में कहा है पवित्र गुरु बिना कमल के कमल-गुण भर देते हैं (ज्ञान प्रदान द्वारा) विचार और निष्काम भाव पुष्टकर सूर्य जैसे कमल को खिला देते हैं। वैसे ही शिष्य को सद्गुरु विकसित करते है। अत: हर एक प्रयास से सूर्य रूपी गुरु के पास जाय।

(4) चौथा कारण है कि यह ज्ञान गुप्त है, जैसा कि 13वें श्लोक में है।

श्लोक ११ :

सूत ने कहा महाभाग कुम्भसंभव के प्रश्न से हयग्रीव अतिप्रसन्न होकर परम भक्त कुम्भसंभव से यों बोले

भारत का निषेध है "नहीं पूछने पर नहीं कहे। वेद-आज्ञा है।" फिर उसी के दूसरे भाग में है गुरु अनुकूल हो तो शिष्य के न पूछने पर भी कहे। श्रद्धावान् विश्वासयुक्त शिष्यों के लिए ऐसा है। ऐसा कथन है कि बिना विश्वास के बहुत हानि है। बौधायन का कहना है अविश्वास घोर पाप है। विश्वास महान् तप है। बिना विश्वास के दिये हुए कुछ भी देवता नहीं लेते है। कोई यज्ञ करे, दान दे, वह स्वर्ग नहीं पहुँचता जिसका आचरण सन्दिग्ध है। जो मनमाना करते है, शास्त्र के विपरीत चलते हैं वे मूर्ख है, क्योंकि धर्म के सभी नियमों का वे उल्लंघन करते हैं। श्रुति भी कहती है "विश्वास से अग्नि प्रज्वलित होता है, विश्वास से बलि प्रदान होता है।" अर्थ यह हुआ कि बिना विश्वास के यदि कोई प्रश्न करता है तो उसे ज्ञान का उपदेश नहीं करना

चाहिये। यदि किसी विद्यार्थी को पूर्ण श्रद्धा और विश्वास हो, वह प्रश्न न भी करे तो गुरु उसे विद्या दे सकते हैं। किन्तु अगस्त्य जी को विश्वास भी है और प्रश्न भी करने की शक्ति है। "फिर भी उन्होंने पूछा क्यों नहीं" ऐसा गुरुराज हयग्रीव ने सोचा कि शिष्य की सेवाओं से प्रसन्न एवं दयार्द्र थे तथा उन्हें उपेदश करना चाहते थे।

"पूछा नहीं, देना नहीं है" इस भावना से हयग्रीव विह्वल हो गये। शिष्य ने भक्तिपूर्वक पूछने मे विलम्ब किया। चूँकि श्री अगस्त्यजी ने स्वयं नहीं पूछा था, इसी कारण सहस्रनाम की शिक्षा उन्हें नहीं दी गई थी।

आस्तिक

तापस

अगस्त्यजी के उसी विश्वास ने उनमें ज्ञान की प्यास जगा दी। यह विश्वास तभी जगता है जग सब पापों से मुक्त होकर, यज्ञ-याज्ञ के द्वारा पवित्र होवे।

कुम्भ-सम्भव

प्राणायाम की तीसरी अवस्था कुम्भक के बहुत दिनों तक अभ्यास करने से, मन के भागने की प्रवृत्ति रोकने से, वे कुम्भ-सम्भव कहलाये। रेचक और पूरक साधन तो आसान है। चूँकि अगस्त्यजी देवी के उपासक हैं, गुरु उन्हें इन श्लोकों की शिक्षा देते हैं। यदि किसी को श्रद्धा और विश्वास हो, परन्तु विद्या की उपासना न करे तो जैसा शास्त्र का कहना है कि ऐसे लोगों को गुरु बतावें तो वह योगिनियों के शाप का भागी होता है।

श्लोक १२ :

हयग्रीव ने कहा हे लोपामुद्रा के पति अगस्त्यजी, ध्यान से सुनें। पहले क्यों नहीं आपको सहस्रनाम बताया सो कहता हूँ।

लोपामुद्रा

आदर्श पत्नी हैं। उसी देवी की उपासना में सदा लगी रहती है जिनकी पूजा में स्वामी ने जीवन का हर क्षण लगा दिया। अत: अगस्त्यजी को पूर्ण सम्मान देते हुए यहाँ उन्हें लोपामुद्रा का पति कहा है। देवी स्वयं त्रिशती में कहती है : उनकी पत्नी लोपामुद्रा मुझे बड़े भाव से पूजती है, वे स्वयं भी

मेरे प्रति अति श्रद्धावान् हैं। अतः आप उन्हें उपदेश कर सकते हैं।

लोपामुद्रा से मंत्र या त्रिपुर सुन्दरी अर्थ भी लेते हैं। यहाँ पति पुजारी अर्थ में है।

श्लोक १३ :

मैंने आपसे इसीलिए नहीं कहा कि यह अतिगोपनीय है। दूसरा कोई कारण नहीं। अब आपने चूँकि श्रद्धापूर्वक पूछा है तो मैं इसे बता रहा हूँ।

श्लोक १४ :

गुरु अपने श्रद्धावान् शिष्य की गोपनीय तथ्य बता सकते हैं किन्तु जिनमें भक्ति नहीं है उन्हें आप नहीं कहेंगे। अभक्त को पूछने पर भी न कहें। भक्त को बिना पूछे भी बतायें

श्लोक १५ :

शठ को न कहें, बदमाश को न कहें। जिसने कभी भी अविश्वास किया हो उसे न कहें। यह उसे ही बतावें जो जगदम्बा का अनन्य उपासक हो, जो राजविद्या को समझ सके।

श्रुति कहती है विज्ञान ब्राह्मण के सम्मुख जाकर कहने लगा ''मुझे छिपाकर रखो। मैं तुम्हारा खजाना हूँ। जो द्वेषी हो, क्षुद्रमति हो, शैतान हो उसे नहीं दिखाना। ऐसे रखोगे तो धर्म बढ़ेगा।''

शठ

जो जानता है कि गुरु ने आँखें खोल दी है, फिर भी अपना महत्त्व जमाने के लिए कहे कि मैं खुद जानता था, या बहाना बनावे कि हम नहीं पहचानते हैं।

दुर्जन-दुष्ट

जिसका हृदय शुद्ध न हो। जो गुरु से कहे कि सब मालूम है। जो गुरु का अपमान करे, गाली दे।

विश्वास जो गुरु वचन है, परम सत्य है।

भक्तितन्त्र शांडिल्य सूत्र का कथन है कि ईश्वर के लिए सर्वोत्तम भाव भक्ति है।

विद्याराज पञ्चदशी मन्त्र है। यह गुरु से ही जानें।

श्लोक १६ और १७ :

जो उपासक शुद्ध हों उन्हें आप सहस्रनाम बतावें। तन्त्रों मे श्री ललिता के अनेकों सहस्रनाम हैं, जो शक्तिशाली हैं किन्तु यह नाममाला सर्वोत्तम और प्रथम ही है। सभी मन्त्रों मे श्रीविद्या प्रथम है और उनमें कादि विद्या प्रथम और सर्वोत्तम हैं।

उपासक

जो नित्य और नैमित्तिक पूजा करते हों तथा पूजते समय सदा देवी के अखण्ड रूप का ध्यान सबों में करे।

शुद्ध

जो बेइमानी और बदले की भावना से मुक्त हो।

अनेकों सहस्रनाम

कोटि-कोटि सहस्रनामों में सिर्फ दस सहस्रनाम चुने गये हैं जिनके प्रथम अक्षर हैं गं, गा, श्या, ल, का, बा, ल, रा, स, भ (अ. 3 श्लो. 70)।

तन्त्र

64 तंत्रों एवं पुराणों में अनेकों सहस्रनाम हैं।

मंत्र

मंत्र और विद्या में अन्तर है कि मंत्र पुरुष देवता के होते हैं और विद्या स्त्री देवता के। शिव-शक्ति की एकता दिखाने हेतु यहाँ मंत्र शब्द का व्यवहार हुआ है। ऐसा कहा है देवी का ध्यान स्त्री या पुरुष रूप में भी कर सकते हैं या निर्गुण सच्चिदानन्द रूप में। मालामंत्र भी दोनों लिङ्गों के नाम से है; अतः इस सहस्रनाम में भी स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक शब्द हैं। गुणनिधि पुल्लिग है, श्रीमाता स्त्रीलिंग है, परमज्योति नपुंसक है। मंत्राणां से बहुवचन कहा है। जिससे तीन कूटों वाला पञ्चदशी मंत्र बना है।

मंत्र पाँच प्रकार के हैं। नित्या तंत्र में है

(1) पिण्ड एक अक्षर का होता है (2) कर्तारी दो अक्षरों का (3) बीज तीन से नौ अक्षरों का (4) मंत्र दस से बीस अक्षरों का (5) माला बीस से अधिक का।

यहाँ मंत्र पञ्चदशी के लिए उचित कहा है।

कादि

जिसके आदि में ''क'' हो। इससे काली शक्ति का भी परिचय हो सकता है जैसा तंत्रराज में है। उसमें शिव देवी से कहते हैं ''क'' तुम्हारा रूप है जो सभी सिद्धियों को देने वाला है। श्रुति (त्रिपुरोपनिषद्) नं. 82 में हैं परा विद्या का मंत्र, काम, योनि, कमला, वज्रपाणि, गुहा, हसा, मातरिश्वा, अभ्र, इन्द्र, गुहा, सकल और माया से बना है। सर्ववेदान्त प्रत्यय सिद्धासन के अनुसार यद्यपि सभी विद्याओं का स्रोत वेद है, सभी एक ही हैं, फिर भी उपासक की बुद्धि क्षमता एवं अधिकार के अनुरूप भेद है।

कादि विद्या सर्वोत्तम (परा) इसलिए है कि अन्य विद्याओं में 37 अक्षर, 36 तत्त्व के तथा एक ब्रह्म के, नहीं हैं। इन तथ्यों पर वरिवस्या रहस्य के अ. 2 श्लोक 26 में वर्णन है। उसमें यह कहा गया है कि ''शुद्ध विद्या (कादि) वह है जिसमें स्वर, व्यंजन, त्रिविन्दु, त्रिनाद, जो 36 तत्त्व का हो और वह जो उनसे परे हो।

यह गुप्तार्थ एवं अन्य ऐसे तथ्य (जो गुरु से जानें) हादि विद्या मे लागू नहीं है। माँ के मंत्र का यदि एक अक्षर भी अच्छी तरह पा ले तो उस व्यक्ति से रवि, गरुड़, इन्दु, कन्दर्प, शङ्कर, अनल और विष्णु भी ईर्ष्या करने लगते है। (सेतुबन्ध 1-2)। ग्यारहवाँ स्वर 'ए' कार जो त्रिकोंणकार है, अभी भी पालनकर्त्ता एवं विश्वबीज है, ब्रह्माण्ड से अनन्त तक (सेतुबन्ध 1/6)। कुछ लोग कहते हैं (ऋग्वेद 5-47-4) इसमें चार ''ई'' हैं और कल्याणप्रद है यह उक्ति सिर्फ कादि विद्या में ही लागू है। त्रिपुरातापिनी उपनिषद् (80) में है अब हम विद्या के अतिरहस्यमय भाग पर कहेंगे तब गायत्री और पञ्चदशी की एकता और समता पर कहेंगे। तत्=क

ऐसे ही अन्य अक्षरों पर है त्रिशती में भी श्री कामेश्वर ने अपनी प्रिया से कहने में पंचदशी को वैसा ही सम्मान दिया है। किन्तु तंत्रराज में तीन कूटों में तीसरा पहले पढ़ा जाता है और इसमें एक अक्षर ज्यादा है जो अन्यत्र नहीं है। सम्भव है उच्चारण की सुविधा के लिए ऐसा दिया हो। यह हादि विद्या मात्र के लिए लागू है। यह कादि विद्या के बाद की विद्या है जैसा त्रिपुरातापिनी उपनिषद् (80) में है। सौन्दर्य लहरी के श्लोक 32 और 33 कादि और हादि से सम्बन्धि हैं।

श्लोक १८ :

जिस तरह नगरों में श्रीपुर सबसे सुन्दर है, उसी तरह ललिता शक्तियों में (सखियों में) सर्वोच्च हैं। देवी श्री विद्या के भक्तों में परम शिव श्रेष्ठ हैं।

शिव

उपासना का लक्ष्य है अपने ईष्टदेव से एक हो जाना। यह एक होने का भाव परमशिव में सदा रहता है। अन्यथा वे आदिनाथ कैसे हो जाते? फिर हम और आप एक होना कैसे जानते? परमशिव रुद्र इत्यादि से भिन्न हैं।

श्लोक १९-२० :

अतः अनेक सहस्रनामों में यह सर्वोत्तम है। दूसरे सहस्रनाम से देवी ललिताम्बा उतना प्रसन्न नहीं होती जितना इससे। अतः माँ का अनुग्रह पाने के हेतु इसे बारम्बार लगातार पाठ करें। पाठ स्पष्ट उच्चार कर तथा मन ही मन। लगातार रोज पाठ करें। अग्निहोत्र करें। अवश्य और श्रद्धापूर्वक।

श्लोक २१-२२ :

चक्रराज (श्रीयन्त्र) पर जो बेलपत्र, कमल या तुलसी दल से, सहस्रनाम से, माँ ललिता की पूजा करते हैं, उससे सिंहासन पद बैठकर शासन करने वाली अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाती है। जब चक्रराज की पूजा समाप्त हो जाय तो वह मन्त्र जप करे।

श्लोक २३ :

जप के अन्त में फिर सहस्रनाम पाठ करें। यदि जप, पूजा में असमर्थ हो तो वह सहस्रनाम पाठ कर ले।

श्लोक २४ :

ऐसा करने से उनमें उतना गुण भर जायगा जितना विस्तारपूर्वक पूजा और जप से मिलता है। उसकी पूजा में वह दूसरे स्तोत्रों का भी पाठ करे, वे भी गुण प्रदान करते हैं। साङ्ग-पूजा आवरण पूजा से लेकर ईष्ट देवता तक सबकी पूजा होती है। मन्त्र जप के साथ कुल्लुका, सेतु, महासेतु (जो ॐ के विविध प्रकार के उच्चार हैं) और न्यास भी साङ्ग पूजा में आते हैं। अन्य स्रोत त्रैलोक्यमोहन कवच आदि हैं।

श्लोक २५ :

रोज सहस्रनाम का पाठ करेंगे, श्रीचक्र की पूजा रोज करेंगे, जप

करेंगे और देवी के सहस्रनाम का पाठ करेंगे।

श्लोक २६ :

उपासक नित्यार्चन करें, शेष तो उन्नति के लिए है, किन्तु उपासक के लिए सहस्रनाम का पाठ जरूरी है।

श्लोक २७ :

हे कुम्भ संभव, मैं इसका कारण कहूँगा। एक बार देवी ललिता ने अपने भक्तों के उपकार के लिए

श्लोक २८ :

वाग्देवियों को बुलाया, जिनमें प्रधान वशिनी थी। उनसे ऐसा कहा ''हे वशिन्यादि वाग्देवियों, मेरी बात सुनों।'' वशिनी के साथ सात देवियाँ और हैं।

श्लोक २९ :

मेरी दया से आप सबों की वाणी विभूषिता है। मैं आप सबों से यही कहती हूँ कि आप मेरे भक्तों को वाणी-विभूति देवें। नकुली आदि अनेक शक्तियाँ हैं जिनमें देवी की दया से वाक्-शक्ति प्रचुर है; किन्तु उनका काम वाक्-स्तम्भन है या अन्य साधन हैं जिन्हें वे माँ के भक्तों से झगड़ने वालों पर प्रयोग करती हैं।

अतः वशिनी आदि को ही स्मरण किया।

श्लोक ३० :

आप सभी मेरे चक्र का रहस्य जानते हैं और मेरे नामों के परायण में आप लीन हैं। भक्तिमती हैं; अतः आपसे मेरी आज्ञा है कि आप मेरे नामों के स्तोत्रों की रचना करें, उसका विधान करें।

मचक्रस्य रहस्यज्ञा मेरे चक्रों के रहस्य जानने वाली। वशिनी के रचे स्तोत्रों की तरह अनेक स्तोत्र हैं फिर यही क्यों? क्योंकि अन्य स्तोत्रों में चक्र का रहस्य नहीं आया है। विन्दु से भूपुर तक के स्थान को चक्र कहते हैं। देवी की वासना (पूजा) है यह। चक्र से तुरीय की अवस्थाओं के शक्ति-समूहों के अनन्त पुंज का बोध होता है। यह तुरीया पूर्ण अहं भाव सब कुछ मैं का पूर्ण भाव है, ज्योति की एकाएक चकाचौंध-सी जगनेवाली है, व्यक्ति की अपनी ही चेतना में स्वयं पुष्ट होकर पूर्णत्वभाव से रहनेवाली स्वसंवित् में जगनेवाली है। अन्यथा इसे विमर्श या प्रकट रूप कहते हैं। इन शक्तियों पर ध्यान गुरुदेव

से सीख सकते हैं। इसी से इसका नाम रहस्य है। जो कोई उस महाभाव में प्रवेश करते हैं वे अपने में ही सब पा लेते हैं। शिव-सूत्र (1-6) में है जब कोई शक्ति-चक्र पर ध्यान करता है तो सार, विश्व उसमें समाविष्ट हो जाता है और (11।6) गुरु माध्यम हैं।

पूर्णा भक्ति

श्रीचक्र की महिमा गान करने वाले, उनकी कीर्ति का बखान करने वाले जब अरुणा, गुह्यक और त्रिपुरा आदि उपनिषद् हैं तो फिर नये स्तोत्र की क्या जरूरत है? इसका उत्तर यह है कि इन नामों के सिर्फ साधारण अर्थ ही नहीं हैं बल्कि ये इस तरह शृंखलाबद्ध हैं जिससे चक्र और मंत्रों के अनेक अर्थों का ज्ञान होता है। यही कारण है कि देवी ने इसकी रचना करने की आज्ञा वाग्देवियों को दी।

श्लोक ३१ :

मेरा सहस्रनाम वाला स्तोत्र रचें; जिसे भक्त प्रेम से गावें और मैं उनपर तुरन्त रीझ जाऊँ।

कुरुध्वमङ्कितं

विशेष नाम ललिता पुस्तक के अन्त में सहस्रनाम मन्त्रमाला से सुमेरु रूप में अङ्कित रहें। अन्य नाम भवानी इत्यादि भी हैं पर वे रुद्र इत्यादि की शक्ति हैं। हयग्रीव ने कहा

श्लोक ३२ :

दिव्या माँ ललिता से इस तरह आज्ञा पाकर माँ देवी के रहस्य नामों से पूर्ण इस स्तोत्र की रचना की। रहस्य इसलिए कि इसमें चक्र और मंत्र के रहस्य भरे पड़े हैं।

श्लोक ३३ :

इसी से इसका नाम रहस्य नाम साहस्र है। कदाचित् माँ अपने सिंहासन पर बैठी थी

श्लोक ३४ :

सबों को उन्होंने दर्शन दिया। हे कुम्भसंभव, उनकी सेवा में कोटि-कोटि ब्रह्मा और ब्रह्माणी की तत्परता थी।

ब्रह्माणी

ब्रह्मा:अण

ब्रह्मा=वेद, अण=दुहराना

चारों वेदों का पाठ करने वाले तथा उनकी स्त्री ब्राह्मणी। स्वच्छन्द तन्त्र का कहना है : ब्रह्मा की गोद में ब्रह्माणी शक्ति है वह ब्राह्मणों का अण, जीवन देती हैं, ब्रह्मा को जीवन देती है।

रुद्रयामल के सर्वमङ्गला ध्यान अध्याय में कहा गया है कि माँ श्री देवी सदा कोटि-कोटि ब्रह्मा और ब्रह्माणी से घिरी रहती हैं।

श्लोक ३५ :

कोटि-कोटि नारायण और नारायणी, रुद्र और गौरी भी कोटि-कोटि हैं।

करोड़ों नारायण

अनन्त ब्रह्माण्डों में प्रत्येक में एक-एक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं, सबों का सह-अस्तित्व है, सृष्टि, स्थिति और संहार कार्य में रत हैं।

माँ श्री देवी का शासन सब पर है।

श्लोक ३६ :

विविध शक्तियाँ जिनमें मन्त्रिणी और दण्डिणी मुख्य हैं, सेवा के लिए आयी हुई थीं।

शक्तयोविविधाकारा

रुद्रयामल एवं अन्य ग्रंथों में है : परा शक्ति, आदिशक्ति, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, बाला, बला, अन्नपूर्णा, बगला, तारा, वाग्वादिनी, परा, गायत्री, सावित्री सिद्धलक्ष्मी, स्वयंवरा, नकुली, तुरंगारूढ़ा, कुरुकुल्ला, रेणुका, सम्पत्करी, साम्राज्यलक्ष्मी, पद्मावती, शिवा, दुर्गा, भद्राकृति, कालखण्डी सुभद्रिका, छिन्नमस्ता, भद्रकाली, कालखण्डी, सरस्वती एवं अन्य। विविध शक्तियाँ अनेक रूपों में हैं।

श्लोक ३७ :

दिव्यौघ, मानवौघ एवं सिद्धौघ देव सब पहुँच चुके थे। वहाँ माँ ललिता देवी ने सबों को दर्शन दिया।

दिव्यौघ में ब्रह्मर्षिगण, विश्वामित्र इत्यादि। सिद्धौघ में सनक, नारद एवं अन्य जोगीजन।

रुद्रयामल में है देवी के निकट दिग्पाल, कोटि-कोटि चन्द्र, सूर्य, वसु, सनकादि, कोटि-कोटि योगीजन, सप्तर्षि और असंख्य नारद हैं। ओघ=समूह देवगणों का, मानव और सिद्धों का। गुरुओं की अनेक श्रेणियाँ हैं। परमगुरु सात हैं जिनमें प्रथम पर प्रकाशानन्दनाथ हैं। आठ परापर गुरु हैं जिनमें प्रथम गगनानन्दनाथ हैं, तथा चार अपर गुरु हैं जिनमें प्रधान भोगानन्दनाथ हैं। इन्हीं तीनों श्रेणियों के गुरु को देव, मानव और सिद्ध समुदाय में कहा गया। उपरोक्त व्याख्या कामराज उपासना पद्धति में है। किन्तु लोपामुद्रा एवं ज्ञानार्णव के मत से मिश्रानन्द आदि अनेक समुदाय हैं।

गुरु-पद्धति का ज्ञान-मात्र गुरु उपदेश से ही होता है। सर्व 8वाँ है पदार्थ से जो स्वयं 18वीं संख्या है।

श्लोक ३८ :

माँ की पूजा कर लेने पर सभी यथाक्रम अपने-अपने स्थान पर बैठे। तब माँ की दृष्टि से इंगन पाकर, इशारा पाकर=(राजा की दाँयी ओर पुत्र और वायें आठ मन्त्री बैठे विश्वकर्म शास्त्र)

श्लोक ३९ :

हाथ जोड़कर वशिन्यादि देवियाँ उठीं, माँ की स्तुति की तथा सहस्रनाम सुनाया जिनकी रचना उन्होंने की थी।

श्लोक ४० :

परमेश्वरी ललिता पाठ सुनकर प्रसन्न हुई। वहाँ बैठे सभी लोग विस्मित, चकित हो गये।

चकित

विष्णुपुराण आदि अन्य सहस्रनामों में बहुत से निरर्थक शब्दों को जोड़कर मात्रा पूरी की गई है, जैसे 'एव', 'च' इत्यादि। अन्य स्थानों में अनेक शब्दों को दो-दो तीन-तीन स्थानों पर पुनरुक्ति हुई है। यद्यपि विद्वानों ने अनेक अर्थ दिये हैं किन्तु पुनरोक्ति दोष तो आ ही जाता है।

किन्तु इस सहस्रनाम में ऐसा कोई दोष नहीं है। प्रत्येक नाम में चक्र और मंत्र का गूढ़ रहस्य छिपा है, जो सामन्य अर्थों से सर्वथा विलक्षण है।

यद्यपि इनके हाथों का ज्ञान गुरु से ही होता है, फिर भी भक्तों के हृदय को आनन्द प्रदान के हेतु यहाँ कुछ दिये जायेंगे।

श्लोक ४१ :

ललिता देवी ने सभासदों से कहा कि वाग्देवियों ने मेरी आज्ञा से इसकी रचना की है, अतः मेरा आनन्द बढ़ा है इस अतुलनीय रचना से।

श्लोक ४२ :

इसमें मेरे बहुतेरे नाम अङ्कित हैं जो मेरी प्रीति के प्रेरक हैं अतः सभी सदा इसका पाठ करें और मेरा आनन्द बढ़ाते रहें।

श्लोक ४३ :

मेरे भक्तों को यह सहस्रनाम खोल दें। मेरा भक्त यदि एकबार भी यह सहस्रनाम पढ़ ले तो

मेरा भक्त=श्री विद्या में दीक्षित, विधिवत् दीक्षित।

श्लोक ४४ :

इसका पाठ करने वाला मेरा अतिप्रिय रहेगा और मैं उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति करूँगी। श्री चक्र में मेरी पूजा पूर्ण कर और पञ्चदशाक्षरी मन्त्र का परायण कर

श्लोक ४५ :

वह मेरे सहस्रनाम का पाठ करे। वह मुझे श्री चक्र में न भी पूजे या पञ्चदशी का जप न भी करे।

श्लोक ४६ :

यदि वह इस सहस्रनाम का पाठ कर ले तो मेरी कृपा से उसकी सभी कामनायें पूर्ण होंगी।

श्लोक ४७ :

अतः आदरपूर्वक सहस्रनाम का पाठ कर ले; इस तरह इशानी ललिता ने सभा में उपस्थित देवताओं और उसके अनुयायियों से कहा आज्ञा दी।

आज्ञा का आदेश

यहाँ वर्तमान में आदेश का व्यवहार हुआ है ''आज्ञा देती है''। यह माँ की इच्छा है। शासन और आज्ञा शब्द यहाँ शाश्वत भाव में है। अतः अनुशासन में वर्त्तमान का भाव लागू है।

श्लोक ४८ :

तब से 'शासन', आज्ञा पाकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और शक्तिगण जिन में मन्त्रिणी आदि हैं।

श्लोक ४९ :

सदा सहस्रनाम का पाठ कर, माँ को प्रसन्न कर कृपा भाजन बनते हैं। अतः हे मुनि, भक्त अवश्य ही पाठ करें।

श्लोक ५० :

हे मुनीश्वर, इसका पाठ क्यों आवश्यक है मैं कह चुका हूँ; अब सुने मैं पाठ करता हूँ।

हयग्रीव-अगस्त्य संवाद, जो ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तर खण्ड में ललिता सहस्रनाम की भूमिका रूप में है, यहाँ अन्त होता है।

न्यास

सहस्रनाम माला मन्त्र के हेतु व्यक्ति पहले अपने शिर में प्रणाम करे वशिन्यादि वाग्देवता ऋषियों को; मुँह में अनुष्टुप छन्द को; हृदय में देवता त्रिपुर सुन्दरी को; नाभि में बीज को; आधार में शक्ति को और चरणों में कीलक को प्रणाम करे। जप का उद्देश्य चारों पुरुषार्थों की सिद्धि है।

ऋषियों का न्यास शिर में इसलिए किया जाता है कि वे गुरु हैं (मन्त्र-द्रष्टा हैं। देवता का वास हृदय में है अतः देवी का ध्यान हृदय में ही करें। चूँकि छन्दों में अक्षर हैं अतः जिह्वा में उनका ध्यान करें।

मन्त्रशास्त्रविशारद इस तरह यथा स्थान में ही ध्यान करेंगे। प्रपञ्चसार में आदि शङ्कराचार्य ने सभी उचित स्थानों का संकेत दिया है। शैव शाक्त के न्यासों में अन्तर है। पदार्थादर्श में इनका वर्णन है।

ये सब विषय वरिवस्या रहस्य में पृथक वर्णित हैं।

ध्यान श्लोक

परमा माँ का हम ध्यान करते हैं
सिन्दुर-चूर्ण जैसा लाल रंग है,
तीन आखें हैं
मणि मानिक्यमय मुकुट पर चन्द्र विराजित हैं
वह मन्द-मन्द मुस्कुरा रही है, दीर्घ स्तन है;
लाल कमल फूल हाथों मे लिए हैं

सौम्य रूप है तथा अपने चरण

रत्न भरे घट पर रखे हैं

तापिनी कला प्रथमा कला है सौभाग्य भास्कर भाष्य का जिसे भासुरानन्द ने रचा है। चार पद उनके गुरु के हैं, जो परिभाषा में कहे हैं।

परिभाषा के चालीस पदों के रचयिता आगे दिखाते हैं कि 51 मातृका वर्णों से मात्र 32 अक्षर ही इन सहस्रनामों के नाम-प्रारम्भ के लिए चुने गये हैं :

(क) 16 स्वरों में 1 से 5, यानी अ आ इ ई उ तथा ए, ओ और अं लिये गये। ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ से औ अः ये आठ छोड़ दिये गये।

इसी तरह क वर्ग के घ और ङ; च वर्ग के झ और ञ; ट वर्ग के ट, ठ, ढ़ और ण; त वर्ग के थ; प वर्ग के फ; और अन्तिम ज्ञ, कुल 11 व्यञ्जन छोड़ दिये गये।

इस तरह आठ स्वर और 11 व्यञ्जन, कुल 19 अक्षर छोड़े गये हैं। 51 अक्षरों में 32 लिए गये हैं। इसी से सूत संहिता (4-47) में है, ''मैं उस पराशक्ति को भजता हूँ जिसने अपने को 32 अक्षरों में विभक्त किया है।

(ख) नाम सूची लें जिनका पहला अक्षर उन 32 अक्षरों में आता है।

अ 40	आ 10	इ 3	ई 2	उ 5
ए 1	ओ 2	अं 4	क 81	ख 1
ग 24	च 29	छ 1	ज 19	ड 2
त 46	द 37	ध 14	न 75	प 81
ब 24	भ 37	म 112	य 13	र 38
ल 14	व 79	श 59	ष 5	स 122
ह 11	क्ष 9			

(ग) सहस्रनामों की व्याख्या साधकों के हित में की गई है जिसके अनेकानेक गुण कार्य हैं। देवी की सर्वव्यापकता एवं मूर्तिमानता का उन नामों में समावेश है।

लाभ

जो अ से क्ष, अमृताकर्षणी से क्षमावती तक की, देवी के 51 मातृकाओं की अधिष्ठात्रियों की आराधना करना चाहते हैं, अथवा जो पापमुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए मात्र मातृका एवं उनकी अधिष्ठात्री देवी का नाम

ही पर्याप्त है।

क्रिया

अंग सहित ब्रह्म सकल है। अंग रहित ब्रह्म निष्कल है।

श्रुति कहती है, ''दो रूपों के ब्रह्म को जानें पर और अपर''। (मुण्ड. उ.)। स्मृतियों में भी इसकी पुष्टि है। अंगसहित सामान्य रूप है ब्रह्म का। इसके दो प्रकार हैं (1)विश्व का संचालक (2)विश्व

कहा है वह शिव कर्त्ता, भोक्ता और विश्व भी है। उसी में सृजन, पालन और संहार भी हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में है ''एक हूँ अनेक बन जाऊँ''। उनके इस कामना में ब्रह्म का निमित्तकारण भाव है। ''मैं हो जाऊँ'' में परिणाम कारण भाव है। वेदान्त सूत्र 1-4-23 में व्यासजी के ऐसे ही कथन हैं ''ब्रह्म ही जीव का परिणाम कारण है। भौतिक कारण भी है।''

विश्व

विश्व रूपी ब्रह्म दो प्रकार का है सचल और अचल। इसके भी दो-दो प्रकार हैं (1) हिरण्यगर्भ और अन्य (2) मनुष्य एवं अन्य, पशु आदि।

संसार का शासक भी सृष्टि, स्थिति, संहार, लय एवं अनुग्रह के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि हैं। इनके रूप भी अनन्त हैं। उनमें से प्रत्येक अपने भक्तों को वरदान देने के हेतु अपनी वासना के अनुरूप धारण करते हैं। भक्त और यज्ञ का भी रूप ले लेते हैं। सुप्रभेद का कथन है ''आस्तिक, मुनि, ज्ञानी और योगी के ध्यान और पूजा के हेतु अपनी माया से वह अनेक रूप धारण करता है।''

कालिकापुराण में कहा है ''जीव के विभिन्न कर्मों के अनुरूप एक ही माया (देवी) कामकला, सरस्वती, संध्या और सावित्री रूप धारण करती है।'' वृहदनारदीयपुराण में भी शक्ति को विश्व का कारण बतलाया है। कोई उमा, लक्ष्मी, भारती, गिरिजा, अम्बिका, दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ब्राह्मी, विद्या, अविद्या, माया, प्रकृति आदि कहते हैं। देवीपुराण में है ''हे ज्ञानी, चर और अचर में देवी की विद्यमानता है। वही देव है; यज्ञ हैं, स्वर्ग है और यह सारा विश्व भी है। देवी सर्वत्र ओत-प्रोत है। यज्ञ और पूजा सब वही है। खाद्य एवं पेय भी वही है। नाम रूप अनेक है। देवी सर्वत्र है वृक्षों में, पृथ्वी में, वायु में, आकाश में, जल में, अग्नि में।''

बिना अंग या खण्ड के ब्रह्म एक हैं

निष्कल एक हैं।

कूर्मपुराण में देवी द्वारा हिमवत् से संदेश है ''यदि आप मेरे शाश्वत और परा रूप की उपासना मे अक्षम हैं तो आप मेरे सकलस्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करें। मेरा यह स्वरूप समय और परिस्थिति के अनुरूप परिवर्त्तनशील है। मन में गाह्य भी है। मेरे जिस रूप पर आपका मन रम जाय उसी पर ध्यान करें। हे पिताजी, उसी में तन्मय होकर उपासना करें। किन्तु मेरा पर स्वरूप, शान्त, शीतल, मधुर और निरुपाधिवाला स्वरूप निष्कल है, जिसकी प्राप्ति मात्र ज्ञान के सहारे ही हो सकती है और वह भी अत्यन्त कठिनाई से।''

इसलिए देखते हैं कि सगुण ब्रह्म के लिए अनेक नाम निर्विरोध रूप से सगुण ब्रह्म के ही पक्ष में आते हैं। इनमें वर्णित सभी गुण इन नामों में भरे हुए हैं। निर्गुण ब्रह्म के पक्ष में सभी शब्द परोक्ष रूप से आते हैं जिनका सगुण और निर्गुन में तादात्म्य रहता है। सगुण में यद्यपि सम्बन्ध भ्रामक लगता है फिर भी घट, पट आदि के भूत भविष्य की तरह किसी प्रकार ब्रह्म से सम्बन्ध रहता ही है, निमित्त, उपादान और कारण की अभिन्नता के अनुरूप। अत: त्रिशती के नाम सं. 72 और 73 में कहा है, ''शब्द का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देवी के सगुण या निर्गुन रूप से सम्बन्ध है।'' अत: देवी के नाम अनन्त हैं। हयग्रीव (3 के 70 में) कहते हैं, ''हे कुम्भसंभव, सहस्त्रकोटि नाम हैं देवी के।'' स्कन्दपुराण के सौर-संहिता में हैं ''माया के सम्बन्ध में सूर्य याज्ञवल्क्य से कहते हैं, ''हे मुनि, सहस्त्रकोटि कल्पों में भी मेरे लिए देवी का नाम गिनाया, असंख्य नाम गिनाना असम्भव है।'' देवी भागवत् पुराण में भी है ''मैं कहाँ तक कहूँ। देवी के गुण एवं कर्मों, लीलाओं के अनुरूप असंख्य नाम हैं जिन्हें ब्रह्म तो स्वयं शब्द है। अत: कुछ नाम जीव की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप है। जाग्रत में वह जीव है विश्वरूपा (25) और स्वप्न में देवी तैजस (259) है। कुछ नाम जीव के गुणानुसार है, जैसे मालिनी (455) माला धारण किए हैं। कुछ अचल पदार्थ है, जैसे मही (पृथ्वी 710)। कुछ सगुण ब्रह्म के परिचायक है, जैसे मुकुन्दा (विष्णु-स्वरूपा नाम सं 838)। कुछ देवी की लीला के नाम है जैसे रमा (313)

कुछ नाम उनके विभिन्न अवतारों की लीला से जुटे हैं (नाम 65 और 82) कुछ निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादक हैं जैसे परमत्योतिष् (806)। ऐसे ही

अनेक भावों के नाम हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है जब सभी नाम ब्रह्म के ही द्योतक हैं तो अलग से इन सहस्त्रनाम की आवश्यकता क्या थी? उत्तर है कि महापुरुषों ने विभिन्न नामों के पाठ से वांछित फल पाया, पर इन नामों में जो सिद्धियाँ और वरदान भरे पड़े हैं, उसकी महत्ता देवी ने स्वयं श्रीमुख से कहा। यह सहस्त्रनाम उन्हीं नामों का चुना हुआ संग्रह है। यद्यपि सभी सहस्त्रनाम पूर्ण फलप्रद हैं, परन्तु इस सहस्त्रनाम मे विशेषता है कि ये आशुफलदायी हैं तथा महापुरुषों ने इनमें अनेक महत्ता का दर्शन किया है, उससे लाभ उठाया है।

विष्णुधर्मोत्तर का कथन है एक सर्वव्यापी ब्रह्म के अनेक नाम मनुष्यों की सहायता के लिए हैं। विभिन्न अर्थों एवं लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शक्तियाँ भी विभिन्न हैं। उन नामों के जप से फल मिलते हैं। शुभ और अशुभ फल नाम और उसकी शक्ति के अनुरूप जप से मिलते हैं। जैसे कोई अन्न भोजन का इच्छुक हो तो ''अन्नदा'' के जप से (669), धन का इच्छुक है तो 'वसुदा' (670) से, भय से त्राण चाहे तो ''भयापहा'' (121)से, जो जेल में हो वह 'बन्धमोचनी' (546) का जप करे तो तदनुरूप फल मिलता है। वायु पुराण में नामों के सामान्य फल का वर्णन आया है ''देवी के नामों का जप वन, बालुका, जल भयप्रद स्थान, चोर बाघ, रोग से भयभीत अवस्था में कैसे भी करे, बैठते, सोते, खाते, चलते किसी भी अवस्था में जप करता जाय तो वह अपने को बन्धमुक्त कर लेता है।''

वामकेश्वरतन्त्र में है : ''साधक जब माँ के किसी नाम पर ध्यान करता है तो उसी क्षण वह माँ के ''चक्र'' के विषय में जान लेता है, हे प्रिये!'' इससे यह पता चलता है कि मात्र नाम-जप से साधक माँ के गुढ़ रहस्य तक जान सकता है। काशी खण्ड में है कि माँ के नाम जप से ये मिलते हैं ''हे कुम्भसम्भव, जो अपने मर्त्यशरीर मे उमा नाम का अमृत पीता है, वह फिर माँ का दूध चूसने न पायगा। मृत्यु का देवता, चित्रगुप्त उस व्यक्ति का गणित नहीं लिखते जो ''उमा'' नाम के दो अक्षरों के मन्त्र का जप किए हों, भले ही उसके कितने ही पाप क्यों न जमा हो।'' फिर प्रश्न आ सकता है कि सहस्त्रनाम में यदि इतनी महिमा है ही तो अलग फल के लिए अलग नाम जपना तो मात्र अर्थवाद (या प्रशंसा) है। इस पर वृहदनारदीयपुराण का कहना है कि पुराण-वाक्यों को अर्थवाद कहनेवाला पापी घोर नरक का यात्री होगा। उत्तर है कि प्रत्येक नाम अपनी शक्ति के अनुसार विशेष फल तो देता ही है,

साथ ही सामान्य फल भी देता है। तन्त्रवार्त्तिक में है कि सामान्य नियम का पालन न हो तो विशेष विधि-पालन करे, परन्तु विशेष-नियम सामान्य नियम में लागू न करें। अध्याय 1 से 46में श्लोक में देवी कहती है कि ''भक्त सदा मेरे इस सहस्रनाम का पाठ करे तो मेरी प्रीति पाले और मेरी कृपा से नि:संदेह उसकी सभी मनोकामनायें पूर्ण हों।'' यह सामान्य फल हुआ। विष्णु पुराणों में देवी से विष्णु कहते हैं जो आपकी, साष्टांग वन्दना कर, माया, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बा, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या, क्षेमंकरी नामों से स्तुति करता है उसके सभी मनोरथ आप पूर्ण करती हैं।'' कालिका पुराण में है, ''हे जगदम्बे, जो अम्बिका, जगन्मयी माया नामों से आपकी स्तुति करते हैं, सायं प्रात: ये नाम जपते हैं, वे सब कुछ पा लेंगे।''

यही बात याज्ञवल्क्यस्मृति में भी दुहरायी गई है दूर्वा, जल, सर्सप पुष्प से विनायक की माता अम्बिका के निकट पूजन करें। प्रार्थना करें कि रूप, यश धन सन्तति, वैभव और सभी मनोरथों से माँ मुझे भर दें तो सब मिलेंगे। देवी भागवत में है कि ''पृथ्वी पर या स्वर्ग में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो देवी के प्रसन्न होने पर नहीं प्राप्त होवे। माँ अम्बा की पूजा में जिनका विश्वास नहीं है वे दरिद्र, अभागे, रुग्न एवं पीड़ित हैं।'' हरिवंश में भी है कि देवी का नाम जपने वाले पर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, अश्विनीकुमार, वसु, विश्वेदेव, महेन्द्र, पर्जन्य, धातृ, पृथ्वी, दशदिक्, पशु, तारे, ग्रह, नदी, झील, सागर, अनेक विद्याधर, सर्प, नाग, जटायु, गन्धर्वगण, अप्सरागण बहुत ही प्रसन्न होते हैं। अत: शास्त्रानुकूल किसी भी नाम का जप चले, फिर भी कोई विशेष फल का अभिलाषी हो तो विशेष नाम का सविधि अनुष्ठान करे। वृहदारण्यक उपनिषद् (4-4-24) में है जो यह जानता है कि ब्रह्म सभी दिशाओं से भोजन पाता है और सबों को धन देता है उसे भोजन और धन मिलेगा ही।

जो 'अन्नदा' का जप करे तो अन्न मिलेगा ही। सूत संहिता (4-33-29-30) में है कि ब्रह्म तो सच्चिदानन्दमय है ही; सभी नाम उनकी माया की ही देन है। 'शिव' शब्द उन्हीं की इच्छा से उन्हीं के लिए है, ब्रह्म का ही द्योतक है। हे मुनिगण, विशेष नाम जपने से भक्त स्वयं भगवान बन जाता है और सदाशिव अपनी शक्ति के साथ उनके मुखकमल के सामने नाचते रहते हैं।

महामन्त्रराज पञ्चदशो सदा विजयिनी रहें जो सगुण, नव-चरणयुक्त पञ्चदशाक्षरी है, जिनका शरीर साढ़े तीन का है, जो आनन्द-स्वरूप है, जिनका अपरिमेय सौन्दर्य हैं, जो शिव संग एकीभूता हैं।

अब चलाक्षर सूत्र के अनुसार प्रत्येक नाम की व्याख्या प्रस्तार के क्रम में लेखक सर्वप्रथम अपने गुरुदेव की वन्दना करते हैं

सभी मंत्रों के प्रथम गुरुराज ही सभी मंत्रों के मूल हैं। कहा है मुक्ति का मूल ज्ञान है, जिसका मूल शिव है, जो पञ्चाक्षरी से मिलते हैं। मंत्र का मूल गुरु के वाक्य हैं। गुणी वस्तुत: गुरु निर्गुण है। परन्तु ज्ञान-प्रदान के हेतु वे अनेक शरीर धारण करते हैं। नवीन-चरणों वाले गुरु के दोनों चरण लाल और श्वेत हैं। कहा है, ''मैं गुरु-चरणों की वन्दना करता हूँ जो इन्द्रियों और मन से परे हैं, जो श्वेतारुणा कान्तिवाले हैं और जो साक्षात् त्रिपुरा की अतुल ज्योति ही हैं।'' चरण से शुद्धि, चक्के, स्वर्गद्वार और विष्णु के चक्र से तात्पर्य है। त्रैलोक्य मोहन से सर्वानन्दमय तक नव चक्र है जो गुरु से पृथक नहीं है।

15 वर्ण=पञ्चदशाक्षरी, साढ़े तीन=कुण्डलिनी। सभी मंत्रों में प्रथम है प्रणव। मातृकोश में है प्रणव वृत्ताकार है, सर्वव्यापी (तार) है, शाश्वत है और सभी मंत्रों में प्रथम है। कालिकापुराण का कथन है (कोई मंत्र) आदि अन्त में प्रणव लगाये बिना व्यर्थ है। शाकटायन सूत्र में है ''दान, यज्ञ, तप, वेदपाठ, जप, ध्यान, संध्या, प्राणायाम, होम, देव मंत्र पाठ और वेदाध्यान के प्रारंभ में ॐ लगाना ही है।'' कात्यायन स्मृति में भी है ''वेदपाठ के आदि-अन्त में, होम में, यज्ञ में, अन्य धार्मिक पाठों में ॐ लगावें।'' दालभ्य परिशिष्ट कहता है ''ब्रह्मयज्ञ, जप, होम, देवयज्ञ, ऋषियज्ञ सभी ॐ के बिना व्यर्थ हैं।'' अत: श्रुति कहती है ''प्रणव में सब कुछ छिपा हुआ है।'' सभी वाणियाँ प्रणव में छिपी है। वाणियाँ=वाक्=सभी मंत्र। यह कहा जा सकता है कि यदि सहस्र नाम मंत्र ही है तो साथ में प्रणव उचित है पर क्या नाम सभी मंत्र हैं?

त्रिशती (1-27) का कथन है 'हे कुम्भसंभव, आप इन्हें मात्र नाम ही न समझे, ये सभी अपने में मंत्र हैं।'' अन्य स्थान पर भी लिखा है ''सौभाग्य जगाने के लिए सहस्रनाम का पाठ मंत्र जैसा करें।'' अत: आदि-अन्त में प्रणव आवश्यक है।

ॐ या प्रणव का स्वर उपासक की जाति के अनुरूप होता है। कालिकापुराण का कथन है ''उदात्त स्वर ब्राह्मणों का है।'' अनुदात्त क्षत्रियों का, प्रचित् या मानस-जप वैश्य का, चौदहवें स्वर अंकार के साथ, अनुस्वार और नाद मिलाकर शुद्रों का है। वे एक या दो स्थानों पर व्यवहार कर सकते हैं प्रारंभ में, या अन्त में या दोनों में परन्तु ब्राह्मण, आदि और अन्त दोनों में प्रणव लगावें। अथर्वब्राह्मण में है भिन्न वेद के भिन्न उच्चारण हैं, अत: वेदों के नियमानुसार ये स्वर हैं अत: यहाँ उल्लेख की आवश्यकता नहीं। माँ के जितने भी नाम हैं, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग या नपुंसक शब्दों में, सब यही बताते हैं कि एक मात्र ब्रह्म ही सर्वत्र विराजमान हैं। ब्रह्म में कोई लिङ्ग नहीं ये तो शब्द के हैं। विष्णु भागवत पुराण में है ब्रह्म न स्त्री हैं, न पुरुष, न अन्य कुछ। कालिदास भी कहते हैं हे शुद्ध चैतन्यमयी माँ, तुम न स्त्री हो, न पुरुष और तुम्हारे पतिदेव के लिए भी यह कुछ नहीं है। अत: ध्यान-मूर्ति चाहे जिसे पसन्द कर लें अत: कहा है देवी को हम पुरुष, स्त्री या सच्चिदानन्द निरुपाधि, किसी रूप में ध्यान कर प्रसन्न कर सकते हैं। अत: अपना वर्ण परिचय देने के हित भी प्रणव का व्यवहार प्रचलित है। प्रणव ही तो वाचक है ब्रह्म का। भगवद् गीता (17-23) कहती है ॐ तत् सत्, ब्रह्म की ये तीन उपाधियाँ कही गई हैं। या इससे पँचदेव का भी बोध होता है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव। जो क्रमश: अ उ म नाद और विन्दु के परिचायक है। वृहद्नारदीय पुराण में हैं अ=ब्रह्मा उ=विष्णु, म=रुद्र अर्द्ध मात्रा और परम, अत: प्रणव वाक् है, वाचक है, स्पष्ट है किसका तो ब्रह्म का। ब्रह्म और प्रणव का यह सम्बन्ध मात्र चित्रवत् है। क्योंकि वस्तुत: दोनों एक ही है। पुष्पदन्त का कथन है, ''हे शरण सबके, ॐ आपके व्यष्टि रूप और समष्टि रूप दोनों का प्रतीक है।'' सूत संहिता (4-17-22) में है जब कोई वस्तु जानी जाती है तो यह कहने के बदले कि 'मैं जानता हूँ,'' वे कहते हैं ''ॐ'', जब कोई बात नहीं समझ में आती है तो यह कहने के बदले कि ''मैं नहीं जानता हूँ,'' वे कहते हैं ''ॐ''। जब कहीं संदेह रहता है तो यह कहने के बदले कि यह संदेहास्पद है, वे कहते है, ''ॐ''। इसी आकाश आदि शब्दों के व्यवहार के बदले ॐ ही कहते हैं। प्रणव सब को प्रकाशित करता है अत: यह ब्रह्म का द्योतक है। अत: जो ब्राह्मण सर्वमंत्रमय इस ॐ का उच्चारण करते हैं वे सभी मंत्रों के जप का फल तुरंत पा लेते है।

वृहत्पराशर स्मृति में है प्रणव महान् तत्व है। यह तीनों वेद है, तीनों गुण है, तीन देवमय हैं, तीन अवस्थायें हैं, तीन धाम हैं, तीन चैतन्य-रूप हैं, तीन काल है, तीन लिङ्ग है, तीन विभाग है अत: पुण्यात्मा लोग कहते है कि यह विश्व त्रिविध प्रणव से व्याप्त है। फिर भी यह कहा है अग्नि, सोम, सूर्य ये तीन धाम हैं, अन्त:प्रज्ञ, बहि:प्रज्ञ और घनीभूत प्रज्ञ ये तीन प्रज्ञायें हैं। हृदय, कंठ और तालू ये तीन स्थान है। अ, ऊ और म् तीन मत्रायें हैं। सभी कार्यो के प्रारम्भ में त्रिमात्रा प्रणव का अवश्य उच्चारण करें। यह हर एक शब्द में है। इससे रहित किसी शब्द का उच्चारण हो ही नहीं सकता। गोपथ-ब्राह्मण का कथन है ''अब ''ॐ'' की जिज्ञासा करते हैं। क्या मूल है, प्रतिपादक क्या है? किस नाम का बोध होता है इससे? क्या लिङ्ग है इसका? 'ब्राह्मण' के प्रथम अध्याय में इन्ही सब प्रश्नों का विश्लेषण है। पद्मपादाचार्यकृत प्रणवार्थ दीपिका में प्रपञ्चसार के प्रथम भाग प्रणव भाग में प्रणव पर विशद व्याख्या है।

♦

ॐ

ॐ

श्री ललिता सहस्त्रनाम

प्रथम अध्याय

१. श्री माता

श्री माँ दिव्या माँ हैं। वह अपनी प्रिय सन्तान को ब्रह्मविद्या देती हैं। यहाँ सृष्टि रूप हैं। ''यस्मात् भूतानि जायन्ते'' जिनसे सृष्टि के सभी भूत निकले है। माता वह है जो मापती है, जानती है। मनं और मेयं हैं। जिसका माप हो वह मेयं है, जिसके सहारे मापा जाय वह मनं है। यह द्रष्टा और दृश्य का द्योतक है। त्रिपुटी है और बाला त्रिपुरसुन्दरी मंत्र का विषय है। माता स्त्रीलिंग है और ज्ञाता पुलिंग। ''अहं'' के दो रूप हैं शक्ति और शिव। शिव प्रकाश रूप है और शक्ति विमर्श रूपा। अतः प्रथम नाम है समयामाता या शिव-शक्ति सामरस्य। श्री से भरी है माता। यह स्त्रोत्र माता से प्रारम्भ होता है। साधक जटिलता में पहले माँ का ही स्मरण करता है। सच्चिदानन्दमयी माँ को प्रणाम है। यह माता महाकामेश्वरी देवी है। अपने षट् ऐश्वर्य (वैभव, यश, बल, आनन्द, बुद्धि और विरति) से युक्त होकर महाशून्य से प्रकट हुई है माता। वह स्वयं जगत्कारण है और अपनी सत्ता का दायित्व उन्हीं पर है। अनादि काल से उसका अस्तित्व है। वह स्वयं सब कुछ है और सगुण एवं निर्गुण अवस्थाओं में विद्यमान रहती है।

२. श्री महाराज्ञी

महान् बुद्धि से विभूषिता महारानी हैं वह। दिव्य षट् शक्तियाँ (सर्वज्ञभाव, सदातुष्टि-भाव, सनातन प्रज्ञ-भाव, सर्व शक्तिमयी एवं अनन्त व्यापिनी) से भरी है तथा संसार पर बड़ी रुचि एवं स्नेह से शासन करती है। महारानी में स्थितिमयी का भाव है। ''येन जातानि जीवन्ति'' जिससे प्राणी जीवित रहते है, वह वही हैं। जो महारानी संसार पर शासन करती है वही

भगवान् परशुराम
(भार्गव राम परम्परा के गुरु)
अथैवं प्रणतं रामं दत्तात्रेयः प्रसन्न धीः।
आशीर्भियोजयामास समुत्थाप्यपदादरात्॥

भगवान् दत्तात्रेय
(श्री दत्तनाथ परम्परा के गुरु)
वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः॥

उसके नियम और कार्य संचालन रूप में भी हैं। जो सत्य या रहस्य मानव के समक्ष अनावृत्त या प्रकट होते हैं वे उसी महारानी की इच्छा वा नियम की एक झलक है।

३. श्री मत्सिहासनेश्वरी

आनन्दमय सिंह का आसन रचने वाली ईश्वरी हैं। सिंहासन एक सौभाग्यपूर्ण आसन है जिसके अग्रभाग में सिंह का मस्तक रहता है। सिंह शब्द को उल्टा देखने से ''हंसि'' शब्द बनता है। हंसिनी एक सुहावनी चिड़िया है जो हमें मुक्ति लाभ करने में सहायता करती है। श्री देवी सिंहासन पर बैठी हैं। सिंह एक भयानक पशु है और पशुपति भी है। सिंह के आते ही सभी पशु मृत्यु-भय से पलायन कर जाते हैं। सिंह के शरीर से निकलनेवाले तीखे गंध को व्याप्त वायुमण्डल से अनुभव कर किसी पशु को वहाँ ठहरने का साहस नहीं होता। सिंह के पंजे में ऐसी रसायन शक्ति रहती है कि उसके नख से जिस अंग का स्पर्श हो जाय वह शीघ्र बाहर निकल आता है। अपने दाँत और नख के द्वारा किसी पशु को शीघ्र मौत के घाट उतार सकता है। सिंह के दर्शन मात्र से मत्त गजराज भी थर-थरा जाते हैं। यह स्रष्टा की शक्ति की विचित्रता है। यह माया चिद्विलास है। श्री देवीने अपनी शक्ति से सिंह का निर्माण किया है और उसे अपना वाहन बनाए हैं। अपने साधकों के परोपकारार्थ उसने सिंह के शरीर में अपनी शक्ति संचित रखी है। इसी तरह प्रत्येक प्राणी में शक्ति संग्रहित है। इस दिव्य रहस्य को ऋषियों ने अनावृत किया और पशुचर्म को वे आसन काम में लाने लगे। प्रत्येक पशु किसी न किसी देवता का प्रतिनिधि है। ऋषि लोग पशुओं के जन्म मरण के रहस्य को भी जानते रहते हैं। पशुओ को जब मृत्यु का भय दिखाया जाता है तो उनकी जीवनी शक्ति चर्म में छिप जाती है। मृत्यु के पश्चात् उसके चर्म को आसन के काम में लाते हैं। इस रहस्य या हिंसा की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। सृष्टिकारिणी शक्ति ने प्राणियों को चार प्रकार की व्यथा साथ में दी है। ये हैं भोजन, निंद्रा, योनिसुख और मृत्यु भय। न्यूनाधिक क्रम से विभिन्न प्राणियों में यह व्यथा विद्यमान रहती है। मानव में ये चारों रहते हैं। मृत्यु भय सबों में समान रहता है। आत्मा बराबर शरीर के साथ रहता है और वह इसे छोड़ना नही चाहता है। सामान्य मृत्यु से मरने वाले पशु का चर्म उपयोगी तथा शक्तिशाली नहीं माना जाता है साधन क्रम में, क्योंकि साधारण मृत्यु में उसे भय का समय या भाव

नहीं आ पाता है। अतः चर्म में जीवनी शक्ति आकर छिप नहीं सकती। इसलिए श्री सम्पन्न ऋषि लोग उसे मृत्यु भय दिखाकर मार देते थे। अपने आसन को प्राप्त करने हेतु उन्होंने जो पाप किए हैं उससे कहीं अधिक शक्तिशाली यह पुण्य है जो उस आसन पर बैठकर करते हैं। ये आसन मूलाधार में ताप प्रेरित करते है जो अपान वायु को उर्ध्वमुखी करते हैं। यह योग रहस्य है। इसी तरह माँ ने सिंह को अपना आसन चुना है। हंस भी सभी शरीरो में गुप्त रखा जाता है।

माँ ने तमोगुणमयमहिषासुर को मारने के समय युद्धकाल में सिंह का वाहन रखा था। सिंह हिंसा विनाश लीला का प्रतीक है। सिंह आसन श्री मामकला का द्योतक है। श्री चक्र के वृत्त और शक्ति का वह मूर्त्तिमान रूप है। द्वैतभाव है शिव-शक्ति का। शाश्वत देवासुर संग्राम में माँ शिव की श्री ललिता परमेश्वरी शक्ति में प्रकट होती है। उसका भाव है यहाँ।

४. चिदग्निकुण्ड संभूत

माँ चेतना के अग्निकुण्ड से निकली है। वैदिक साहित्य में अग्नि को शक्ति रूप में माना है। वह सृजनमयी चित् शक्ति है। रेणुका खंड और ब्रह्माण्ड पुराण में श्री ललिता की आविर्भाव की कथायें हैं। ललितोपाख्यान में आया है कि काम दहन के बाद काम प्रलय हो गया था और विश्व में कामनायें मिट चुकी थी। संसार सृष्टि तो इच्छा शक्ति से ही है। इसके विघटित होने पर देवताओं समेत सब प्राणी निश्चेतन हो जाते हैं और जड़ता प्राप्त करते है। तमोगुण के स्वरूप भण्डासुर नामक असुर ने ऐसा किया था। मनरूपी देवता इसे पराजित करने में अक्षम रहे। देव कार्य करने की श्री महाशंभु ने श्रीयाग या महायाग किया। ईशावास्योपनिषद् के एग्यारहवें मंत्र ''विद्ययामृतमश्नुते'' विद्या के द्वारा आप अमरत्व पायेंगे ऐसा कहा है। यह विद्या चद्ग्नि कुण्ड से ही प्रकट होती है। चित्-चेतनमय आनन्द है। अग्नि प्रकाशमय है। चिदाग्नि आनन्दमय परब्रह्म ही हैं। कुण्ड हवन कुण्ड है। संभूता जहाँ से प्रकटी। महाकामेश्वरी पुण्याग्नि से निकली है। वह परब्रह्म से प्रकटी है। वाह्य पूजा की समाप्ति कर सनातन धर्मी अपने अमूल्य साधनों को हवन कुण्ड में रखते हैं। भण्डासुर के उपद्रव से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ने महाकामेश्वरी की शरण ली, उनसे सहायता की याचना की। चिद्ग्नि कुण्ड से महाकामेश्वरी को प्रकट होते देखकर देवता और ऋषिगण जड़वत, मोहित या शून्य हो गये। मूलाधार ही

चिद्ग्नि कुण्ड है।

५. देवकार्यसमुद्यता

देवताओं के प्रयोजन के लिए सम्यक् प्रकार से माँ उद्यत हुईं। त्रिमूर्त्ति की प्रार्थना सुनकर माँ भण्डासुर के विनाश हेतु आ गई। यहाँ तक उसकी शिवावस्था या पूर्ण चैतन्यमय स्वरूप का दर्शन है। यहीं से शक्ति, अंश या विमर्श भाव प्रकट होता है। सामान्य भक्तों की प्रतीति के हेतु माँ के स्थूल भाव या स्वरूप का यहाँ समावेश है। जिससे साधना काल में ध्यान करने में सुविधा रहे। विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त तमोगुण रूपी भण्डासुर पर विजय प्राप्त करने के क्रम में ज्ञानाग्नि से इच्छा-शक्ति को पुनर्जाग्रत कर भक्त सत्कार्य करने में उद्यत होता है। शुद्ध विद्या रूप में श्री ललिता प्रकट होकर सफलतापूर्वक उसे मुक्ति देती है।

जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है तो साधक का नया सबेरा होता है। देवों का संकट टल जाता है। भक्त, अपना सर्वस्व अपने आराध्य को समर्पण कर देता है। श्री ललिता आध्यात्मिक युद्ध करती है और भक्त की विजय होती है, उसे स्वतंत्रता मिलती हैं।

६. उद्यद्भानुसहस्राभा

उसमें उदय काल के हजारों सूर्य के रक्तिम प्रकाश की आभा है। उसका विमर्श लाल माना गया है। उसके तीन स्वरूप हैं। एक स्थूल रूप है जिसमें हाथ, पैर इत्यादि हैं, दूसरा सूक्ष्म रूप है जो मंत्र और चक्र के स्वरूप में है, तीसरा परा स्वरूप है, जो लक्ष्य है, साध्य है और उपरोक्त दोनों रूपों का आधार है। यहाँ स्थूल रूप का वर्णन है। कामकला विलास में, कामकला चक्र को कामकलांगना स्त्री के रूप में वर्णित किया है। श्री कामेश्वरी के शरीर की उपमा उदयकालीन सूर्य से दी गई है। उस समय अरुणिमा रहती है। श्री देवी का प्रकाश तो सहस्त्रों सूर्य से अधिक रहता है। मूलाधार चक्र में एक लाल सहस्त्रदल पद्म है जो निम्नमुखी है। इस कमल के आवरण भाग में प्रकाशमान स्वयंभू लिंग है। योग सूत्र के अनुसार मूल द्वार के आकुंचन या तनाव से रक्त कमल उर्ध्वमुखी हो जाता है। योगीजन दुग्धधवल स्वयंभू लिंग की उपासना करते हैं। तब प्रकाश भाव रहता है। रक्त कमल विमर्शभाव है।

७. चतुर्वाहुसमन्विता

उसके चार हाथ हैं। ये अन्तःकरण चतुष्टय के प्रतीक है। निर्गुण

स्वरूपा माँ यहाँ भक्तों को वरदान देने के लिए चार हाथ और चरणद्वय लिए सशरीर प्रकट होती है। साधारण व्यक्ति इस स्वरूप का ध्यान कर सकते हैं।

चारों हाथों की तुलना मूलाधार के चार दलों से की जाती है।

८. रागस्वरूपपाशाढ्या

अपने भक्तों के प्रति माँ का अनन्य प्रेम है, राग है। अपने दायें और ऊपर वाले हाथ में माँ ने पाश रखे हैं। यह पाश उसके स्नेह या राग का प्रतीक है। पाश अभावपूर्ति का भी द्योतक है। अपने चारों हाथों से वह हमारे अभाव को दूर करती है। भक्तों के अभावों को माँ अपने पाश में बाँध कर खींच लेती है। जीव पाशबद्ध है, पाशमुक्त होन पर वह सदा शिव ही है। मूलाधार को काम पीठ कहते हैं। वहीं सब अभावों का सृजन होता है। मूलाधार पर लगातार ध्यान करने से सभी अभावों पर नियंत्रण हो जाता है।

९. क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला

ऊपर वाले बायें हाथ में क्रोध का प्रतीक अंकुश है। भक्तों को सदाचार के मार्ग पर ले जाने का संकेत है। अंकुश सीधा रखा रहे तो कोई क्षति नहीं होती। श्री देवी का ''अहं'' परम शुद्ध है। अंकुश का व्यवहार या क्रोध का प्रकट होना विकट स्वरूप है। जब देवी शुद्ध सात्विकी अवस्था में रहती है तो वह परब्रह्मरूपा रहती है। जब उसका क्रोध प्रज्वलित होता है तो वह प्रलयाग्नि सी बन जाती है। जब सीधा अंकुश हाथ में धारण किये रहती है तब वह सीमित अहंकार को नियंत्रित रखती हैं। पाप समूह को नष्ट करने को ही अंकुश कार्यरत होता है। द्वन्द्वों से रक्षा करने के हित माँ ने अंकुश धारण किया है। कुण्डलिनी को मूलाधार में सचेष्ट रखना साधक का कर्त्तव्य है। यदि कोई अनियमित भाव से इसका अभ्यास करे तो स्नायु-तन्तु में विकृति आ जाती है और विनाश का लक्षण आने लगता है। अतः सद‍्गुरु के निर्देशन में ही सक्रिय रहें।

१०. मनोरूपेक्षुकोदण्डा

नीचे के बायें हाथ में ईख का बना धनुष रहता है। यह संकल्प या इच्छा शक्ति की प्रतीक है। संकल्प मन का धर्म है जो संसार के सम्पर्क आता है। मन शरीर के भीतर और बाहर रहता है। वायु के संग भ्रमण करता है और संकल्प तथा विकल्प की सृष्टि करता है। इक्षु, ईख को कहते हैं, जिसकी तुलना मन से की गई है। ईख में बहुत सी ग्रन्थियाँ रहती हैं। दो ग्रन्थियों के

बीच में मधुर रस सराबोर रहता है। ये ग्रन्थियाँ ही संकल्प-विकल्प हैं। आनन्द ही रस है। ग्रन्थियों को दूर करने पर रस मिलने लगता है। कोदण्ड धनुष है। पाप राशि पर धनुष के सहारे विजय पाते हैं। आनन्द रस के सहारे संकल्प-विकल्प पर साधक विजय पा लेते हैं। देवता लोग मधुपान के अभ्यस्त रहते हैं। मधुपान के पश्चात् पूर्ण तुष्टि के हेतु वे मधुर रसमय पदार्थ का भी सेवन करते हैं। इक्षु धनु या ईख के धनुष की उपमा मानव शरीर के मेरुदण्ड से दी गई है। मेरुदण्ड की कोशिकायें ग्रन्थियों के प्रतीक है। मधुप्रिया कुण्डलिनी मूलाधार से यात्रा प्रारम्भ कर मदमाती, इठलाती चलने लगती है।

११. पञ्चतन्मात्रसायका

उनके चतुर्थ हाथ में इन्द्रियों की संगिनी तन्मात्राओं (शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध) का प्रतीक एक बाण है। मन के धनुष पर तन्मात्राओं के पंचवाण से वह निशाना साधती है। इन्द्रियों के सहारे मन के द्वारा वह विश्व सृष्टि करती है।

मूलाधार मे कुल पर्वत का आसन है। कुल पर्वत की चोटियाँ वाण की तरह नोकदार हैं। मन जब इन चोटियों पर निशाना लगाता है तो इच्छा, प्रेम, आसक्ति और क्रोध पर नियंत्रण कर सकता है।

१२. निजारुणप्रभापूरमज्ज्द्ब्रह्माण्डमन्डला

उसकी रक्तिम आभा से संसार व्याप्त है। समस्त सृष्टि ही उसका प्रकाश मात्र है। चौदहों भुवन को अपनी रक्तिम आभा से व्याप्त करनेवाली शरीर लिए, श्री देवी सदा प्रकाशित रहती है। मूलाधार का कुलसहस्रार पद्म लाल है, उसी से चौदहों भुवन में लाली छाई है।

१३. चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा

१४. कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डिता

उसके शरीर से चम्पक, अशोक और पुन्नाग की प्राकृतिक सुगन्धि फैलती रहती है। ये गंध उसके मुकुट से आते हैं। माँ का मुकुट अमूल्य पत्थरों से सजा है। सुवर्ण आदि अपनी आभा लिए उसमें विराजित हैं। अपने चारों ओर वे प्रकाश फैलाते हैं। स्रष्टा की विचित्रता को देखने से पता चलता है कि प्रत्येक जड़ और चेतन पदार्थ दिव्यता से पूर्ण है। अति प्रकाशमान कुरुबिन्द पत्थर में करुबिन्द मणि रहता है। बिना किसी वाह्य प्रकाश के यह सदा चमकता रहता है। यह स्वयं प्रकाश परब्रह्म का प्रतीक है। श्री देवी का मुकुट

उनके अंग का अन्तिम छोर है। योगीजन के मन की शाश्वत शान्ति से मुकुट की उपमा है। वशिन्यादि वाग्देवी की लेखिनी ने यहाँ तक श्री देवी के अविर्भाव का वृतान्त लिखा है। वेदों ने "उर्ध्वमूलम् अध: शाखं" का प्रतिपादन किया है। श्री देवी का मुकुट सर्वप्रथम पुण्याग्नि से निकला, उसकी चमक से प्रकाश निकलकर सारे अंग को प्रकाशित करता है। सभी प्राणियों के जन्म के समय पहले शिर बाहर आता है फिर दूसरे अंग निकलते हैं। माँ के गर्भ में सब जीवों के चरण ऊपर की ओर रहते हैं। मस्तक नीचे की ओर रहता है। फिर की सृष्टि में आने पर सिर ऊपर पैर नीचे हो जाते हैं। खेत में बीज देने पर अंकुर पहले आकाश की ओर जाता है फिर पृथ्वी में जाकर अपने स्वरूप को विकसित करता है। योगाभ्यास से जब मूलाधार उर्ध्वमुखी होता है तब सर्प का मुख ऊपर की ओर और दुम नीचे की ओर हो जाता है। सृष्टि शक्ति की यह महानता है। जो इन शक्तियों से परिचित है, वे वेद विद् समझे जाते है। माँ गायत्री मंत्र से विभूषिता हैं। यह अनेकों वृत्तियों और श्रीकला से विमण्डिता हैं।

माँ का अपादमस्तक वर्णन है।

१५. अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता

अष्टमी के चन्द्र की शोभा अद्भुत रहती है। माँ का मस्तक उससे सुशोभित हैं। ललाट में ध्यान से सहस्रार की झलक मिलती है।

१६. मुखचन्द्रकलङ्काभमगनाभिविशेषका

चन्द्र में व्याप्त छाया की भाँति कस्तूरी का तिलक उसके मस्तक की शोभा बढ़ाता है। चन्द्रमण्डल मध्य में परविन्दु है।

१७. वदनस्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचिल्लिका

जल की मछली की भाँति श्री देवी का मुख चमकता है। मन की उपमा मछली से दी जाती है। आँखों में मन आकर विश्राम करता है और आँख की तरह सक्रिय भी रहता है। यह मनोस्थान है और आँखों में ध्यान करने से मन स्थिर हो जाता है। उसकी भावें कामदेव के धनुष की तरह है। ये विजयिनी भावनायें हैं। भौवें काली हैं। इनका स्थान स्वागत द्वारों में प्रथम है। आज्ञा चक्र की सूक्ष्म अवस्थायें प्रकृति के महत् के द्योतक हैं। यह स्थान भूस्थान कहा जाता है। यह ध्रुवतारा का स्थान है। पलक ध्यान का ठौर भी है।

योगीराज को यहाँ से वाक्‌सिद्धि मिलती है।

१८. वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना

श्री देवी की मुखाकृति की चमक में उनकी आँखें जल के मछलियों की तरह चमकती है। मन भी मत्स्य ही है। उसके सौन्दर्य सागर के मत्स्य, ये लुभावने लोचन हैं। भ्रुमध्य ध्यान से मन पर निर्यंत्रित निश्चित है।

१९. नवचम्पकपुष्पाभनापादण्डविराजिता

नये खिले चम्पक पुष्प की तरह उसकी नाक सुशोभिता है। ''सदा दृष्टि नासिकाग्रावलोकिनी'' नासाग्र दृष्टि से मन पर नियंत्रण का माध्यम सर्वविदित है।

२०. ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा

उसकी नाक के आभूषण में हीरक की शोभा या चमक तारों की लज्जा को बढ़ाते है। सगुण रूप की महिमा अनन्त है, यह भाव इस में दिखाता है। यहाँ दृष्टि आकर स्थिर हो जाती है।

२१. कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरः

कानों में कदम्ब के फूल शोभ रहे हैं। उन्हें लोग कदम्ब वनवासिनी कहते हैं। कानों के गहने कदम्ब के फूल की तरह लग रहे हैं। आभूषण के पत्थरों में यह सामर्थ्य है कि वे सूक्ष्मनाद को व्यापक बना दें। ये आभूषण शब्द-ब्रह्म को ऐसा व्यापक बना देगें कि हमें वह स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ सके।

२२. ताटङ्कयुगलीभृततपनोडुपमण्डला

सूर्य और चन्द्र उसके युगल कर्णवाली हैं। उसके विवाहिता होने के लक्षण हैं। यहाँ उसके परारूप का भाव है और शिव से एक होने का संकेत है। इतने प्रकाशमान ताटङ्क की महिमा अकथ्य है।

२३. पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभू

उसके लाल और मृदुल गाल पद्मराग शीला के चिकनापन को लज्जित करते हैं। गालों के क्षेत्र में पाचन क्रिया के रस की सृष्टि होती है। योग में इसे जिह्वा धारा कहते हैं।

२४. नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदा

प्रवाल लता से भी अधिक मनोरम श्री देवी का लाल ओष्ठ है। बिम्बफलों को भी माँ के अधरों की लाली देख कर संकुचित होना पड़ता है।

इनमें मादक रस भरे रहते है। अमृत तुल्य इसे माना गया है। कामकला सूत्र में अधरामृत पान को इतना अधिक महत्व दिया है कि उसकी उपमा नहीं। अधरों पर ध्यान करने से भूख मिटने का वरदान मिलता है। भूख मिटाने वाला एक महामंत्र भी है जिसका गुप्त अभ्यास योगियों को विदित है।

२५. शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वला

शुद्ध ज्ञान या शुद्ध विद्या के बीजो की भाँति उनके दाँतों की दोनों पंक्तियाँ चमक रही हैं। यहाँ शुद्ध-विद्या से श्री राजराजेश्वरी के षोडशाक्षर मंत्र का संकेत है। हर एक वर्ण में शिव का अंश है, इससे सोलह-सोलह की दो पंक्तियाँ बन जाती है। उसके बत्तीस दाँत शुद्ध ज्ञान की किरणों की तरह चमकते हैं। इसमें तंत्र मार्ग के हर प्रकार की दीक्षाओं का संकेत है। ये शुद्ध विद्या से आरम्भ होकर अनुत्तर तत्त्व तक चलते हैं। वेदों में आत्म-उत्थान की अनेक विधियाँ वर्णित हैं। मंत्र योग उनमें एक है। मंत्र शास्त्र हमारी शुभकामनाओं का विशाल सागर है। महत्वाकांक्षाओं का आगार भी है। इनमें एक से सोलह वर्ण तक आते हैं, अधिक के भी हैं। चन्द्र के प्रभाव की तरह इनका भी प्रभाव है। श्री विद्या को ब्रह्म विद्या भी कहते हैं क्योंकि इसमें शुद्ध विद्या या षोडसी विद्या का समावेश है। संस्कृति के 51 वर्ण शिव-शक्त्यात्मक हैं। श्री देवी की दंत पंक्ति की तुलना षोडशी विद्या से की गई है। एक पंक्ति शिव या कामेश्वर की है, दूसरी पंक्ति कामेश्वरी की है। ये बीजाङ्कुर ही आधार हैं। ये बत्तीस दाँत बीज मंत्रों के अंकुर है। यह ब्रह्म-विद्या निर्गुण और सगुण का प्रतिपादन करती है। वेदों में 32 विद्यायें हैं जो परब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का वर्णन करती है और चौदह विद्यायें सगुण स्वरूप का वर्णन करते हैं। दाँत भारती स्थान का प्रतिनिधि है। दाँतों पर ध्यान करने से भी योगी सभी दिव्य ज्ञान से सम्पन्न हो जाते हैं। भारती-पदाधारम् के रूप में इसकी स्तुति होती है।

२६. कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षद्दिगन्तरा

उसके मुख के कर्पूर मिश्रित पान की सुगन्धि से सारा संसार सुगन्धित रहता है। कर्पूर वीटिका ऊँकार या प्रणव का सूचक है और आमोद नादका सूचक है। श्री देवी के ताम्बूल में सभी सिद्धियाँ विद्यमान हैं। जब माँ अपने ताम्बूल का उच्छृष्ट किसी को देती है तो उसे दिव्य सिद्धियाँ शीघ्र मिल जाती है। कालमेघ की कहानी लोग जानते हैं।

२७. निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी

उसकी वाणी सरस्वती की वीणा कच्छपी से भी मुधुर है। उसका निज संलाप वेद या श्रुतियाँ हैं। श्री देवी सर्व सिद्धेश्वरी हैं। साथ ही बैखरी सिद्धेश्वरी भी हैं। उनकी वाणी मधुर है। कोई भी मधुर स्वरलहरी ऐसी नहीं है जो माँ के स्वर मधुरिमा के जोड़ में आये। माँ के स्वर सुनने से ही साधकों की बैखरी सिद्धि मिल जाती है। यह शब्दवेधीवाण के समान हैं इसमें सभी छोटे धातुओं को उच्च धातु बनाने की क्षमता है।

२८. मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसा

उसकी मन्द मुस्कान से परम शिव कामेश्वर का मन झूम उठता है। मन्दमुस्कान प्रणवोच्चारण का द्योतक है यह कल्याणानन्द भारती का विचार है। माँ की मन्दमुस्कान निर्गुण और अनाशक्त शिव में चंचलता भर देती है। माँ की इस मुस्कान का ध्यान कर योगीराज समस्त विश्व पर नियंत्रण करते हैं।

२९. अनाकलितसादृश्यचिबुकश्रीविराजिता

माँ के चिबुक की कोई तुलना नहीं है। इसका वर्णन ही नहीं हो सकता। मणि, मणि है वैसे ही परब्रह्म ब्रह्म ही है।

३०. कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशोभितकन्धरा

कामेश्वर द्वारा लगाया हुआ मांगल्य सूत्र उसकी ग्रीवा में सुशोभित हैं। मांगल्य सूत्र शिव-शक्ति की एकता का प्रतीक है। यह गायत्री मंत्र का संकेत करता है। विवाह के समय बहुमूल्य मणि इत्यादि जो अर्पण करते हैं वे ही मंगल सूत्र हैं। भगवान कामेश्वर ने जो माँ को प्रेममय मंगलसूत्र दिया है वह दोनों के शाश्वत प्रेम का प्रतीक है।

३१. कनकाङ्गद केयूर कमनीय भुजान्विता

श्री देवी के कन्धों पर शोभित आभूषण, केयूर और अंगद बड़े प्रकाश मान हैं। ये भुजाओं की शोभा बढ़ाते हैं। मंत्र भी दो प्रकार के हैं।

३२. रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्बिता

हीरक ग्रीवाहार और मोती जड़े स्वर्णभूषण उनके गले में विराजित हैं। योग में इन आभूषणों को कान्ताधार कहते हैं। ग्रीवा पर ध्यान करने से सभी सांसारिक अभावों का शमन हो जाता है। मोती के दानें मंत्रों के अक्षरों के

प्रतीक हैं।

३३. कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी

भगवान कामेश्वर के प्रेम के बदले अपने दोनों स्तन देकर उन्हें कृतार्थ किया। शिव शक्ति का अनुपम उदाहरण है। कामकलांगना के दोनों स्तन रक्त और श्वेत विन्दु के प्रस्तार हैं। कल्पसूत्र में दो विन्दुओं का वर्णन है। माँ के इस नाम से भाव की सुकुमारता प्रकट है। विभिन्न अंगों के वर्णन-क्रम में गुप्त संकेत मिलते हैं। यहाँ दो स्तन स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं के प्रतीक हैं। पतिव्रता लक्षण के अनुसार हम यह सकते हैं कि अपने पति की अविराम सेवा के क्रम में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं की अपनी सुविधाओं एवं सुखों का प्रधान कार्य है बच्चों को दूध पिलाना। स्त्री शरीर के वाह्य सौन्दर्य को भी ये बढ़ाते हैं। देवताओं के तो स्थूल शरीर नहीं हैं। छायामात्र तेजस् शरीर है। अपने द्युतिमान शरीर को पनिवर्त्तित कर वे आनन्द और सुख के लिए कामरूप तन (इच्छानुकूल शरीर) ले सकते हैं। युवावस्था प्राप्त कर, सन्तान उत्पन्न कर, शक्तियाँ अपनी कुण्डलिनी शक्ति का ह्रास ही करती रहती है। अपने गुप्तांग द्वारा अतिशक्तिशाली रस का क्षरण करती रहती है। यह रस कुण्डलिनी शक्ति का ही रूप रहता है। प्रथम पुष्पिनी के स्राव को लोगों ने पराशक्ति का प्रतिनिधि माना है। सिद्धों ने भी इसकी प्रशंसा की है। कालिदास जैसे महासिद्ध ने भी ''स्मरेत प्रथम पुष्पिनी'' कह कर आराधना की है। युवा स्त्रियाँ योग अभ्यास के लिए अयोग्य मानी जाती हैं। गार्गी और मैत्रयी ने सिद्ध गुरुओं की दया से अपने यौवन को नियंत्रित किया था और वरदान पाकर योगिनियाँ बनीं। कमल के आवरण भाग में तेजो लिङ्ग है जिसकी पूजा योगीजन करते हैं। इसे हृदयधारा कहते हैं। यहाँ ध्यान करने से इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती है। मूक पंचसती में इस आशय की एक कथा है।

एक बार भगवान और कामेश्वरी के बीच भ्रान्ति से मनोमालिन्य हो गया। भगवान शिव अमर्यादित की भाँति चंचल एवं भ्रमणशील थे। श्री देवी ने भगवान् की भाव-भंगिमा देखी और उनके स्वयं भूलिङ्ग की पूजा की जिससे भगवान का क्रोध शीतल हो और प्रेम से रहें। भगवान शिव पार्वती कामेश्वरी के भाव को तार गये और देवी की पूजा भंग करने के निमित्त घोर वृष्टि का आयोजन कर दिया। पूजा करते समय घोर वृष्टि और बाढ़ के प्रकोप से श्री देवी किंकर्त्तव्यविमूढ़ा हो गई और स्वयंभूलिङ्ग को अपनी छाती से लगा

लिया और दोनों स्तनों के बीच में रखकर उसे डूबने से बचा लिया।

श्री कामेश्वर इस पर प्रसन्न हो गये और श्रीदेवी को वरदान दिया।

३४. नाभ्यालबारोमालिलताफलकुचद्वयी

नाभि से स्तन तक पतले रोम श्री देवी के उदर पर लता की भाँति शोभते हैं। जान पड़ता है कि दोनों स्तन उसी लता के फल है। दोनों स्तन और नाभि मिला कर त्रिकोणाकार हैं। दोनों स्तन और नाभि पर ध्यान करने से निम्नमुखी अष्टदल कमल उर्ध्वमुखी हो जाएगा और प्राणवायु नियंत्रित रहेगा। इसे ''कुचाधारम्'' कहते हैं।

३५. लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमा

श्री देवी की कटि के किनारे रोमावली हैं जिससे शरीर का ऊपरी अंग निम्न अंग से विभाजित होता है। कटि एकदम क्षीण या पतली है। सामुद्रिक शास्त्र में पद्मिनी के वर्णन में ऐसा आया है।

३६. स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया

कटि के निकट त्वक् की तीन तहें हैं, त्रिवलि है जो तीन स्वर्ण कटिबंध की तरह लगते हैं। स्तन के भार से कटि कहीं दब न जाय, उसी की बचाव के लिए यह त्रिवलि है। यदि त्रिवलि न रहे तो शरीर स्तनों के भार से झुक जाँय। जब कुण्डलिनी मूलाधार से चलती है तो यह सारे शरीर को हिला देती है, कम्पित कर देती है। ताप भी अधिक रहता है और कटि प्रदेश में व्यथा होती है। व्यथा दूर करने हेतु साधक कटिबंध बाँधते हैं।

३७. अरुणारुण कौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतटी

चमकने वाली लाल साड़ी से कटि के किनारे का भाग मनोरम लगता है। यह लाल साड़ी उदय कालीन सूर्य के रंग की है। सुषुम्ना का भी यही रंग है।

३८. रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषिता

उसके कटिसूत्रबंध (में) हीरक जटित घंटिकायें हैं। किकिणी से मंत्र का संकेत है। रशनादाम से गायत्री आदि मंत्रों का भाव है। यह मकरबन्द साड़ी के ऊपर से माँ ने पहन रखें हैं। घंटिका की ध्वनि सुषुम्ना के नाद का प्रतीक है।

३९. कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्विता

साड़ी के भीतर छिपी जंघाओं की सुकुमारता का आनन्द एक मात्र

शिव ही जानते हैं। इससे माँ के पातिव्रत्य की पुष्टि होती है। सुषुम्ना के भीतर वज्रिणी और वज्रिणी के भीतर चित्रिणी का आनन्द योगिजन ही जानते हैं।

४०. माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजिता

उसके घुटने मणिमाणिक्य जड़ित मुकुट जैसे हैं। जंघा और पैर के बीच का भाग मुकुटमय लगता है। वज्रिणी और चित्रिणी सुषुम्ना मध्य में सूर्य और चन्द्र की भाँति चमकते हैं।

४१. इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजङ्घिका

उनकी जंघायें इन्द्रगोप मणि की भाँति सुशोभित हैं। कामोद्दीपन भाव है। मैथुन अंगों के संकोच के लिए बाजीकरण रसायन का उपयोग बताया है। इससे वीर्य पुष्ट होता है। इन्द्रगोप कीट से यह रस निकलता है और लोग इसका लेप करते हैं। यहाँ श्रीदेवी की जंघाओं को कामवाण का प्रयोगस्थल माना है। कुछ ऐसे आसन कामकला विज्ञान में वर्णित है जिनसे स्वतः कामोत्पादक रसायन प्रकट होते हैं। इसे कला स्थान कहते हैं। जब चैतन्यरुपिणि कुण्डलिनी मूलाधार से चलती है और चित्रिणी संकुचित होती है तब यह शक्ति अति कामवेगमयी हो जाती है। शक्ति जागरण से उर्ध्वरेता योगिनी की भी यही दशा होती है।

४२. गूढ़गुल्फा

श्री देवी के चरण और टांग का संधिस्थल सुकुमार और पतला है तथा मोदमय है। सुषुम्ना का ऊपरी भाग भी मूलाधार के स्थान की अपेक्षा क्षीण है। यह भाग छिपा हुआ है, इसी से गूढ़ कहा है।

४३. कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्विता

कछुए की पीठ की तरह उसके चरण है। यहाँ कुर्मपृष्ठ देव लोक का प्रतीक है और प्रपदा से महावाक्य का संकेत मिलता है।

४४. नखदीधितिसञ्छन्ननमञ्जनतमोगुणा

उनके पैर के नख (तम)गुणमय को दूर करते हैं। चन्द्रप्रकाश की द्युति की भाँति अज्ञान तिमिर उसके प्रवेश से ही भाग जाता है। नख को मूलाधार के कुल-पर्वत की तरह प्रकाशमान माना है जो ध्यानगम्य होने से अज्ञान दूर करते हैं।

४५. पदद्वय प्रभाजालपराकृतसरोरूहा

दोनों चरण कमलों की ज्योति के तेज मन्द करती है। उसके चरण श्वेत और लाल हैं। दोनों के मिश्रण में अंधकार भाग जाता है। यहाँ गुरुपादुका से संकेत है। गुरुदेव के रक्त-श्वेत चरण शिष्य के अंधकार को दूर करते हैं। मूलाधार में स्वयंभू लिङ्ग दुग्ध धवल है। मूलाधार से उपर सुषुम्ना अग्निवर्णालाल है। योगिजन जब दोनों को मिलाते हैं तो शुक्ल-रक्त मिश्रित वर्ण मिलता है।

४६. शिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डितश्रीपदाम्बुजा

कमल जैसे उनके पवित्र चरणों में नुपुर सजे हैं। जिनमें हीरे-मोती की सजावट है। स्थूल रूप से तो माँ के चरण ही पूज्य हैं। श्री चक्र के संविद विन्दु के वे प्रतीक हैं। उसे महापादुका कहते हैं। साधकों के लिए शरण है।

''शरण्ये लोकानां त्वयि चरणमेव विपुणीः''

यहाँ शिञ्जान मणि से मंत्राक्षर का बोध होता है। मूलाधार नाद स्थान है। यही पराशक्ति नादात्मिका कुण्डलिनी चित्रिणी में प्रवेत्र करती है। पराशक्ति की यह अवस्था मात्र योगियों को ही बोधगम्य है।

४७. मरालीमन्दगमना

हंसिनी की तरह मन्द गति से वह चलती है। हंस प्राण-शक्ति का द्योतक है। प्राण की गति शूक्ष्म है। हंसिनी की चाल मधुरता की सृष्टि करती है। चित्रिणी नाड़ी में नाद भी धीमे-धीमे उपर उठता है।

४८. महालावण्यशेवधिः

श्री देवी के लोक चर्चित लावण्य की गरिमा वर्णित है। वह सौन्दर्य का जैसे महासागर रहे। यह विश्व-ब्रह्माण्ड पूर्ण सत्य के मनोरम सौन्दर्य का रूपक है।

४९. सर्वारुणा

श्री देवी के शरीर, वस्त्र और आभूषण सभी लाल ही लाल है।

५०. अनवद्याङ्गी

आपादमस्तक वह सौंदर्यमयी है। पूर्ण कलामयी है, अनिंदता है।

५१. सर्वाभरणभूषिता

वह सभी आभूषणों से भरी है। वाग्देवी रूप में उनके रहने से हम

सभी वेद और मंत्रों का समावेश पाते हैं। उनके आभूषण सभी पूजा के पात्र हैं। यहाँ तक उनके स्थूल रूप का वर्णन होता है। कहाँ और कैसे उनका ध्यान होना चाहिये वह आगे आयगा।

५२. शिवकामेश्वराङ्कस्था

माँ, प्रज्ञास्वरूपा शिव कामेश्वर की गोद में है। शिव शक्ति का अभेद रूप है। माँ देव कार्य के लिए समुद्यता होती है। शिव, काम और ईश्वरी यहाँ सुषुम्ना, वज्रिणी और चित्रिणी के द्योतक हैं। सौंदर्य लहरी के आठवें श्लोक में भी इसका संकेत है।

52 से 61 वें नाम तक, श्री देवी के निवास का वर्णन है।

५३. शिवा

वह शिव की संगिनी कल्याणी है। भक्त पर शुद्ध ज्ञान की वृष्टि करती है। ज्ञान स्वरूपा है। केनोपनिषद् की हेमवती का भाव है। कामेश्वर कामेश्वरी का सगुण भाव है। शिवा कुण्डलिनी है और सर्वदेवमयी है। आनन्द और मुक्तिदात्री अष्टकुण्डलिनी शक्तियों में वह एक है।

५४. स्वाधीनबल्लभा

शिव ने संसार चलाने का सारा भार इन पर सौंप दिया है और स्वयं अनाशक्त हैं। शिव इनके प्रेम के वशीभूत हैं। उनकी कृपामात्र से हम उनकी दिव्यानुभूति कर सकते हैं। मूलाधार में स्वयंभूलिङ्ग निर्गुण अवस्था में रहते हैं और कुण्डलिनी विश्व संचालन क्रिया में रत रहती है।

५५. सुमेरुशृंङ्गमध्यस्था

इनका वास सुन्दर मेरु पर्वत के मध्य में है। श्री चक्र में उनके स्थान का दर्शन है। सुमेरु पर्वत के मध्य भाग में तीन शृंग हैं, मध्य में तीनों और तीन चोटियाँ त्रिकोण बनायें हैं जहाँ शिव-पार्वती का वास है। मूलाधार चक्र के कुल-पर्वतों में मेरु भी एक है। मेरु से ही सुषुम्ना, वज्रिणी और चित्रिणी नाड़ी चलती है। चित्रिणी के मध्यभाग में पराशक्ति का अपना वास है।

५६. श्रीमन्नगरनायिका

श्री नगर की महारानी है। गौड़पाद सूत्र में श्रीचक्र को श्रीनगर माना है, जिसमें ब्रह्माण्ड, पिण्डाण्ड और श्री विद्या मंत्र सभी आते हैं। इन सबों की वह अधिष्ठात्री देवी भी हैं आरै महारानी भी। महाश्रीनगर के तीन भाग हैं, एक

श्रीनगर, दूसरा महापद्माटवी, तीसरा श्रीचक्र।

सहस्रार के कमल दल में सूर्यमण्डल है जिसमें 25 तह हैं और उनके बीच में 24 पुर है। सबों को मिलाकर श्रीनगर कहते हैं।

५७. चिन्तामणिगृहान्तस्था

एक देवी हैं चिन्तामणि जो चिन्तामणि पत्थर में अपनी शक्ति भरे हैं। इस मणि को रखने वाले सर्वऐश्वर्य और आनन्द पाते हैं। वह बहुत प्रकार के मंत्रों का आकार है।

५८. पंचब्रह्मासनस्थिता

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ईशान और सदाशिव-पंचब्रह्म के आसन पर वह बैठी है। ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रन्थि के षट्चक्रों के ऊपर स्थान है। उसके ऊपर द्वादशान्त सदाशिव स्थान है। उस पर ललिता और चित्कला बैठी हैं। यह स्थान चिन्तामणि गृह है। पंचब्रह्म को पंचशक्ति भर कहते हैं। कुण्डलिनी, सूक्ष्मशक्ति, अपराशक्ति, पराशक्ति, निजशक्ति हैं पाँच शक्तियाँ, जो पाँच भावों का संचालन करती हैं, सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह पर प्रभाव देती है। चिन्तामणि-गृह में श्रीदेवी का प्रासाद परा अवस्था है।

५९. महापद्माटवीसंस्था

श्रीनगर के तीन भागों में एक पद्माटवी है। ये पद्म जल में नहीं, स्थल में खिलते हैं। उसी वन में माँ अपना समय बिताती हैं। सहस्रार एकमात्र स्थान है। व्यक्ति और दिव्यचैतन्य के सम्पर्क स्थान का नाम है। कमलवन जैसा अरुणोपनिषद् में लिखा है।

६०.कदम्बवनवासिनी

वह कदम्ब वृक्षों के वन में रहती है। यामल तंत्र में इन्हें दिव्यवृक्ष माना है। सहस्रदल को आठ भागों मे विभक्त करने पर एक अंग में 125 दल होते हैं। उन आठों में एक कदम्बवन है। श्रीदेवी यहाँ फूलो की सुगन्धि का आनन्द लेती है।

६१. सुधासागरमध्यस्था

अमृत सागर के मध्य में आनन्दमयी माँ का निवास है। सहस्रदल पद्म में चन्द्रमण्डल है जो सुधासागर है। सुधासागर के मध्य में चिन्तामणि गृह है। वहाँ पराशाम्भवी अमृत पान करती है। यह श्री चक्र का विन्दु स्थान है और

द्वादशान्त है जहाँ भक्तों पर कृपा का अमृत बरसता है।

६२. कामाक्षी :

उसकी दृष्टि से भक्तों की मनोकामना पूरी होती है। कामकोटिंपीठ की यह अधिष्ठात्री हैं और उनकी आँखें मनोरम हैं। श्री देवी की तीक्ष्ण आँखें संसार की गतिविधि को शीघ्र ही परख लेती है। सूर्य और चन्द्र ही संसार को देख सकते हैं। माँ को आँखों की उपमा सूर्य और चन्द्र से दी जाती है। ब्रह्मरंध्र में दों छिद्र हैं जो माँ के आँखों की प्रतिनिधि हैं। कामक्षी, नवकुमारियों में एक हैं जो चार वर्ष की हैं।

६३. कामदायिनी :

भक्तों को कामेश्वर शिव का ज्ञान देती है। वह सदा शिव के संग रहती है।

६४. देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवा

देवता और ऋषिलोगों ने, माँ को देव कार्य के लिए चिदग्निकुण्ड से उन्हें आविर्भूत देखकर, उनके दिव्य रूप की अनुभूति पाकर, उनकी प्रार्थना की। देवों ने उनके व्यष्टि और समष्टि में व्याप्त रूप को पहचाना और उनकी स्तुति की। देव से स्वरों और ऋषियों से व्यञ्जनों का भाव है। बहुत से महामंत्रों से उनकी उपासना की जाती है। देवता और ऋषियों ने माँ के आपादमस्तक स्वरूप का वर्णन कर, माँ की स्तुति की, इस पर माँ अति प्रसन्न हुई। जब साधक मूलाधार में कुण्डलिनी का दर्शन करते हैं तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती है।

६५. भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्विता:

भण्डासुर को मारने के हेतु वह भरपूर सेनाओं से सदा सम्पन्न रहती है। भण्ड मनुष्य में सीमित या खण्ड "अहं" का प्रतीक है। भण्ड का स्वभाव ही है कि अपने शरीर या स्वार्थ से अधिक कुछ भी वह नहीं देखता। ललिता अपनी शक्ति सेना द्वारा अहंकार पर विजय पाती है तथा लक्ष्य की अनुभूति कराती है। उसकी सेना में धैर्य, आत्मनियंत्रण और वैराग्य है। भण्डासुर अज्ञान है, सद्गुरु का संकेत उसे दूर करता हैं

६६. सम्पत्करीसमारूढ़सिंधुरव्रजसेविता

श्री देवी ने गज सेना का संगठन किया और श्रीसम्पत्करी को

सेनाध्यक्षा बनाया।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय को स्पष्ट विचार से दिखानेवाली का नाम सम्पत्करी है। इन्द्रियों की वृत्तियाँ ही गज है। विवेकरुपिणी शक्ति उन पर नियंत्रण रखती है। माँ के अंकुश से सम्पत्करी की सृष्टि हुई है। वह रणकोलाहलम् नामक हाथी पर सवार रहती है। साधक सदगुरु के निर्देशन में मूलाधार क्षेत्र में आकुंचन क्रिया का अभ्यास करता है। इस क्रिया में ताप, कटिभाग में व्यथा और कोष्ठबद्धता का अनुभव बहुधा होता है। बाद में वृत्ति गजसमूहों पर नियंत्रण करने में वह समर्थ होता है। मूलाधार में भगवान गजानन हैं उनकी पूजा-अर्चना से बाधायें टल जाती हैं और लोग इनका वरदान पाते हैं।

६७. अश्वारूढ़ाधिष्ठिताश्वकोटिकोटि भिरावृता

वह कोटि-कोटि अश्वों से घिरी हैं। अश्वारोहियों की नायिका अश्वारूढ़ा है। रथ के बीच में और घोड़ों की जमात के पीछे हैं। मन की प्रतीक है अश्वारूढ़ा।

६८. चक्रराजरथारूढ़सर्वायुधपरिष्कृता

श्री चक्र में रथ पर माँ सवार हैं और विभिन्न शक्तियों एवं हथियारों से सम्पन्न हैं। उसका रथ ही चक्रराज है। उसके तीन स्वरूप हैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण। तीनों को श्री चक्र, ज्ञेय-चक्र और किरिचक्र भी कहते हैं। ज्ञेय चक्र पर मंत्रिणी सवार हैं और किरिचक्र पर वाराही। मंत्रिणी मन और वाराही बुद्धि हैं। उनके अस्त्र, साम, दाम, सत्य, धर्म, विवेक और सत्यान्वेषी प्रज्ञा हैं। वे अहंकार से युद्ध रत हैं। क्रमशः मन विशुद्ध चेतना का अनुभव करने लगता है।

६९. गेयचक्ररथारूढ़मंत्रिणीपरिसेविता

चक्रराज रथ के बगल में ज्ञेय चक्र नामक प्रशंसनीय रथ पर मंत्रिणी सवार हैं। मंत्रिणी सदाश्री देवी की सेवा के लिए तैयार हैं। माँ की ओर उन्मुख मन ही मंत्रिणी है।

७०. किरिचक्ररथारूढ़ादण्डनाथापुरस्कृता

किरि चक्र प्रकाशमान या चमत्कृत का द्योतक है। किरी चक्र प्रकाशमान रथ है। दण्डनायिका श्री वाराही देवी अपने सभी अस्त्रों के साथ

किरिचक्र पर सवार हैं और चक्रराज के समीप हैं। तीनों रथ इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना के द्योतक है। सुषुम्ना ही चक्रराज है। इड़ा ज्ञेय चक्र है और पिङ्गला किरिचक्र है। इड़ा और पिङ्गला के मध्य में सुषुम्ना है। मूलाधार से तीनों अपनी उर्ध्व गति पाते हैं।

७१. ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगा

श्रीदेवी षोडश कलाओं की मूर्त्ति है। चौदहवीं कला में ज्वालामालिनी नामक शक्ति है। श्रीदेवी ने अपनी सेनाओं की सुरक्षा के लिए ज्वालामालिनी को आदेश दिया। सुषुम्ना भी अग्निवर्णा है और वज्रिणी तथा चित्रिणी के भीतर सभी विश्व संरक्षित हैं सुषुम्ना से। यहाँ सुषुम्ना को ज्वालामालिनी माना है। माँ अग्नि के किला में घिरी है। अग्नि किला की रक्षा का भार ज्वालामालिनी पर है। श्री चक्र में ललिता का स्थान मध्य में कहा है। वह्नि दिवा प्राकार है जो रात्रि है। माँ काल से ऊपर है। वह कालातीता है और रात-दिन से परे है। भौतिक शक्ति या अनुभूति से विलक्षण उसका स्थान है।

७२. भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिचिक्रमहर्षिता

माँ अपनी सेना को भण्ड-वध में सक्षम जान कर प्रसन्न हो जाती है। वह परमात्मा स्वरूपिणी है। अद्वैत भाव को विजयी होते देख, खण्ड अहंकार का विलय होते देख वह हर्ष से मगन रहती हैं।

मूलाधार पर विजय होने पर अन्तर का ताप सुषुम्ना वज्रिणी और चक्रिणी को परमशुद्ध कर देते हैं।

७३. नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुका

नित्या देवी का पराक्रम देख कर वह मुग्ध हो जाती है। षोडश नित्यायें द्वन्द एवं भ्रम को दूर करती हैं। जब भण्डासुर की सेना ने आक्रमण किया तो श्री देवी को अपनी नित्याओं की अपार युद्ध क्षमता को देखकर प्रसन्नता हुई। मूलाधार में योग क्रिया के निरन्तर अभ्यास से तप्त उच्छ्वास नासिका रंध्र से निकलते रहते हैं।

७४. भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दिता

श्रीबाला को देखकर श्री देवी आनन्द में डूब जाती हैं। श्री बाला भण्ड के पुत्रों को मारने के लिए उद्यत हैं। वे तीस की संख्या में हैं। बाला परमेश्वरी की पुत्री हैं। वह विमर्श शक्ति हैं। बंधन की शक्ति को काटती है। इनके

(बन्धन की शक्ति के) विनष्ट होने से आत्मारूपिणी ललिता स्वयं स्वात्मानन्द से मुग्ध होती हैं। जब भण्डपुत्रों ने श्री देवी की सेना पर युद्ध स्थल में आक्रमण कर दिया तो श्री देवी की पुत्री बाला ने उनको मार कर नष्ट कर दिया। जब नासिका रंध्र में उत्तम श्वांस निकलते हैं तो पराशक्ति कुण्डलिनी जग कर बाधाओं को नष्ट करती हैं।

७५. मंत्रिण्यम्बाविरचितविषङ्गवधतोषिता

मंत्रिणी श्यामला अम्बा को असुर विसंग को मारने का आदेश था विसंगवध से माँ संतुष्ट हो गई। अपनी दिव्य ज्योति से सम्पन्न होकर जब कुण्डलिनी जगती है तो मूलाधार को साधक पूर्णरूप से देख और जान पाते हैं।

७६. विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दिता

वाराही द्वारा विशुक्र मारा गया। माँ ने उसकी प्रशंसा की। विशुक्र और विषङ्ग भण्डासुर के भाई थे।

जब मूलाधार पूर्णरूपेण शुद्ध और प्रकाशमान हो जाता है तो पराशक्ति कुण्डलिनी उपर चलने के लिए चित्रिणी में प्रवेश करती है।

७७. कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा

भण्डासुर अपनी शक्ति सम्पन्न सेना और उनके योद्धाओं को विनष्ट होते देखकर अति क्षुब्ध हो गया। वह साहस खो बैठा। श्री देवी की सेना में फूट डालने का उसने षड्यंत्र रचा। अपनी सफलता के लिए उसने अनेक प्रपंच रचे। उसने एक मोहजाल रचा और रात्रि के समय आकाश से श्री देवी की सेना के बीच उसे गिरा दिया। विघ्नकर मोहजाल में उलझ कर श्री देवी की सेना तितर-बितर हो गई और श्री देवी के प्रति अवज्ञा और उपेक्षा का भाव उस सेना में भर गया। श्री देवी ने परिस्थिति को समझा और असुरों द्वारा फैलाये गये तंत्रजाल के रहस्य का पता लगा लिया। श्री देवी ने व्यग्रता पूर्वक भगवान कामेश्वर की ओर दृष्टि फैलाई और उसका मुख देखा। दोनों की ज्योति मिलने से भगवान गणेश का अवतार हुआ।

गणपति मूलाधार के सचेतक एवं नियंत्रण करने वाले हैं। वह सुषुम्ना द्वार को बन्द किये रहते हैं। साधकों की पूजा से प्रसन्न होकर वे प्रवेश खोल देते हैं। इसके पूर्व साधक को अनेक त्याग करने पड़ते हैं।

७८. महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षिता

गणेश ने प्रकट होते ही विशुक्र द्वारा रचे गये यंत्र को नष्ट कर दिया। इस पर श्री देवी की खुशी का ठिकाना न रहा। गण समूह को कहते है। यह चौबीस तत्वों का समूह है। गणेश तत्त्व वह दिव्यता प्राप्त मन है जो शिव ही हैं। द्वैत भाव द्वारा अनेक विघ्न साधक की साधना में आ मिलते हैं। श्री ललिता अपनी शक्ति से साधक के शरीर और उसके चतुर्दिक उपस्थित रहती है। उनकी कृपा से साधक कठिनाईयों को पार कर जाते हैं। श्री गणेश जी ने विशुक्र के जय-विघ्न यंत्र का नाश किया था। माँ ने ही गणेश को आदेश दिया था कि विघ्नकर यंत्र का पता करें। पता लगाकर गणेश ने उसे नष्ट कर दिया। इस यंत्र में बाजीगर इन्द्रजाल की शक्ति थी जिससे सेना पर जादू चल जाता था। फिर क्या था, शीर्घ ही श्री देवी की सेना सावधान हो गई।

जब श्री गणेश सुषुम्ना द्वार खोल देते हैं, कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रवेश करना चाहती है।

७९. भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिणी

जब भण्डासुर की पूरी सेना नष्ट हो गई तो अन्त में भण्डासुर ने युद्ध भूमि में प्रवेश किया और श्री देवी पर अपने शक्तिशाली अस्त्रों की वृष्टि करने लगा। श्री देवी ने हवा में ही उन्हें उड़ा दिया। भण्डासुर भय से बेचैन हो गया। भण्डासुर के एक-एक अस्त्र को अपने निक्षेपास्त्र से माँ ने नष्ट कर दिया। विमर्श शक्ति के रूप में श्री ललिता जब भक्त का हाथ पकड़ लेती है तो वह भक्तों को द्वन्द्व और अन्धकार से शीर्घ मुक्त कर देती हैं।

८०. करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः

भण्डासुर युद्ध भूमि में घबड़ा गया। अपनी स्थिति और भाग्य का कोई भरोसा न रहा। अपने वीर पूर्वजों को वह स्मरण करने लगा। अपने ब्रह्मत्व की शक्ति से उन्हें पुनर्जीवित किया। तुरन्त ही सोभकासुर, बलि, रावण, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप सहित अनेक असुरों ने प्रगट होकर श्री देवी पर आक्रमण शुरू कर दिया। उस समय श्री देवी ने अपने हाथों की अंगुलियों के नखों से भगवान महाविष्णु के दस अवतारों की सृष्टि की जिन्होंने उन सबों का तुरन्त नाश कर दिया। साधक बड़ी सावधानी से मूलाधार की शुद्धि करते हैं। और दस प्रकार के अनर्थों या पापों को निवष्ट कर पाते हैं।

८१. महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिका

उसने अपने महापाशुपतास्त्र से, उनकी अग्नि लपटों से राक्षसों की सेना को जला कर राख कर दिया। महापाशुपत विमल ज्ञान को कहते हैं। यह सत्य का निराकरण करता है तथा द्वैत भाव या द्वन्द्वों से मुक्त करता है। तभी भक्त श्री ललिता जी का परम तत्व पा लेते हैं।

८२. कामेश्वरास्त्र निर्दग्धसभण्डासुरशून्यका

भण्ड सहित शून्यक नगर को माँ ने जला दिया। भण्ड की सेनायें भी जलीं। माँ ने श्री कामेश्वरास्त्र चलाया था। जीव भाव मर गया। अद्वैत भाव जग गया। अद्वैत सिद्धि मिल गई, मोक्ष तो हो ही गया। ज्ञानाग्नि रूपी चैतन्य पावक ही कामेश्वरास्त्र है। इस प्रकार माँ ने देव कार्य कर लिया। कामेश्वरास्त्र का प्रयोग माँ ने युद्ध के अन्त मे ही किया था। महागणपित ने अपनी कृपा से मूलाधार को शुद्ध कर सोई कुण्डलिनी को जगा दिया। कुण्डलिनी क्रियाशील हो गई। सुषुम्ना, वज्रिणी और चित्रिणी में प्रवेश करने लगती है उनके आधार को द्रवित कर। कुण्डलिनी के ताप से चित्रिणी का रस सुख जाता है। उसका वाष्प नासिका छिद्रों से बाहर चला आता है। षट्-चक्रों के विष को कुण्डलिनी का ताप या चाप विनष्ट कर देता है। पूरी चित्रिणी तब शून्य हो जाती है।

कुण्डलिनी तब अपने प्रकाश से चित्रिणी को आलोकित करती है।

८३. ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवा

जब माँ ने देव कार्य सम्पन्न कर दिया तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने माँ की स्तुति की। इन्द्र ने भी वन्दना की। देवताओं की प्रार्थना सुनकर श्री महाकामेश्वरी अति प्रसन्न हुई, और द्रवित हो गई। सभी देवता और विश्व चित्रिणी में अन्तर्हित हैं। वे पहले तो बहुत असुविधा पाते हैं। जब चित्रिणी का रस सुख जाता है और चित्रिणी आलोकित हो जाती है। कुण्डलिनी द्वारा तब सभी देवता अपने उद्‌गमश्रोत या निवास में जाने के लिए उत्कण्ठित और प्रसन्न हो जाते हैं।

८४. हरनेत्राग्निसन्दग्धकामसञ्जीवनौषधिः

भगवान शिव के तृतीय नेत्र से दग्ध कामदेव को अपनी संजीवनी से उसने पुनर्जीवित कर दिया। हर नेत्राग्नि विशुद्ध ज्ञान का द्योतक है। विमल ज्ञान से कामनायें मर जाती हैं। वह दिव्या माँ अपने भक्तों को अमरत्व देती हैं।

त्रिमूर्ति देव ब्रह्म, विष्णु और शिव ने रति के कष्ट को देखकर उसकी सहायता करनी चाही। संसार को सुख और आनन्द देनेवाले कामदेव के प्रति उनकी करुणा जागी। उन्होंने मार्मिक शब्दों में श्री देवी की स्तुति की और माँ से विष्णु पुत्र कामदेव को अपनी संजीविनी द्वारा सशरीर जीवन धारण करने को वर देने का आग्रह किया। माँ उनकी प्रार्थना से द्रवित हो गई, करुणा से ओत-प्रोत हो गई और कामदेव को फिर अवतरित किया। माँ का प्रेम संजीवन बूटी का काम कर गया। संजीविनी का काम ही है लुप्त जीवन को जगा देना।

मूलाधार में स्वयंभू लिङ्ग है। इसका मस्तक छत्राकार सुप्त कुण्डलिनी से आवृत है। स्वयं लिङ्ग की आँखों की ज्योति के सहारे कुण्डलिनी जग कर चित्रिणी के माध्यम से ऊपर उठने लगती है। सहस्रार के सुधा-सिन्धु में पहुँचकर यह अमृत वृष्टि करती है, जिससे सभी नाड़ियों को बल मिलता है और पूरी वृष्टि हो जाती है आनन्द की। योगावस्था के अभ्यास क्रम में जो भी शक्ति लगती वह अमृत वृष्टि से पूरी हो जाती है और व्यक्ति सर्वतो भावेन शक्ति सम्पन्न हो जाता है।

८५. श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा

उसका मुख कमल श्री पञ्चदशाक्षरी मंत्र का वाग्भवकूट है। वाग्भकूट ही सभी वाणियों का मूल स्रोत है। माँ के ललाट, भौंहे, आँखें, नाक और मुख सदा दिव्य कान्ति एवं गौरव गरिमा से आलोकित रहते हैं।

मंत्र संकेत माँ का सूक्ष्म शरीर पञ्चदशाक्षरी हैं।

क ए ई ल ह्रीं **माँ के मुख हैं।**

चक्र संकेत

माँ सूक्ष्म शरीर श्री चक्र नामक यंत्र में तीन प्रकार से दीख पड़ता है भू, कैलाश और मेरु प्रस्तार से। श्री चक्र के नौ भाग हैं। नवाँ भाग विन्दु है। सह विन्दु या वृत्तपाँच शक्तियों की समष्टि है। वे हैं निजशक्ति, पराशक्ति, अपराशक्ति, सूक्ष्म शक्ति और कुण्डलिनी शक्ति। असीम परब्रह्म स्वरूप कामकला है जो श्री देवी के मुख की तुलना में आता है। ये पाँचों शक्तियाँ श्री चक्र के प्रथम भाग हैं। योगियों के आन्तरिक शरीर में महाशंखिनी (ब्रह्म-रंध्र के ऊपरी भाग में), महावायुमण्डल (ब्रह्मरंध्र के निम्न भाग में), सहस्रार (वायुमण्डल के नीचे), आज्ञाचक्र (निरालम्बपुरी के नीचे) का स्थान

है। ये सभी स्थान योगी के अन्तः शरीर के प्रथम भाग के हैं।

८६. कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी

ग्रीवा से कटि तक माँ का मध्य कूट हैं, जिसे पञ्चदशी का कामराज कूट कहते हैं। ग्रीवा, कंधे, स्तन, रोमावली, नाभि और कटि के भाग को मध्य-कूट कहते हैं।

मंत्र संकेत पञ्चदशाक्षरी का मध्य भाग 6 वर्णों का है।

ह स क ह ल ह्रीं

चक्र संकेत त्रिकोण, गुरुमण्डल, (4 कोण) इनके ऊपर अष्टकोण, दशार द्वय, चतुर्दशारम् (14 कोण) ये 6 अंग (कोण) श्री चक्र के मध्य भाग, कहे जाते हैं। विशुद्ध चक्र, विष्णु ग्रंथि, अनाहत चक्र, मणिपुर चक्र, ब्रह्म ग्रंथि और स्वाधिष्ठान चक्र ये मिलकर मध्य-कूट कहलाते हैं।

८७. शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी

कटि के नीचे पञ्चदशी का शक्ति कूट है। अतः वह पञ्चदशी रूपा है।

मंत्र संकेत स क ल ह्रीं शक्ति-कूट है

चक्र संकेत श्री चक्र के तीसरे भाग में चार अंग हैं। अष्टदलपद्म, षोडशदल पद्म, वृत्तत्रयं, भूपुर मिल कर शक्ति कूट है। मूलाधार का चतुर्दल पद्मयोगी के अन्तः शरीर का तीसरा अंग है।

८८. मूलमन्त्रात्मिका

परमाणु से भी सूक्ष्मतम रूप की अवस्था है श्री देवी की। ऋषि, देवता और योगियों को अनुभव गम्य है। माँ उन्हें पञ्चदशी मंत्र के माध्यम से वरदान देती है। अदृश्य कुण्डलिनी पञ्चदशी की समता में है। आनन्द का अनुभव देती है। माँ मूलमंत्र, पञ्चदशी, वेद की आत्मा है।

८९. मूलकूटत्रयकलेवरा

ये तीनों कूट पञ्चदशी का शरीर रचते हैं। कामकला विलास में इनकी विशद व्याख्या है। आगे आने वाले 6 नाम कौल या वाममार्ग से सम्बन्धित हैं। वामाचार परायण साधकों के लिए सहस्रनाम का महत्व बताया है। रामकृष्ण को वामाचार सीखाने के हेतु भैरवी के रूप में गुरु की प्राप्ति हुई थी। सद्गुरु के निर्देशन में इसमें उतीर्ण होना है। महागायत्री, पञ्चदशी और

षोडशी ये तीन मंत्र उपास्य हैं। तीनों मंत्र एक होकर श्री महाकामेश्वरी का भौतिक शरीर रचते हैं। सुषम्ना, वज्रिणी और चित्रिणी तीन आवरण में है। चित्रिणी के मध्य में पराशक्ति का निवास है।

९०. कुलामृतैकरसिका

माँ कुलामृत पान की रसिका है।

कौलमार्ग के आन्तरिक अनुशासन में मूलाधार में कुण्डलिनी रूप से निवास करने वाली श्री ललिता प्राणायाम के द्वारा जाग्रत होती है। सहस्रार तक उसे ले जाते हैं, जहाँ भक्त को परमानन्द समागम होता है। शरीर और मन प्रफुल्ल हो जाता है। यह आनन्द ही कुलामृत है। कल्याणानन्द भारती ने यहाँ कुल और अमृत रसिका को पृथक-पृथक देखा है। कुल का अर्थ पतिव्रता स्त्री और अद्वैत सिद्धि करने वाले को अमृतरसिका कहा है।

कुल तो त्रिपुटी है माता (मात्रा), मनं (माप) और मेयं (जो मापा जाय)।

कुल जाति है, पथ है, सुधा, पृथ्वी, कुण्डलिनी और वीर्य है।

अमृत स्वादिष्ट पेय है।

रसिका रुचि लेती है।

पितृ और देवों को रुचिकर लगने वाले अनेकों प्रकार के पेय हैं। महाकामेश्वरी इसकी रसिका हैं।

९१. कुलसंकेतपालिनी

कौल मार्ग के प्रतीकों का वह पालन करती है। कौलाभ्यास की गोपनीयता की वह रक्षा करती है। इस के रहस्यों को वह सद्भक्तों को संकेत से बताती भी है। इसकी पूजा के अनेक विधान हैं जिसमें कुल द्रव्यों का प्रयोजन पड़ता है।

किसी सद्गुरु के निर्देशन ही में कुण्डलिनी आरोहन-क्रम का अभ्यास करना कहा है।

९२. कुलांगना

परमशिव की पतिव्रता है।

ब्राह्मण पुण्यस्त्री-रूप में श्री योग में इसकी उपासना होती है।

९३. कुलान्तस्था

कुल की आन्तरिक देवी है।

कुल मार्ग की अधिष्ठात्री है।

वह विभिन्न जातियों में आती है।

यह सभी कौल विद्याओं से ऊपर है। कुल विद्या दो प्रकार की है पूर्व कौल और उत्तर कौल। उत्तर कौल (दिगम्बर पूजा) कई प्रकार के हैं। श्री देवी तो सगुण तत्त्व से भी ऊपर हैं। द्वादशार्ण पद्म में चित्रिणी मिल जाती है। यहाँ सम्पूर्ण सगुण तत्त्व का विलय होता है। सगुण कुण्डलिनी निर्गुण पराशक्ति या परं तत्त्व में मिल जाती है।

९४. कौलिनी

वह कुल में रहने वाली कुल देवी हैं। हर घर, वन, गाँव में रहती है। सर्वत्र विद्यमान हैं।

सगुण रूप में कुल धर्म का पालन करती है। कुल में आनन्द लेती है। निर्गुण का आनन्द ऋषि और देव भी उठा सकते हैं। श्री देवी सगुण रूप की अनित्यता को जानती है फिर भी उसी में विहार करती है, मोद मनाती है। वह अपनी ही माया में डूबी हुई है। तत्वज्ञानियों को दोनों अवस्थाओं में एक सा आनन्द रहता है। सहस्त्रार में कुण्डलिनी निर्गुण का आनन्द लेती है अवश्य, पर निर्गुण सगुण रूप का आनन्द भी उसे एक ही तरह प्रिय है।

९५. कुलयोगिनी

कुल शास्त्र के अनुसार वाह्य पूजा में रत सुन्दरी देवी ही कुलयोगिनी है। माध्यमिक या मध्यस्थ अवस्था में कुण्डलिनी इसी सुन्दरी देवी की तरह रहती है। श्री चक्र के आवरण देवताओं की पूजा ही कुलयोगिनी की पूजा है। वह पूजा श्री ललिता को ही मिलती है।

९६. अकुला

16 स्वरों में प्रथम वर्ण ''अ'' है। ''अ'' शिव है, कुल शक्ति है। अकुल से शिव शक्तिमय का भाव है। जो कुल से पार सहस्त्रार में है वही अकुल है। मूलाधार में भी रक्त सहस्त्रदल पद्म है जो विमर्श रूप कुल सहस्त्रार पद्म कहलाता है। महा वायुमण्डल के नीचे श्वेत सहस्त्रदल पद्म है। यह अकुल पद्म है, प्रकाश रूप। अकुल और कुल पद्मों के बीच विश्व चमक रहे हैं।

९७. समयान्तस्था

वह समया में है। समानता में है। शिव की इच्छा शक्ति के रूप में वह प्रकट होता है। शिव शक्ति की समानता के रूप में वह विद्यमान रहती है।

यह समानता पाँच प्रकार की है

(1) पिण्ड और ब्रह्माण्ड में, दोनों श्री चक्र में हैं।

(2) सृष्टि आदि पाँच क्रियायें दोनों द्वारा सम्पन्न होती है।

(3) शिव-शिवा राम साम्य है।

(4) दोनों का सम स्वरूप है।

(5) दोनों नाचते हैं।

समयान्तस्था से काल या समय के अन्त का भी भाव मिलता है। जहाँ समय का पता नहीं लगता है और सभी क्रियायें अनाशक्त भाव से होती है वह भी यह है। परब्रह्म रूप से श्री देवी उन्मनी अवस्था में विश्वास करती है। आज्ञाचक्र के ऊपर निरालम्बपुरी के अन्तिम भाग में उन्मनी स्थान है। उन्मनी में ध्यान करने से योगी निर्गुण में लय हो पाता है।

९८. समयाचार-तत्परा

श्री देवी समयाचार से बहुत प्रसन्न होती है। सनक, सनन्दन इत्यादि ने सौभाग्य पञ्चक लिखा है जो आत्म विचार के लिए ज्ञानमार्ग का दुर्लभ ग्रंथ है।

समयाचार में वाह्य पूजा नहीं है।

भावनोपनिषद् के ''अहं ब्रह्मास्मि'' भाव पर यह चलता है।

यह निर्गुण तत्व का उद्बोधक है। इसमें श्री देवी की शक्ति से एकीकरण का प्रयास है। यह नाम माँ के दक्षिणाचार से आराधना या साक्षात्कार का द्योतक है।

98 से 108 नाम तक कुण्डलिनी योग का संक्षिप्त विवरण है। व्यक्तिगत आत्मा-जीव भाव को अपना कर आत्म परिचय या आत्म स्वरूप बिसार देता है। दिव्यता से या परब्रह्म से उसका शाश्वत सम्बन्ध है, वह भूल बैठता है। शरीर और मन के साथ अपना नया सम्बन्ध जोड़ लेता है। कुण्डलिनी योग अपने सच्चे स्वरूप की प्राप्ति या वास्तविक सम्बन्ध की

उपलब्धि में सहायक होता है। श्री माँ के साथ जो उनका अपनापन है, वह प्राप्त कराता है। जीव चैतन्य का निम्नतर स्तर जाग्रत अवस्था है। इस अवस्था में जीव का नाम विश्व रहता है। इससे जीव सामान्यतया देहगत भाव में रहता है। इसमें व्यक्ति चेतना के सीमित स्तर से ऊपर उठने में अपनी कठिनाईयों को देखता है। दूसरी अवस्था स्वप्नावस्था है। इसमें अनुभूतियाँ शुद्धरुपेण मानसिक है। देहभाव की क्रियायें भी मन के द्वारा निरूपित होती है। साधारणतया जीव इच्छावश इस अवस्था से भी अपने ओ ऊपर नहीं उठा पाता है। यहाँ जीव तैजस कहलाता है। चेतना का तीसरा उच्चभाव सुषप्ति अवस्था का है। यहाँ जीव शरीर और मन से परे रहता है। उसे प्रज्ञा कहते हैं। इसमें देह और मन दोनों निष्क्रिय रहते हैं। यहाँ जीव का उच्च चेतन स्तर है। यहाँ पर जीव पूर्ण चैतन्य के निकट रहता हैं यह भी एक सीमित अवस्था है। जब जीव इस अवस्था को भी पार कर लेता है और तूरिया बन जाता है तो उसे आत्म स्वरूप की पहचान हो जाती है, दिव्य चेतन से एक हो जाता है। श्री ललिता की इच्छा शक्ति गुरु कृपा प्राप्त कर कुण्डलिनी योग से भक्त सोयी हुई कुण्डलिनी को जगा लेता है। मूलाधार में देह चैतन्य रूप में उसे देखता है, ग्रंथियों का भेदन कर मूलाधार से आज्ञा तक उसे ले जाता है। एक बार भी कुण्डलिनी जगे और आज्ञ चक्र तक जाय या उसके ऊपर भी जाय तो कुण्डलिनी के सहारे भक्त तूरीया में अपने को पाता है। ये ग्रन्थियों के फाटक खुलने की तरह है। एक के बाद चैतन्यमय उच्चतर में जाता है। विश्व का देह चैतन्य स्वाधिष्ठान तक रहता है। यहाँ ब्रह्मग्रन्थि है। यहाँ से अनाहत तक तैजस का क्षेत्र है। वहाँ विष्णु ग्रन्थि है। प्रज्ञा का श्रेय आज्ञा चक्र तक है, वहाँ रुद्रग्रन्थि है। इनके परे तूरीया अवस्था है। यहाँ व्यक्तिगत चैतन्य और समष्टिगत चैतन्य दोनों मिल जाते हैं।

९७. मूलाधारैकनिलया

वह मूलधार में कुण्डलिनी के रुप में निवास करती है। षट्चक्रों में एकावन वर्णों का विलास है और हर दो चक्रों के ऊपर एक ग्रन्थि है।

चक्र स्थान निम्न क्रम में है :

1. **मूलाधार चक्र** गुदा द्वार के सामने।

२. **स्वधिष्ठान चक्र** गुदा के ऊपर।

३. **ब्रह्मग्रंथि** स्वाधिष्ठान के ऊपर।

४. **मणिपुर चक्र** नाभि के सामने।

५. **अनाहत चक्र** हृदय के सामने।

६. **विष्णु ग्रन्थि** हृदय के ऊपर।

७. **विशुद्ध चक्र** गर्दन के सामने।

८. **आज्ञा चक्र** भ्रूद्वय।

९. **रुद्रग्रन्थि** भ्रूद्वय के ऊपर।

1. मूलाधार में चार रक्त दल कमल है। उनका मुख नीचे की ओर है। उनमें व, श, ष, स चार वर्ण हैं। कमल का ऊपरी तह पीत वर्ण है। वहाँ एक हाथी है। हाथी पर ''लं'' वर्ण है इन्द्र बीज है। ''लं'' के बीच में एक त्रिभुज है। इस त्रिकोण में एक, स्वयंभू लिङ्ग है। इस पर साढ़े तीन बार आवेष्ठिता कुण्डलिनी दुम ऊपर की ओर किये है। मूलाधार और सुषुम्ना का नियंत्रक महागणपति साकिनी शक्ति के साथ स्वयंभू लिङ्ग के निकट अविस्थित है। गुरु कृपा से आकुंचन-मुद्रा द्वारा निम्नमुखी मूलाधार पद्म ऊपर की हो जाता है। तब स्वयंभू लिङ्ग और सर्प उर्ध्व मुख हो जाता है। मूलाधार से सुषुम्ना प्रारम्भ होती है। मूलाधार में कुल पर्वत है, मूलाधार के नीचे रक्त वर्ण सहस्र दल कमल है जिसे कुल पद्म कहते हैं।

२. **स्वाधिष्ठान चक्र** छः दल का है।

स्थान लिङ्ग स्थान है। लाल रंग है, ऊपर की ओर मुख है। ब, भ, म, य, र, ल 6 वर्ग हैं 6 दलों में। ब्रह्मा इसका अधिपति है।

३. **मणिपुर चक्र** दश दल का है।

स्थान नाभि। नीला रंग है, उर्ध्व मुख है। ड, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ वर्ण है।

४. **अनाहत चक्र** 12 दल का है।

हृदय स्थान है। क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ये बारह वर्ण है। रुद्र इसका अधिपति है।

५. **विशुद्ध चक्र** 16 दल का है।

कण्ठ स्थान है। लाल रंग है। 16 स्वर हैं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऋ, लृ, लृ, ओ, औ, अं, अः। ईश्वर इसका अधिपति हैं।

६. **आज्ञा चक्र** दो दल का है।

स्थान भ्रू मध्य स्थान है। श्वेत रंग है। ऊपर की ओर मुख किए है। ह, क्ष वर्ण हैं। सदाशिव अधिपति है।

ये षट्चक्र चित्रिणी में है।

१००. ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी

ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं। ग्रन्थि गिरह है। विभेदिनी साफ करने वाली है। ब्रह्मग्रन्थि मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर है। इस ग्रन्थि को द्रवित करने के लिए पर्याप्त ताप की आवश्यकता है। श्रीदेवी की कृपा से ब्रह्म ग्रन्थि साधित होती है।

इस तरह प्रथम अध्याय में वशिन्यादि वाक् देवी ने श्री देवी की स्तुति की और अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की।

श्री दत्त गुरुभ्यो नमः ।

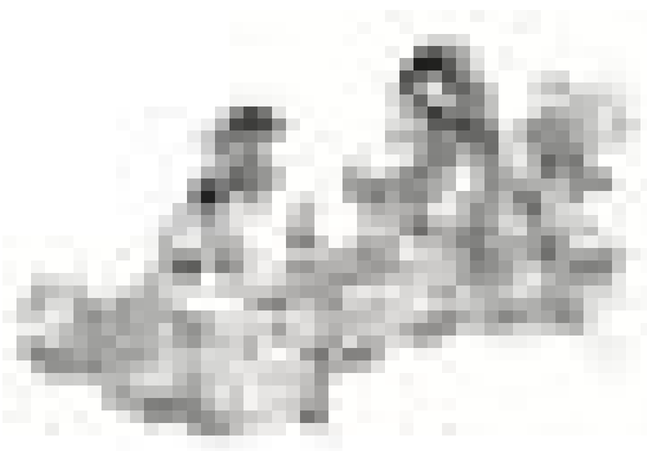

द्वितीय अध्याय

१०१. मणिपुरान्तरुदिता

ब्रह्म ग्रन्थि को काट कर श्री ललिता भक्तों के मरिणपुर में उदित होती है। यहाँ जाग्रत अवस्था की असत्यता का भान होता है उन्हें। स्वाधिष्ठान पार कर महारानी श्री देवी मणिपुर में अत्यधिक तेज से प्रकाशित होती है। मणिपुर चक्र मूलाधार से तीसरा चक्र है। ग्रन्थियाँ दो चक्रों के ऊपर रहा करती है। कुण्डलिनी सुषुम्ना को आघात् कर वज्रिणी और चित्रिणी के निम्न भाग को द्रवित करती है। ब्रह्म ग्रन्थ के आवरण की मोटाई ज्यादा रहती है। इससे उसके द्रवित होने और कुण्डलिनी के भेदन करने में विलम्ब होता है। तब वह चित्रिणी में ऊपर उठती है। इन कठिनाईयों को पार कर ही वह ब्रह्म और विष्णु ग्रन्थि से ऊपर उठती है। यहाँ वशिन्यादि वाक् देवी ने चित्रिणी के कष्टकर अंगों का भेदन बताया है।

१०२. विष्णुग्रन्थिविभेदिनी

वह विष्णु ग्रन्थि को काट डालती है। इसमें व्यक्ति अपना देह भाव, मन और जीवन की अनित्यता एवं असत्यता को समझ जाता है। वह उनकी चेतना ही भूल जाता है।

१०३. आज्ञाचक्रान्तरालस्था

भ्रूद्वय के सम्मिलन स्थान में आज्ञा चक्र में वह रहती है। यहाँ व्यक्तित्व का बहुत अंश खो जाता है। आज्ञा चक्र में माँ गौरव और गरिमा से चमकती रहती है। चक्रों में आज्ञा चक्र, मूलाधार से छठा हैं मुण्डलिनी परा, पश्यन्ति और मध्या के रूपों में ऊपर चलती है और विशुद्धि में बैखरी का रूपधारण कर लेती है। यहाँ वह शब्द ब्रह्म की स्वामिनी रहती है। वह सभी देवों, वेदों, संसार सृष्टि और लय की प्रतिमूर्ति बन जाती है। कुण्डलिनी ही सभी सिद्धियाँ देती है। इसी आज्ञा चक्र में साधित होते हैं सब। योगीराज देह त्याग के समय भी आज्ञा में ध्यान रखते हैं।

१०४. रुद्रग्रन्थिविभेदिनी

यहाँ वह रुद्रग्रन्थि को काट देती है। जीव व्यक्तिगत चैतन्य भूल जाता है। शिव चैतन्य से सहस्रार में वह एक हो जाता है। रुद्रग्रंथि तीसरा गंन्थि है। विशुद्ध और आज्ञा चक्र से यह ऊपर है। रुद्र सबसे कठिन ग्रन्थि है। कुण्डलिनी अपनी पूरी शक्ति से आज्ञा से उठ कर रुद्र ग्रन्थि पर आक्रमण करती है। मूलाधार से उठने पर ही वह षडचक्रों के विष को सुखा देती है। फिर स्वयं द्वादश दल पद्म या गुरुमण्डल में प्रवेश करती है। रुद्र ग्रन्थि के ऊपर निरालम्ब पुरी है। यहाँ सात प्रकार के कारण शरीर ईश्वर, रोधिनी, नाद, महानाद, व्यापिका, समना और उन्मनी चार अवस्थायें बनाती है, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव। ये सातों शरीर 51 मातृकायें हैं। प्रथम वर्ण ''अ'' और अन्तिम वर्ण ''ह'' मिलाकर ''अहं'' बनता है। यहाँ योगी अन्मनस्क हो जाता है। निरालम्बपुरी ही ''अहं'' का केन्द्र है। इस ''अहं'' पर ही अधिकार करना है। रुद्रग्रन्थि और निरालम्बपुरी के बीच में पश्चिम द्वार है। इसे विवर स्थान कहते हैं। इन्द्रयोनि भी यही है। इस इन्द्रयोनि के माध्यम से जीव गुरु कृपा से मुक्ति लाभ करता है, ठीक विपरीत क्रम में जैसे वह मातृयोनि से संसार में प्रवेश करता है। माता-पिता तो संतान को जन्म देते हैं। उन्हें मायामय रचना में छोड़ देते है। विषयानन्द में डूब जाते हैं। शक्तिमान गुरु इन्द्रयोनि के द्वारा शिष्य को मुक्ति के राजमार्गपर ले जाते हैं। अतः सद्गुरु की महिमा अनन्त है। गुरु तो इष्टदेव से भी बड़े माने गये हैं देवता का क्रोध गुरु शांत कर सकते हैं पर गुरु का क्रोध इष्टदेव नहीं शांत कर सकते हैं। अतः गुरु सर्वोपरि हैं। गुरु मण्डल में प्रवेश करने पर दिव्य शक्ति स्वतन्त्र मार्ग अपनाती है। परतत्व के रूप में सगुण और निर्गुण रूपों में शक्ति व्याप्त रहती है। यहाँ हंस मुक्त गगन में विहार करते हैं। यहाँ योगीजन को अति भयंकर दृश्य डराते हैं। इष्टदेवता भी जीव को यहाँ क्रूर भाव से देखते हैं। कारण यह है कि गुरु पादुका पद्म के ऊपर साधक इष्टदेव को वशीभूत करने को बढ़ाता है। इष्टदेव वशीभूत होना नहीं चाहता है। वह शरीरिक, मानसिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक विघ्नों द्वारा उसे भटकाना चाहते हैं। यहीं पर सिद्ध गुरु की सहायता का अवसर आता है। वही साधक को सभी आपत्तियों से रक्षा करते हैं। भय और द्वन्द्वो से उसे छुड़ा लेते हैं। कुण्डलिनी परतत्व की निर्गुण अवस्थाओं पर विजय पाने वाले सद्गुरु ही निष्ठावान और अनन्य भक्तों को शुक्ल और ओजस के

रहस्यों में दीक्षा देते हैं। यद्यपि श्री देवी सर्वेश्वरी है, फिर भी सद्गुरु के अधीन हो जाती है। गुरु सर्वशक्तिमान हैं। अतः मात्र गुरु भक्ति से ही जीव मुक्ति पा लेता है। सगुण उपासना का फल साधक को विवर स्थान तक ही मिल पाता है, ऐसा लोग मानते हैं। तदन्तर दिव्य शक्ति को वशीभूत करने के लिए महायुद्ध करना पड़ता है। सद्गुरु की कृपा पाकर वह परमानन्द को पा लेता है। विवर स्थान का थोड़ा प्रकाश यहाँ वर्णित है। विवर में इड़ा, पिङ्गला और चित्रिणी का मिलन होता है। इसे गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम कहा जाता है। यह त्रिवेणी का प्रतीक है। इस स्थान को चतुष्पाद भी कहते हैं, दोनों कान और नासिका का मिलन बिन्दु है। इसे इन्द्रयोनि भी कहते हैं। इस विवर स्थान पर एक पतली झिल्ली है जो स्वतः द्वार का काम करती है। यहाँ श्वास दायें से बायें और बायें से दायें में मुड़ जाता है। योगी इस विवर की झिल्ली को तोड़ कर खोल देता है। दोनों श्वास तब एक साथ चलने लगते हैं। जब दोनों श्वास संयुक्त होकर चलते हैं तब इन्द्रियों के सभी दृश्यकार्य निष्क्रिय होकर मर जाते हैं। योगी को तब अमरत्व प्राप्त होता है। वह अपने लघु-तैजस शरीर को उस में देखता है। जब जीवभाव जगा रहता है तो वह तैजस पुरुष सोया रहता है। जाग्रत में तैजस शरीर की पहचान कठिन है। अतः उसे देखने के लिए संसार की ओर से उसकी मृत्यु जैसी अनासक्त अवस्था हो जाती है। यहीं साधक अपने निर्गुण साधन के लिए तत्पर होता है।

१०५. सहस्राराम्बुजारूढ़ा

वह सहस्रार चक्र तक ऊपर उठती है। मुक्त लोगों में वहाँ वह शक्ति साक्षिणी या चित्कला के रूप में रहती है। यही मोक्ष है। महावायु-मण्डल और निरालम्बपुरी के बीच में सहस्रार है अष्टदल कमल जिसमें एक-एक दल में 125 दल करके हैं। यहाँ कुण्डलिनी हंस की तरह अष्ट कार्यों में सक्रिय रहती है। 456वें नाम के वर्णन में इस हंस या हंसिनी का विशद् वर्णन होगा।

१०६. सुधासाराभिवर्षिणी

श्री देवी वर्षा की भाँति अमृत वृष्टि करती है। यह शांति की वृष्टि है। तब भक्त को अपरिमेय आनन्द मिलता है। यहीं कुण्डलिनी साधना समाप्त हो जाती है। यहाँ कुण्डलिनी चन्द्र मण्डल के सुधा सिन्धु में मिल जाती है। सभी नाड़ियों में आप्लावित हो जाता है।

१०७. तडिल्लतासमरुचि :

वह बिजली की तरह चमकती रहती है। भक्तों को भी वह वैसे ही दीख पड़ती है। चन्द्रमण्डल में शून्यमय पर विन्दु है। उस विन्दु के मध्य में पराशक्ति अगणित सूर्य और चन्द्र के प्रकाश की तरह चमकती रहती है।

१०८. षट्चक्रोपरिसंस्थिता

वह षट्चक्रों से ऊपर है। वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और मनसे ऊपर है। एक अतिप्रकाशमान ऊँकार ज्योति है जो आत्मा या अन्तरात्मा कहलाता है। यह आज्ञाचक्र के ऊपर है। इसे प्रत्यक्-आत्मा भी कहतें हैं। आज्ञा चक्र के ऊपर अन्तर्दृष्टि से पूरा आन्तरिक शरीर दीख पड़ता है। सहस्रार में यह प्रत्यगात्मा पराशक्ति के समान रहता है।

१०९. महाशक्ति

श्री देवी अपने निवास पर आने को व्यग्र रहती है। चन्द्रमण्डल के त्रिकोण में आने के लिए, पर तत्त्व रूप में पहुँचने के लिए कुण्डलिनी व्यग्र रहती है। यहाँ परम शिव की वह महाशक्ति ही हैं।

११०. कुण्डलिनी

वह सर्प की तरह कुण्डलाकार है। उसके साढ़े तीन फेरे रहते है। ललिता इसी रूप में व्यक्ति में रहती है। अवस्था गौण रहती है। सिंह पर सवार, हाथों में वीणा पुस्तक लिए, वर और अभय मुद्रा धारण किए, त्रिनयना कुण्डलिनी धन्य है। उसकी स्तुति अनेको प्रकार से की गई है। जब कुण्डलिनी परमेश्वर के संग रहती है तो अनेक नामों से उसकी वन्दना होती है जिसमें कुछ यों है

कुण्डलिनी, कुब्जका, भुर्जगिनी, सनातनी, निर्गुण, सगुण, चैतन्य-रूपिणी, ब्रह्मानन्द प्रकाशिनी, सर्वभूत प्रकाशिनी, महामातृका सुन्दरी, श्री मंत्रकोत्पति सुन्दरी, ज्योतिर्मयी, मंत्रमयी, कुलकुण्डलिनी, प्रकृति कुटिलांगी, अरुन्धती, पराशक्ति नादशक्ति, शब्द ब्रह्म मायाशक्ति कला और कलारूपिणी।

कुण्डलिनी मूलाधार से चलती है। दूसरी अवस्था में हंस (जीव) रूप में हृदय स्थान में दीख पड़ती है। कारण विन्दु होकर वह आज्ञा के ऊपर आती है। निर्गुण रूप में विन्दु ऊपर वह चिदानन्द रूप में रहती है। यहाँ हंस रूप में कार्य करती है। ब्रह्मरंध्र में साथ-साथ ठहरती भी है। ध्वनि, नाद निरोधिका,

अर्द्धेन्दु बिन्दु मिल कर पराशक्ति बन जाती है। पराशक्ति, परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी चार प्रकार की है। परा रूप में वह ईश्वर के समान रहती है, पश्यन्ति और मध्यमा रूप में जीवात्मा के संग रहती है। बैखरी रूप में बुद्धिमती होकर देह भाव में रहती है।

१११.विषतन्तुतनीयसी

यह कमल तन्तु की भाँति है। उसका आकार कमल नाल के पतले धागे के समान है। वह चित्रिणी में भी ऐसे पतले रूप में चढ़ती है।

११२. भवानी

वह शिव संगिनी, भग की रानी है जो संसार को जीवन देती है। श्री देवी का एक अवतार भवानी है। गंगा, यमुना और सरस्वती पुनीत नदियाँ हैं। गंगा को भवानी कहते हैं। भवानी नदी वेग से बढ़ती है। चित्रिणी में कुण्डलिनी भवानी वेग से ही ऊपर चढ़ती है।

११३. भावनागम्या

भावना (ध्यान) से वह अनुभूति में आती है। ध्यान या तो

(1) प्रतीक या विग्रह का हो वाह्य जगत में

(2) मानस पूजा के विभिन्न उपचारों द्वारा हो

(3) सहस्रार में ललिता परमेश्वरी में खोकर हो, तीसरा सर्वोत्तम हैं इसे सात्विक भावना कहते हैं।

११४. भवारण्यकुठारिका

संसार के घने वन में जीव घिरा हुआ है। अभाव और सुख-दुख का राज्य चतुर्दिक है। श्री देवी की कृपा ही उसे काट डालने वाला कुठार है। कुण्डलिनी के जग जाने से मन द्वारा सर्जित अभाव नष्ट हो जाता है। क्रमशः सभी इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती है।

११५. भद्रप्रिया

भद्र परब्रह्म ही है। श्री देवी सदा परब्रह्म की प्रशंसा करती हैं कुण्डलिनी भी चन्द्रमण्डल में उसके साथ रहना पसन्द करती है। माँ सदा परोपकार में लगी रहना चाहती है।

१९६. भद्रमूर्ति

श्री देवी भद्रता की मूर्ति हैं। वह स्वयं परमात्मा हैं। वही कुण्डलिनी हैं।

११७. भक्त सौभाग्यदायिनी

उसके भक्त उससे, सब सौभाग्य पाते हैं। अपने शुद्ध हृदय से वह भक्तों को अपने मार्ग पर ले जाती है। वह उन्हें वरदान देती है।

११८. भक्तप्रिया

वह भक्तों की प्रिया है। सद्गुरु भक्ति का मार्ग बताते हैं।

११९. भक्तिगम्या

भक्ति से वह पहचानी जाती है। श्री देवी भक्तों को महाभाव देती हैं।

१२०. भक्तिवश्या

अनन्य भक्ति से स्वरूप ज्ञान देती हैं। वह भक्तों के वश में हो जाती है।

१२१. भयापहा

वह भय को भगाती है। सत्य पर भय से आवरण पड़ जाता है। सबसे अधिक मृत्युभय रहता है। श्री देवी वरदान देती है, भय को दूर करती हैं शांति देती हैं।

१२२. शाम्भवी

यह शंभु की रानी है। वह शांभवी मुद्रा है, शांभवी ध्यान भी है। श्री देवी शांभवी अवस्था अपनाती है। भगवान शिव ने पञ्चमुख से विभिन्न देवताओं और मंत्रों का वर्णन किया है। जिन्हें षडाम्नाय पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर (उर्ध्व) और अनुत्तर फिर उत्तर कहते हैं।

उत्तर आम्नाय पादुका मंत्र, श्री प्रासादपरा पराप्रासाद, पर शांभवी और पराशांभवी विद्या का वर्णन करते हैं। पराशांभवी विद्या मंत्र शास्त्र का अन्तिम छोर है। सात वर्ष की कुमारी का नाम शांभवी है। वह नव कुमारियों में एक है। लय योग में शांभवी मुद्रा का स्थान है। कुण्डलिनी विवर स्थान में प्रवेश करती है तो उसे शांभवी मुद्रा कहते हैं। शांभवी प्राप्त होने से दोनों श्वास साथ चलते हैं। जाग्रत अवस्था में योगी तेजस शरीर देखते हैं। तब निर्गुण तत्त्व की सिद्धि होती है। हठ योग भी शांभवी मुद्रा है तटस्थ दृष्टि, अपलक नेत्र, ध्यान

भीतर।

नाम संख्या 123 से 240 तक 118 नाम हैं जो चन्द्रमण्डल का वर्णन करते हैं।

१२३. शारदाराध्या

शरद ऋतु में उनकी विशेष पूजा होती है। भगवती सरस्वती उनकी आराधना करती है।

१२४. शर्वाणी

वह सर्व या शिव की रानी है। भगवान कामेश्वर आठ अवस्थाओं में रहते हैं। वे हैं शिव, भैरव, श्रीकण्ठ, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा। ईश्वर को सर्व कहते हैं। उनकी स्त्री होने से माँ शर्वाणी कहलाती है।

१२५. शर्मदायिनी

वह आनन्द देने वाली है। हमें माँ निर्गुण स्वरूप में ले जाती हैं।

१२६. शांकरी

शंकर की रानी हैं। परोपकार करती हैं। योगियों को अपार धनराशि देती हैं।

१२७. श्रीकरी

सबका भला करती है। ''करी'' शब्द से रक्षा करती है

१२८. साध्वी

श्री देवी पतिव्रता शिरोमणि हैं। शिव की जनम-जनम की संगिनी है।

१२९. शरच्चन्द्रनिभानना

माँ का मुख शरद ऋतु के पूर्णचन्द्र की तरह है।

१३०. शातोदरी

शातोदरी नवदुर्गा का यन्त्र है। माँ का उदर भाग क्षीण है।

१३१. शान्तिमती

वह शान्ति देने वाली तूरिया स्थिति है। श्री देवी के पाँच लक्षण है।

वैराग्य, विवेक, संतोष, क्षमा और शान्ति। ये संकल्प, विकल्प, मूर्छा, जड़ता और मन को वश में रखती है।

इस नाम से 190 नाम संख्या तक निर्गुण भाव का वर्णन है। ये नाम शिव और शक्ति, प्रकाश और विमर्श का जोड़ा लगाये हैं। ये नाम गायत्री स्वरूप बतलाये गये हैं।

१३२. निराधारा

उसका आधार नहीं है, पर वह संसार को पालती है। उसकी पूजा बिना शरीर और मन के होती है। उसे अभेद निर्मल चैतन्य से पूजते हैं। गुरुमण्डल के ऊपर कोई स्नायु तंतु नहीं है।

१३३. निरञ्जना

उसमें दाग नही है। अंजन मन है जो जीव भाव की सीमा में प्राप्त होता है। साधक जब इन्हें हटा देता है तो वह ललिता बन जाता है। अपरं पारं, परंपदं, शून्यं, निरञ्जनं और परमात्मा। श्री देवी में सत्त्वत्वं, सरसत्वं, सर्वगतत्वं और सत्यत्वं पाँच लक्षण हैं।

१३४. निर्लेपा

वह आसक्त नहीं है। कर्म तथा सुख-दुख उसे नहीं स्पर्श करते हैं।

१३५. निर्मला

जग से ऊपर वह शुद्ध चैतन्यरूपा हैं।

१३६. नित्या

वह शाश्वत शांति में रहती है। पाँच लक्षण मिलते हैं : अक्षयत्वं, अभेदत्वं, महदत्वं और अविनाशत्वं। लय में भी ये रहती है।

१३७. निराकारा

जब श्री देवी परमात्मा भाव में विराजती है तो पाँच लक्षण मिलते हैं निर्विकल्पता, निर्ममता, निर्णयता, निःसंगता और निराकारिता अशरीर भाव है।

१३८. निराकुला

अकुल सहस्रार पद्म है। श्री देवी अकुलपद्म के परे है।

१३९. निर्गुणा

वह गुणों से परे हैं। गुण मन की सृष्टि है। वह चैतन्यमयी इनसे परे हैं। श्री देवी जब सत्, रज, तम् से परे हो जाती है तब शून्य स्थान में प्रवेश करती है। शून्य में प्रवेश करने पर उनमें पाँच लक्षण रहते हैं लीनत्वं, पूर्णत्वं, उन्मनीत्वं, लोलत्वं, मूर्च्छत्वं। इसी लिये निर्गुण की स्तुति होती है।

१४०. निष्कला

वह अविभाज्य है, पूर्ण है। जब श्री देवी उपरापर स्थान में पहुँचती है वह अपनी षोडशकला को छोड़ देती है। उस समय इसमें ये लक्षण मिलते हैं।

अकलत्वं, अनुपमत्वं, अपरत्वं, अमृत्यत्वं और अनुध्यत्वं। इसी से श्री देवी निष्कला कही जाती हैं।

१४१. शान्ता

उसका स्वरूप शांत है। तरंगविहीन अमृत-सागर की तरह वह है। सभी क्रियायें बन्द हो जाती है। निष्क्रिय अवस्था ही शांति का प्रतीक है। जब श्री देवी सूक्ष्म स्वरूप धारण करती है तो ये लक्षण पाये जाते हैं निरामस्ता, निरन्तरता, निश्चलता और निरूपाधिकता। तब वह शांत रहती है।

१४२. निष्कामा

माँ की कोई इच्छा नहीं हैं। उसे सब कुछ प्राप्त ही है। श्री देवी ने निम्नांकित शक्तियों को वशीभूत कर रखा है। वे हैं रति, प्रीति, क्रोध, कामना, औतरा, उन्मत्ता, वासना, वंचना, चित्त और चेष्टा। इसी से वह निष्कामा है।

१४३. निरूपल्लवा

उसका विनाश नहीं है। वह मुक्त है। माँ की वाणी में अतुलनीय मिठास है।

१४४. नित्यमुक्ता

सह सदा मुक्त है। उसके भक्त भी नित्यमुक्त हो जाते हैं। वह सदा सर्वदा स्वतंत्र है।

१४५. निर्विकारा

अनेक रूपों और विकारों से भरा संसार बनाकर भी वह सबों से निर्विकारा है।

१४६. निष्प्रपञ्चा

वह सभी संसार से पूर्णतया विरक्ता हैं, यद्यपि पूरी सृष्टि उन्हीं की है। वह पंचभूतों से परे है।

१४७. निराश्रया

श्री देवी सभी सृष्टियों का आधार हैं। स्वयं उसका कोई आश्रय नही है वह सब कुछ है।

१४८. नित्यशुद्धा

संसार की सृष्टि से लेकर प्रलय तक, श्री देवी का मन सुदृढ़ और शक्तिमान रहता है। उसमें ये शक्तियाँ रहती है : नित्यस्था, निरंजिता, निष्पन्दता, निरभासता। सारे संसार पर शासन करती हुई सबों से अनासक्त रहती है। इसी से देवी नित्यशुद्धा हैं।

१४९. नित्यबुद्धा

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में तूरिया और तूरियातीता में भी रहने पर माँ आनन्द स्वरूप में रहती है। उसके ये लक्षण हैं : वैराग्य, विवेक, शांति, क्षमा, आनन्द।

१५०. निरवद्या

माँ सगुण रूप से विरक्त रहकर निर्गुण में प्रवेश करती है। जो अपने भक्तों को अविद्या नामक नरक से बचाती है।

१५१. निरन्तरा

वह अभेद चैतन्यमयी है सृष्टि से लय तक माँ को विश्राम नहीं है। पूर्णता, प्रतिविम्बता, प्रर्लंभिता, प्रोच्छलता और प्रत्यंगमुक्तता की शक्तियों को लेकर वह सदा संसार पर नियंत्रण रखती है।

१५२. निष्कारणा

यह कारण रहित है। श्री देवी सभी संसारों का कारण है। वह स्वयं

सारे संसार का कारण हैं।

१५३. निष्कलङ्गा

परमपद भाव में श्री देवी गौरवपूर्ण भाव से सदा प्रकामयी रहती है। ये शक्तियाँ उसके साथ रहती है : अकलङ्का, अनुपमा, अपरा, अमूर्त्ति, अनुध्या और निरुपाधि।

१५४. निरूपाधि

उसके अपरंपार भाव में निष्कलंका, अनुत्तरा, अचला, असंख्य शक्तियाँ रहती है।

१५५. निरीश्वरा

सबसे ऊपर की शक्ति है।

१५६. निरागा

राग रहित है। यह बिना द्वन्द्व के हैं।

१५७. रागमथनी

श्री देवी सभी द्वन्द्वों का विनाश करती है। वैराग्य देती है।

१५८. निर्मदा

माँ को 'अहं' नहीं है।

१५९. मदनाशिनी

वह भक्तों के मद नाश करती है।

१६०. निश्चिन्ता

श्री देवी शून्य में हैं संकल्प, विकल्प, मूर्च्छा, जड़ता।

१६१. निरहंकारा

उसे सीमित 'अहं' नहीं है।

१६२. निर्मोही

माँ को मोह नहीं है।

१६३. मोहनाशिनी

मोह और भ्रम का नाश करती हैं।

१६४. निर्ममा

सगुण स्वरूप की सभी क्रियाओं का नाश करती है। उसमें स्वार्थ नहीं है। ममता नहीं है।

१६५. ममताहन्त्री

माँ सभी अहंकार और ममता का नाश करती है।

१६६. निष्पापा

माँ बन्धन के पापमय दुर्गुणों से मुक्त है।

१६७. पापनाशिनी

वह विमर्श शक्ति रूप में अज्ञान भगा देती है। माँ पर ध्यान करने से पाप, पुण्य हो जाता है।

१६८. निष्क्रोधा

माँ को क्रोध नहीं है।

१६९. क्रोद्धशमनी

असम भाव में मन रहने पर क्रोध आता है। माँ सब असमानता नष्ट करती है। शिव परिवार में अनेक प्रकार के विरोधी स्वभाव वाले पशुओं एवं पदार्थों का सम्मेलन है। समभाव में रहने का ही प्रभाव है कि किसी पर किसी को क्रोध नहीं होता है। माँ क्रोद्ध का शमन कर देती है।

१७०. निर्लोभा

माँ भक्तों का क्रोध और लोभ हरण करती है। वह नवावरण देवी में परिवार देवी को लोभरहित करती है।

१७१. लोभनाशिनी

श्री देवी के समक्ष सभी प्रकार के लोभ नष्ट हो जाते हैं।

१७२. निःसंशया

श्री देवी सभी संशय भगा देती हैं। उसकी महानता का जोड़ नहीं है।

१७३. संशयघ्नी

शाश्वत सत्य का प्रतिपादन कर माँ शंशय का नाश करती है।

१७४. निर्भवा

जो मन्म नहीं लेती हैं। माँ अयोनिजा हैं। माँ को जन्म वासना नहीं है। वह शुद्ध चैतन्यमय परब्रह्म है।

१७५. भवनाशिनी

वह सभी सांसारिक कष्ट हर लेती है। जन्म ही सभी द्वन्द्वों और दुःखों का कारण है। जीवात्मा तो संसार में आने पर अपने शुद्ध स्वरूप को भूल जाता है। इन्द्रियों के सम्पर्क में आने से वह अज्ञानी हो जाता है। वह भले बुरे कार्यों में रत हो जाता है। एक जन्म के कर्मों के कारण ही हमें दूसरा जन्म भी ग्रहण करना पड़ता है। जब जीव इस दुःख को पहचान जाता है वह अपने ज्ञान साधन से जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होने का उपाय ढूढ़ता है। जब जीव निराभिमान होकर माँ के चरणों में सर्वार्पण कर देता है तो माँ उसे वरदान देकर सभी चिन्ताओं को दूर भगा देती है। गंगा में कैसी भी नाली का गंदा जल आकर मिल जाने पर क्षण भर में पवित्र हो जाता है। माँ वाराही शक्ति से जीव का उद्धार कर संसार सागर में डूबने से बचा लेती है।

१७६. निर्विकल्पा

वह निर्विकल्प समाधि है। संकल्प-विकल्प रहित मन इसे पाता है। यहाँ संसार भाव भाग जाता है। एक विषधर नागिन अनेकों अण्डे देती है। पंक्तियों में वे अण्डे पड़े रहते हैं। फिर नागिन सबों का अन्तिम से प्रथम तक खा जाती है। वह नहीं सोचती है कि अण्डे मेरे ही हैं।

१७७. निराबाधा

जीव भाव में जब श्री देवी इन्द्रियों के संसर्ग में रहती है तो वह सभी द्वन्द्वों और बाधाओं में घिरी दिखती है। फिर सबों को विसार कर वह दुःख रहित रहती है।

१७८. निर्भेदा

उसका जीवन भेद रहित है। पंचभूत और उनके गुणों को अलग नहीं कर सकते।

१७९. भेदनाशिनी

शरीर, मन, आत्मा, शक्ति और शिव के भेद का वह नाश करती है। वह योगी में अपने से अलग कुछ नहीं देखती है दूध और पानी जैसा वह योगी में निर्गुण भाव में मिल जाती है।

१८०. निर्नाशा

श्री देवी लय भी मुक्त है। मृत्यु रहित वह है, बीज जैसे वृक्ष में और वृक्ष भी बीज में मिलते रहते हैं, वही उसकी दशा रहती है।

१८१. मृत्युमथनी

मृत्यु का नाश करती है। भक्तों को अमरत्व देती है।

१८२. निष्क्रिया

सब काम उसके द्वारा होती है पर वह स्वयं निष्क्रिया है।

१८३. निष्परिग्रहा

वह पूर्ण काम है, और कुछ नहीं लेती है। भक्त भी निष्परिग्रह हो जाते हैं।

१८४. निस्तुला

उनकी तुलना किसी से नहीं है।

१८५. निलचिकुरा

काला केश है।

१८६. निरपाया

वह खतरा से परे है। ज्ञान स्वरुपिणी जो है।

१८७. निरत्यया

उसे पार करना कठिन है।

१८८. दुर्लभा

उपायों से उसे जीतना आसान नहीं है।

१८९. दुर्गमा

माँ के पास पहुँचना तो और कठिन है।

१९०. दुर्गा

उसने दुर्ग असुर को मार डाला। देवताओं ने प्रार्थना की थी। नौ वर्ष की बच्ची भी दुर्गा कहलाती है। विजयबाड़ा और काशी में प्रतिष्ठिता है। देवताओं ने ही दुर्गा कहकर पुकारा है।

१९१. दुःखहन्त्री

वह दुःखों का नाश करती है। दुःख देनेवालों को वह दण्ड देती है।

१९२. सुखप्रदा

निर्वाण सुख देती है। सब सुख वही देती है।

१९३. दुष्टदूरा

जो उसकी महिमा से अपरिचित रहकर उसकी निन्दा करते हैं, उनसे वह दूर ही रहती है। पापियों से संकेत है।

१९४. दुराचारशमनी

साधको की गलतियों को क्षमा करती है। शास्त्र विरोधी लोगों का शमन करती है।

१९५. दोषवर्जिता

वह राग, द्वेश से अलग है। भक्तों के प्रति उदार भाव है।

१९६. सर्वज्ञा

वही सब ज्ञान का केन्द्र है। वह सब कुछ जानती है।

१९७. सान्द्रकरुणा

भक्तों को करुणा देती है। साधकों को सदा रक्षित रखती है।

१९८. समानाधिकवर्जिता

उससे अधिक कोई नहीं।

१९९. सर्वशक्तिमयी

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, आवरण देवता, श्री चक्र की देवियाँ उसी में हैं।

२००. सर्वमङ्गला

अपने प्रभाव से सबों का मंगल करती हैं। यह शिव की कल्याणी देवी है।

द्वितीय अध्याय समाप्त

♦

ॐ

तृतीय-अध्याय

२०१. सद्गतिप्रदा

माँ पथ देती है। भक्तों को परम सत्य का मार्ग दिखाती है पृथ्वी और स्वर्ग के सभी सुख और जीव को मुक्ती भी देती है। श्रीदेवी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए श्री विद्या का मार्ग राजमार्ग है। यह गुप्त है गुरु ग्रन्थ है। श्री विद्या योग साधना है। योग नहीं तो अध्यात्मिक साधना नहीं है। ब्रह्मा-पुत्र वशिष्ठ ने भी बहुत काल तक श्री देवी की पूजा की थी। पहले उन्हें श्री विद्या का पता नहीं था। माँ उनकी पूजा से प्रसन्न हुई। चिदाकाश से उन्हें माँ का स्वर सुनाई पड़ा, ''बुद्ध के पास जाकर मेरा वास्तविक रूप पहचानों।'' वशिष्ठ ने शून्य का वह स्वर सुना और वे चीन भूमि में गए। भगवान बुद्ध से उन्होंने श्री विद्या का राजमार्ग जाना। यह बुद्ध सिद्धार्थ बुद्ध नहीं थे। उनका पूर्ण स्वरूप था।

अजगाम महाविद्या योगानामभयप्रदा
अकारण मरे विप्रा शापो दत्त स दारुणम्
मम सेवा नाम न जानातिमकुलागम चिन्तनम्
कथम् योगाभ्यास वशात् मत्पादम्बोज दर्शनम्
प्राप्नोति मानुषोभूत्वा मम ध्यानम् हि दुःखितः।

२०२. सर्वेश्वरी

यह समस्त विश्व की साम्राज्ञी हैं। नाम रूप संसार की वह ईश्वरी है।

२०३. सर्वमयी

सब में व्याप्त रहने से वह सर्वमयी है।

२०४. सर्वमन्त्रस्वरूपिणी

वह मन्त्रों का स्वरूप है। सर्वमन्त्र से वेद या सप्तकोटि मन्त्रों का बोध होता है जो 105 मातृकाओं से बनते हैं। मन्त्रों के दशाङ्गो को लेकर षडाम्नाय के द्वारा शिव के द्वारा सभी मंत्रों की सृष्टि हुई है। शिव-शक्ति अभेद है। मंत्र भी अभेद है। माँ सबों में है।

२०५. सर्वयंत्रात्मिका

वह यंत्रों की आत्मा है। प्राणस्वरूपिणी श्री देवी सभी देवों का प्रतीक है। धातुओं पर उनके मंत्र खुदे रहते हैं। यंत्रों से माँ की पूजा होती है। यंत्रों में देवताओं के आसन रहते हैं। यंत्र शास्त्र विधि से अंकित होना चाहिए। वे शक्तिमान रहते हैं।

२०६. सर्वतंत्ररूपा

वह सभी तंत्रों का स्वरूप है। जैसे अनेकों नदियाँ सागर में मिलकर एक हो जाती है, वैसे ही अनेक पंथ आगम या तंत्र में आकर एक हो जाते है। पूजा विज्ञान में देवी को सभी देवताओं की पूजा प्राप्त है। देवताओंके सूक्ष्म या तेजस स्वरूप होते हैं। उनमें तीन गुण रहते हैं। उनको शारीरिक आनन्द भी मिलता है। अत: साधक पूजा और बलि के रहस्यों को समझकर देवताओं को वशीभूत करने का प्रयास करेंगे। श्री देवी स्वयं अपना विज्ञान है।

२०७. मनोन्मयी

अपने स्वमी के स्थान के विषय में वह सदा उन्मत्त भाव में रहती है। सदा शिव के साथ रहने को चिन्तित रहती है। निरालम्बपुरी का अन्तिम सथान उन्मनी है। यह शिव स्थान है। यहाँ पराशक्ति कुण्डलिनी शिव के संग बिहार करती है। योग में मन, विचार, शून्य हो जाता है। यह अवस्था रूद्र वक्त्र अवस्था है। मस्तिष्क में मनोन्मनी नामक एक चक्र है। मनोन्मनी अवस्था पाने के लिए मनोन्मनी मुद्रा भी है। श्री दुर्गा का एक गुप्त नाम मनोन्मनी है।

२०८. माहेश्वरी

यह निर्गुण की शक्ति नवनिधियों का आगार है। माहेश्वरी, भूपुरत्रयं की अष्टमातृकाओं में दूसरी हैं। यहाँ चन्द्रमण्डल में माहेश्वरी का संकेत है।

२०९. महादेवी

वह देवियों में सबसे प्रधान है। आदि शक्ति यहाँ कहलाती है। गण्डक नदी के किनारे चक्र तीर्थ की अधिष्ठात्री महादेवी कहलाती है।

२१०. महालक्ष्मी

जीवन सुख ही महान् शक्ति है। विश्व की महाप्राण शक्ति है। सभी वैभवों की स्वामिनी है। इसका नाम अष्ठमातृकाओं में अन्तिम है।

२११. मृडप्रिया

मृडप्रिया यानी शिव की प्रिया है। शिव के मृड अवतार की स्त्री श्री देवी मृडप्रिया कहलाती है।

२१२. महारूपा

प्रधान रूपवाली है। असीम प्रकाशमय रूपवाली है।

२१३. महापूज्या

वह त्रिमूर्ति द्वारा पूजी जाती हैं सिद्ध लोग उसकी पूजा करते हैं। श्री चक्र की नवावरण अर्चना प्रसस्त है। अत: वह महापूज्या है।

२१४. महापातकनाशिनी

वह महान पापों का नाश करती है। भक्तों के पंचपाप को मारती है। पंचपाप है सुवर्ण की चोरी, मद्यपान, ब्रह्महत्या, गुरुपत्नी से दुर्भाव और मित्र से विश्वासघात। श्री देवी पापियों का सर्वनाश कर डालती है।

२१५. महामाया

यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी चक्कर में रखने वाली है। नाम रूप के अगणित संसार उसने रचे हैं। वेदों का विधान भी बनाया, सबों को फँसाकर रखा भी है। श्री देवी महामाया कहलाती है।

२१६. महासत्त्वा

उसके सर्वोच्च सत्ता है। वह शुद्ध बुद्धिमयी है।

२१७. महाशक्ति

(1) सृष्टि, स्थिति और लय

(2) साम्राज्यत्व

(3) परिपालन,

इन तीनों शक्तियों से पूर्ण वह महाशक्ति है।

२१८. महारति

श्री देवी प्रेम का स्वरूप है।

२१९. महाभोगा

वह सभी दिव्य विलास के पदार्थों से भरी है।

२२०. महैश्वर्या

वह महान् ऐश्वर्यों से भरी है।

२२१. महावीर्या

वह वीरता की महान् संरक्षिका है।

२२२. महाबला

पूर्ण शक्ति के साथ अपनी सेना को सम्भालती है।

२२३. महाबुद्धि

श्री देवी सर्वोच्च बुद्धि की मूर्ति है।

२२४. महासिद्धि

वह सिद्धियों का विशाल आगार है।

२२५. महायोगेश्वरेश्वरी

श्री कृष्ण और दुर्गा के रूप में वह महायोगेश्वरी मानी जाती है। वह महान् योगेश्वर की भी ईश्वरी है, स्वामिनी है।

२२६. महातंत्रा

यह तंत्रों से भरी भी है। 64 तंत्र शिव रचित हैं। अष्टतंत्र योगियों की रचना है। सगुण और निर्गुण के आनन्द का वे वर्णन करते हैं। सौभाग्यपञ्चक के पाँच ग्रंथ सनकादि ने लिखा है। इनके गुप्त संकेत होते हैं। सद्गुरु से इनके रहस्य मिलते हैं। श्री विद्या का सर्वोच्च स्थान है।

२२७. महामंत्रा

श्री गुरुपादुका मंत्र माँ का सूक्ष्म शरीर है। मंत्र शास्त्र के 6 भाग षडम्नायमय है, उर्ध्वाम्नाय प्रमुख हैं। इसमें महामंत्र या महापादुका मंत्र का समावेश है।

२२८. महायंत्रा

श्री चक्र यंत्रों में सबसे बड़ा है। श्री देवी ने वशिन्यादि वाक्देवी को एक सुन्दर यंत्र बनाने का आदेश दिया। उन्होंने श्री चक्र की रचना की। इसके भू प्रस्तार, कैलाश प्रस्तार और मेरुप्रस्तार वाले तीन आवरण हैं। पूजा की सुविधा के लिए भूप्रस्तार को पाँच चक्रों में बाँटा गया है। विन्दु-त्रिकोण, संहार चक्र, शक्ति चक्र, सृष्टि चक्र और सम्पूर्ण चक्र। श्री चक्र के नवावरणों में

महाकामेश्वरी के 107 परिवार देवियाँ हैं। महाकामेश्वर अपनी शक्ति महाकामेश्वरी के साथ नवम् स्थान या विन्दु में रहते हैं। दूसरे यंत्रों के द्वारा किसी एक ही देवता विशेष का आह्वान किया जा सकता है। पर श्री चक्र के द्वारा किसी भी देवी या देवता का आह्वान संभव है। इसी से श्री चक्र को महायंत्र कहा है।

२२९. महासना

श्री देवी के शक्तिशाली आसन को ही महासन कहा है। पृथ्वी से शिव का 36 तत्त्वों वाला उसका आसन है। महासन से यज्ञशाला का भी संकेत है। वह यज्ञ प्रिया हैं।

२३०. महायागक्रमाराध्या

माँ नित्य उपचारोंसे पूजी जाती है। वह सभी संसारों का प्रतिष्ठान अपने अन्तर में रखे हैं। अत: श्री देवी की आराधना समस्त ब्रह्माण्डों की आराधना है। नवावरण पूजा या 64 योगिनियों की पूजा को महायाग कहते है। कोई दूसरे देवता उस प्रकार की पूजा लेने का अधिकार नहीं रखते हैं। महायाग को जगत ज्ञान भी कहते हैं। भूपुर से बिन्दु तक विभिन्न उपचारों से वहिर्याग एवं भावनोपनिषद् के अन्तर्याग के आधार पर उसकी पूजा होती है। श्री याग, अम्बायाग और अग्निस्तोभ द्वारा उसकी पूजा होती है। वह उन सबों का लक्ष्य भी है।

शिवाद्यवनि पर्यन्तं ब्रह्मादिस्तम्भ संयुतम्
कालाज्ञापि शिवान्तं च जगद्यज्ञेन तृप्यतु।

२३१. महाभैरवपूजिता

महाभैरव उसे पूजते हैं। कल्प के अन्त में परमशिव भैरव रूप धारण करते हैं। श्री विद्या के दो सम्प्रदाय है। एक आनन्द भैरव ऋषि का और दूसरा दक्षिणामूर्त्ति का है। यह आनन्द भैरव ही महाभैरव हैं। श्री देवी का महायाग वे सदा करते हैं। इस पूजा में माँ की आराधना समाप्त कर एक दिव्यांगना को बैठाकर षोडशोपचारों से उनकी पूजा करते हैं, एक हाथ में ज्वलित शक्तिमय कपाल पात्र रखते हैं और तन्मय होकर नृत्य करते है। यह नृत्य आनन्द भैरव नृत्य कहा जाता है। सिद्धमाला (यंत्र) रहस्य श्री देवी की उपासना पद्धति में अनेक रमणीय उपचार है।

२३२. महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी

कल्पान्त में शिव के महाताण्डव को देखनेवाली साक्षिणी के रूप मे रहती है। कल्पान्त में वह सृष्टि को अपने में रखे रहती है। बीजरूप में संसार उनमें छिप जाता है।

२३३. महाकामेशमहिषी

घर की स्त्रियाँ भी सभी को समाप्त कर शय्या पर अपने पतिदेव के साथ विश्राम करती है। श्री देवी भी शिव की वैसी ही सँगिनी है। महाकाम+ईश+ महिषी=सृष्टि करने की महती इच्छा ईश महिषी से शिव की सँगिनी का बोध होता है।

२३४. महात्रिपुरसुन्दरी

श्री कामेश्वरी ने ही महात्रिपुरसुन्दरी का रूप धारण किया है। श्रीचक्र के त्रिकोण के भीतर एक बिन्दु है। त्रिकोण अव्यक्त का सूचक है।

त्रि से त्रिकुटी ध्याता, ध्यान, ध्येय

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय

का बोध होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण से भी संकेत है। इसमें तीन वेद भी हैं। सभी त्रिभावों का समावेश है। योग निन्द्रा से जगने पर प्रकाश बिन्दु और विमर्श बिन्दु में प्रगट होती है। दोनों बिन्दु मिलकर मिश्र बिन्दु बनते हैं। फिर त्रिकोण मध्य महाशून्यमय इसके रूप होते हैं। यह असीम है। मिश्र बिन्दु में शिव शक्ति सामरस्य रहता है। यह बिन्दुत्रय ही त्रिपुरसुन्दरी नाम से प्रशस्त है। वाक् देवियों ने बिन्दुत्रय की त्रिपुटी रूप में प्रार्थना की है, वह त्रिपुरसुन्दरी का प्रतीक है।

२३५. चतु:षष्ट्युपचाराढ्या

64 उपचारों से उनकी पूजा होती है। संकल्प से अवभृत पर्यन्त 64 पदार्थों से उसकी उपासना होती है। विभिन्न अवतारों में श्री देवी ने विभिन्न रूपों में पूजा ली है। वरिवस्या, रहस्य में 64 उपचारों का वर्णन है।

२३६. चतु:षष्टिकलामयी

माँ 64 कलाओं से युक्त हैं। वह वेद, पुराण, दर्शनों का आधार है।

२३७. महाचतु:षष्टिकोटियोगिनीगणसेविता

अंधकार की शक्तियों से युद्ध में वह 64 कोटि योगिनियों से घिरी रहती है। माँ की अमिट शक्ति का, अमित ऐश्वर्यों का गुणगान है।

२३८. मनुविद्या

पञ्चदशाक्षरी श्री विद्या दो प्रकार की है। हादि विद्या और कादि विद्या के नाम से प्रसस्त है। योगियों ने दूसरे मार्गों से भी इस पर नियंत्रण किया है। मनु एवं उनके परिवार ने अपने ढंग से माँ को प्रसन्न किया था। यह मनुविद्या नाम से विख्यात है।

२३९. चन्दविद्या

चन्द्रमा ने भी अपने ढंग से पञ्चदशी की उपासना की। माँ ने उनकी शैली की प्रशंसा की और चन्द्रविद्या कहकर उसे सम्मानित किया।

२४०. चन्द्रमण्डल मध्यगा

श्री देवी चन्द्रमण्डल में विश्राम करती है चन्द्रमण्डल सहस्रदल कमल की कर्णिका में हैं। प्रकाश, विमर्श और मिश्र बिन्दु एक त्रिकोण में है। इस पर विश्राम करती हुई श्री देवी सृष्टि रचना प्रारम्भ करती है।

२४१. चारुरूपा

श्री देवी का रूप अत्यधिक सुन्दर है। उसका चन्द्रमण्डल सहस्त्रार में है।

२४२. चारुहासा

भक्तों पर उनकी मधुर मुस्कान कृपा वृष्टि करती है।

२४३. चारुचन्द्रकलाधरा

अष्टमीचन्द्र को त्वरिता या चारु कहते हैं। नित्याकला में ह्रास या वृद्धि नहीं है। नित्या कामकला एकाक्षरी मंत्र की देवी है। वह स्वयं ललिता है चन्द्रकला मणि से विभूषिता।

२४४. चराचरजगन्नाथा

यह सारे विश्व की महारानी है। चर और अचर की स्वामिनी है। जगत तो माँ की शक्ति का प्रकाश है।

२४५. चक्रराजनिकेतना

चक्रराज श्मशान काशी की मणिकर्णिका, अविमुक्त क्षेत्र, मुक्ति देनेवाला स्थान, विवर, सभी द्वन्द्वों से मुक्त स्थान में वह रहती है। वह चक्र के निकेतन में रहती है।

२४६. पार्वती

पर्वतराज हिमालय की पुत्री है। श्री सतीदेवी (श्रीदेवी) ने पार्वती रूप में अवतार लिया।

२४७. पद्मनयना

वह कमल जैसे नयनवाली हैं।

२४८. पद्मरागप्रभा

माँ की शोभा लाल रंग से पद्मपराग मणि जैसी है।

२४९. पञ्चप्रेतासनासीना

प्रेत शरीर छाया है।

(1) शरीर की छाया, (2) छाया पुरुष मौलिक छाया, (3) स्वप्न शरीर (4) कारण शरीर (5) तुरीया शरीर।

श्री देवी इन पाँचों जीवनहीन तनों से ऊपर हैं। माँ इस सिंहासन पर बैठी है जो पाँच प्रेतों से बना है। वे हैं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव। वामा, ज्येष्ठा इत्यादि शक्तियों द्वारा उन्हें शक्तिमान रखती है। माँ पञ्चभूतों के ऊपर रहती हैं।

२५०. पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी

माँ पञ्चब्रह्म का स्वरूप है (1) शब्द ब्रह्म, (2) नाद ब्रह्म, (3) महानाद ब्रह्म, (4) वाक् ब्रह्म, (5) परब्रह्म। पञ्चभूतमय ये पञ्चब्रह्म बन जाते हैं श्री देवी की शक्तियों के द्वारा।

२५१. चिन्मयी

वह चित्शक्तिमयी है। वह निःस्पन्द परानाद है। नाद शक्ति परा से सूक्ष्म स्वरूप में निकलते समय चिन्मयी कहलाती है।

२५२. परमानन्दा

माँ परम आनन्द के स्वरूप में हैं।

२५३. विज्ञानघनरूपिणी

वह घनीभूत चैतन्य है। ब्राह्मण में ऐसा नाम है। उसमें सृष्टि सम्बन्धी सभी ज्ञानों का समावेश है।

२५४. ध्यानध्यातृध्येयरूपा

वह द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि की त्रिपुटी है।

२५५. धर्माधर्मविवर्जिता

निष्क्रिय भाव रहने से वह धर्म-अधर्म से वर्जित है। धर्म-अधर्म बन्धन के भाव हैं। कहीं धर्म को बंधन और अधर्म को मोक्ष कहा है। श्री देवी समस्त वैदिक धर्म कृत्यों से ऊपर है।

२५६. विश्वरूपा

विश्व उसका रूप है। व्यष्टि और समष्टि में जीव और ईश्वर रूप में, जाग्रत, स्वप्न, सुषप्ति और तूरिया रूप में रहती हुई वह उन सबों से ऊपर रहती है। माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार जाग्रत अवस्था में व्यक्ति रूप में वह विश्व कहलाती है। दिव्य आत्मा को जाग्रत में वैश्वानर कहते हैं। अगणित ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड माँ से निकले हैं। पिण्डाण्ड में बीज रूप से रहती है। जिससे महान् विश्ववृक्ष निकलता है।

२५७. जागरिणी

जाग्रत अवस्था में जिसमें जीव विश्व कहलाता है। विश्व की सृष्टि कर सावधानी से सबको माँ की तरह देखती रहती है।

२५८. स्वपन्ती

स्वप्नमयी है। जीव सूक्ष्म शरीर में रहती है। जाग्रत अवस्था की छाप स्वप्न में रहती है। मछलियाँ अपने बच्चों को आँखों से खिलाती है। स्वपन्ती से खाना खिलाने का भाव है।

२५९. तैजसात्मिका

यद्यपि श्री देवी दयावती हैं, फिर भी माँ संसार को सुदृढ़ और परिपक्व मानस शक्ति देती है। तैजस जीव की स्वप्नावस्था का स्वरूप है।

२६०. सुप्ता

वह सुषुप्ति अवस्था में है। तीसरी अवस्था है। सृष्टिकाल में श्री देवी

अनमनस्क या शून्य अवस्था में रहती है।

२६१. प्राज्ञात्मिका

वह प्राज्ञ स्वभाव की है। प्राज्ञ सुषुप्ति अवस्था का विभु है। जीव यहाँ कारण शरीर के साथ रहता है। यह सावधानी की अवस्था है।

२६२. तुर्या

चतुर्थ है। तीनों से पार है। मन में विचार, दृष्टि, श्रुति कुछ भी नहीं रहता है। यह भूमा है। जानकारी भी नहीं रह जाती है। श्री देवी सभी प्रकार के ज्ञानों का प्रतीक है। सभी सृष्टियों का आधार है। अपनी विशेष अवस्था में रहने पर वह अपने ज्ञान और विचार को भूल जाती है। यह अवस्था ही तुर्या कहलाती है। छान्दोग्य उपनिषद् में तूरिया की व्याख्या दी गयी है। उपनिषद् की कहानी इस प्रकार है :

प्रथम स्तर के देवता और द्वितीय स्तर के राक्षस ब्रह्म-विद्या की उपासना में अक्षम रहे, यद्यपि उन्होंने दीर्घ काल तक भक्तिपूर्वक साधना की थी। उन्होंने मिलकर एक उपाय सोचा कि ब्रह्मा से मिलकर शाश्वत सत्य का परिचय प्राप्त करें। देवताओं की ओर से इन्द्र और असूरों की ओर से वैरोचन इस कार्य के लिए चुने गये। उन्होंने ब्रह्मा से भेंट की और राजमार्ग में दीक्षा देने का आग्रह किया जिससे वे शाश्वत सत्य पर पहुँच सकें। भगवान ब्रह्मा ने उन्हें शुद्धि के लिए बत्तीस वर्षों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन का आदेश दिया। देव और असुर ने व्रत का संतोषजनक ढंग से पालन किया ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और उन्हें ब्रह्म विद्या में दीक्षा दे दी। जाग्रत अवस्था में ही प्रत्यगात्मा की पहचान होवे, यह विद्या ब्रह्मा ने उन्हें दी। इन्द्र और वैरोचन, दोनों ही ज्ञान पाकर ब्रह्मा जी से विदा हुए। वैरोचन ने शीघ्र ही अपनी प्राप्त विद्या में अपने साथियों को दीक्षा दे दी। वैरोचन ने यही सोचा कि इसके बाद इस विद्या में और कुछ प्राप्त करने को नहीं रहा। सभी राक्षसों ने विद्या में अभ्यास शुरु कर दिया। वैरोचन ने जैसा सिखाया था। सबों ने उसी ढंग से कार्य किया। सभी आनन्द पाकर शक्तिशाली हो गये। परन्तु इन्द्र को अपनी प्राप्त विद्या में थोड़ा-थोड़ा संशय होने लगा। उसने सोचा कि प्रत्यगात्मा तो मात्र छाया है अत: असत्य है। इसमें पूर्ण सत्य का अनुभव कैसे हो सकता है? वह ब्रह्मा के पास गया और अपना संदेह सुना दिया। ब्रह्मा ने इन्द्र का आग्रह

सुना। इन्द्र की प्यास सच्ची थी। ब्रह्माजी ने इन्द्र से फिर 32 वर्षों का व्रत पूरा करने को कहा। फिर स्वप्न अवस्था की आत्म विद्या में ब्रह्माजी ने दीक्षा दी। इन्द्र को हुआ कि यह भी पूर्ण विद्या नहीं है। फिर बत्तीस वर्षों तक व्रत पालन किया। ब्रह्माजी ने आत्मा की सुषुप्ति अवस्था का ज्ञान उन्हें दिया। इन्द्र को फिर भी संतोश नहीं हुआ। ब्रह्माजी ने इन्द्र की संलग्नता शुद्ध जिज्ञासा, 96 वर्षों की तपस्या को देखा। पाँच वर्ष तक और तपस्या कर ले इन्द्र तो विद्या की पूर्णता मिल जायगी ब्रह्माजी ने कहा। इन्द्र ने ऐसा ही किया। 101 वर्ष की तपस्या के बाद इन्द्र को तुर्यावस्था की ब्रह्म विद्या के निर्गुण रूप में दीक्षा दी। योग तत्व के नारी-विज्ञान का यह प्रतीक है। शरीर की 101 नाड़ियों को कार्यरत रखने का भाव है। वेदों का कथन है कि शरीर में 101 नाड़ियाँ हैं, जिसमें से एक नाड़ी ब्रह्मरंध्र तक जाती है, जिसके द्वारा कुण्डलिनी गुरुमण्डल तक जाती है, फिर परमानन्द धाम में भी पहुँचती है। अन्य नाड़ियाँ सारे शरीर में फैल जाती है। नाड़ी केन्द्र से ये नाड़ियाँ चलती हैं जो मूलाधार और स्वधिष्ठान के बीच में हैं। इनमें दस दस नाड़ियाँ हैं कुहू, शंखिनी, पृथा, यथा, अलम्बुषा, गान्धारी, हस्तजिह्वा, इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना। इन दसों में इड़ा और पिङ्गला मुख्य हैं। सुषुम्ना में तीन तह हैं। प्रथम सुषुम्ना, द्वितीय वज्रिणी और तृतीय चित्रिणी, जे वज्रिणी के भीतर है। तीनों एक होकर सुषुम्ना कहलाती है। मेरुदण्ड के कशैरुओं में इनका मार्ग है। पुराणों में इस आशय की कथा है। महाबली राक्षस की एक सुन्दरी कन्या थी। नाम था उषा। भगवान कृष्ण के पौत्र थे अनिरुद्ध। प्रेम-दूती चित्रलेखा ने उषा और अनिरुद्ध के गुप्त मिलन का उपाय रचा। आगे कहने को रहा क्या। ये प्रतीक स्वयं बताते हैं ब्रह्माण्ड ही वाणासुर है। उषा कन्या कुण्डलिनी शक्ति है जो उषा काल में चलती है। अनिरुद्ध भ्रूमध्य है। चित्रलेखा चित्रिणी है जो मूलाधार में आज्ञाचक्र को मिलाती है। अनिरुद्ध भगवान कृष्ण का पौत्र या प्रतिनिधि हैं (आत्मा वै पुत्र:) इसमें योगियों की कुण्डलिनी के मिलन का रूपक है।

२६३. सर्वावस्थाविवर्जिता

यह सभी अवस्थाओं से परे है। यहाँ ज्ञाता ज्ञेय भाव का विलय हो जाता है। श्री देवी सभी अवस्थाओं से परे हैं।

२६४. सृष्टिकर्त्री

अवस्थाओं से परे रहने पर भी सृष्टि कार्य में श्री देवी का बड़ा

उत्तरदायित्व है। नीचे के पाँच नामों में श्री देवी के पंचकृत्य का प्रसंग है।

२६५. ब्रह्मरूपा

श्री देवी वेद की कथाओं की मूर्ति है। विष्णु पुरान के अनुसार संसार सृष्टि का भार ब्रह्मा को है जो श्री देवी की त्रिमूर्ति का एक अंग है।

२६६. गोप्त्री

वेद रूप होने से वह उसका पालन करती है। विष्णुरूप में भी सब की रक्षा करती है, सबको पालती है। अपने नियमों के द्वारा पालन कार्य करती है।

२६७. गोविन्दरुपिणी

विष्णु के रूप में हैं। नारद जी ने हरिवंश में विष्णु को ईश्वर की प्रकृति या स्त्री रूप में रहकर पालन करने की कथा लिखी है। देव गुरु वृहस्पति का दूसरा नाम गोविन्द है। श्री देवी गुरु वृहस्पति के द्वारा अपनी बुद्धि का प्रकाश करती है। इसे गोविन्दरुपिणी कहते हैं।

२६८. संहारिणि

वह समस्त विश्व का संहार करने वाली है। अहंकार का नाश करती है माँ ललिता या रुद्र का तीसरा काम लय करना है।

२६९. रूद्ररूपा

श्री देवी रुद्र के रूप में हैं। अज, एकपद, अहिर्भुवनीय त्वस्था, रुद्र, हर, त्रयम्बक, अपराजिता, ईश्वर, त्रिभुवन एकादश नाम है रुद्र के। इसमें श्री देवी रुद्ररूपा हैं। अपनी शक्ति से वह एकादश रुद्रों में काम करती है। छान्दोग्य उपनिषद में 32 ब्रह्म विद्यायें हैं। 31वीं विद्या रुद्र विद्या है। श्री देवी तो सभी विद्याओं की मूर्त्ति हैं।

२७०. तिरोधानकरी

माँ लय की देती है।

२७१. ईश्वरी

वह अष्टमूर्तियों में एक है श्री देवी यहाँ ईश्वरी रूप में प्रशंसित हैं। वह संसार की क्रियाओं की नियन्त्रण कर्त्री हैं।

२७२. सदाशिवा

सदा कल्याणमयी, वरदानमयी है। सदा शिव पंचब्रह्म में पाँचवाँ हैं। यह सात्त्विक भाव है। अनुग्रह इनका नाम है।

२७३. अनुग्रहदा

माँ अपने भक्तों को वरदान देती रहती है। माँ अष्टमूर्त्तियों की सृष्टिकर कृपा करती है।

२७४. पंचकृत्यपरायणा

ऊपर के पंचकृत्यों को सम्पन्न करने का काम करती हैं सृष्टि, स्थिति, विनाश, पालन और वरदान ये पंचकृत्य हैं। इसीसे माँ का उपरोक्त नाम है।

२७५. भानुमण्डलमध्यस्था

आदित्यान्तर्गतं यच्च ज्योतिषम्

माँ सूर्य के केन्द्र विन्दु से ज्योति पुरुष का दर्शन दिलाती है। अनाहत चक्र से संकेत है। श्री देवी सूर्य मण्डल में है। चन्द्रमण्डल प्रकाश विन्दु है। शिव भाव है। अग्नि मण्डल विमर्श विन्दु है। शक्ति भाव है। भानुमण्डल मिश्र विन्दु है। शिव शक्ति सामरस्य है। श्री देवी भानु मण्डल के मध्य में है।

२७६. भैरवी

सृष्टि काल में श्री देवी ने अष्टमूर्त्ति का अवतार लिया जिसमें भैरवी भी है। श्री देवी भैरवी बनी। देवताओं की वह श्रीणी जो वीरों की पंक्ति है भैरव और भैरवी की उपासना करते हैं। तांत्रिक साधना में स्त्री गुरु का नाम भैरवी है।

२७७. भगमालिनी

माँ सूर्यों की माला पहने हैं। यह उनका दिव्य तन है। आकाश गंगा में देश काल तथा वैभवों की माला का संकेत है। श्री चक्र के अष्टम भाग में एक त्रिकोण है। भगमालिनी निम्न कोण में रहती है। भगमालिनी एकाकी मिश्र विन्दु है और सृष्टि वहीं से होती हैं। श्री देवी की षोडश कलाओं में भगमालिनी एक है। त्रिकोण के वाम भाग में है। अत: भगमालिनी के रूप में मिश्र बिन्दु और नित्याकला के रूप में कार्यरत रहती है।

२७८. पद्मासना

श्री देवी पद्म आसन में बैठी है। योगासनों में पद्मासन सबसे सुलभ और सुगम है। शरीर की आन्तरिक क्रियाओं द्वारा यह शरीर को हल्का रखता है। साधना भी सुगम हो जाती है। मूलाधार से सहस्त्रार तक वह कमल के आसन पर विराजमान रहती है।

२७९. भगवती

पद्मासन में वह भगवती रूप में रहती हुई संसार के संकल्प विकल्पों पर शासन करती है। (1) शुभवस्तु (2) दान (3) यज्ञ (4) नाम (5) बुद्धिमत्ता और विवेक विचार षट्ऐश्वर्य भग कहलाते हैं। वह इन सबों से युक्त होने के कारण भगवती कहलाती है।

२८०. पद्मनाभसहोदरी

विष्णु की वहन है। उनके साथ ही प्रगटी।

ब्रह्मा लक्ष्मी

विष्णु श्री देवी

रुद्र सरस्वती

इस क्रम में त्रिमूर्ति और त्रिशक्तियाँ प्रगटी हैं। विष्णु के साथ प्रगट होने के कारण सृष्टि पालन क्रिया करती है।

२८१. उन्मेष निमिषोत्पन्नविपन्न भुवनावली

वह आँखें खोलती है तो विश्व का अंकुर उगता है। वह आँखें बन्द करती है तो विनाश होता है। ये सब उसके निमेष पर निर्भर है। देवताओं के आँखों की पलकें बन्द नहीं होती है। अत: पलक मारने में मानव शरीर से संकेत है। यह माँ की इच्छा शक्ति का असाधारण उदाहरण है।

२८२. सहस्त्रशीर्षवदना

माँ के सहस्र सिर और मुख हैं। सहर्ष शीर्ष पुरुष से भी संकेत हैं। एक सिर में इतना ज्ञान है कि सहस्र सिर से तुलना है।

२८३. सहस्त्राक्षी

उनकी हजारों आँखें हैं। माँ की दिव्य आँखें सहस्त्रों आँखों के बराबर है।

२८४. सहस्त्रपाद

उनके हजारों चरण हैं। पुरुष सूक्त में विशद वर्णन है। सहस्त्रपाद से किरणों का भी संकेत है।

२८५. आब्रह्मकीटजननी

वह कीट से लेकर हिरण्यगर्भ तक की माता है। वह समस्त जड़ चेतन का आधार है।

२८६. वर्णाश्रमविधायिनी

वेद माता के रूप में उन्होंने चार वर्णों और आश्रमों का निर्माण किया। स्थावर जंगम, श्वेद, उद्भिज आदि उसने ही बनाये।

२८७. निजाज्ञारूपनिगमा

वेद उनकी आज्ञा से आये हैं। माँ ने पुस्तकों की जड़ता में देवरूपता भर दी है।

२८८. पुण्यापुण्यफलप्रदा

वह पुण्य और पाप का फल देती है। प्रलय काल में विश्वबीज को बचा कर रखती है। पूर्व जन्म की वासना के अनुरूप माँ रूप गुण देती है।

२८९. श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिका

स्त्रियों के मस्तक पर शोभित सिन्दूर पराग माँ के चरण कमल की धूल है। सात्त्विक भावों के कारण उपनिषद् सब वेदों के सिर के रूप में मान्यता पाते हैं। वे माँ के चरण कमल का आधार बने हैं। श्री विद्या और समयामाता को भी ये उपनिषद् अपने ऊपर रखे हैं। माँ के चरण कमल की लाली उपनिषदों और महावाक्यों में निहित हैं। चरण कमल की धूलि की सुगन्धि दूर-दूर तर फैली है। ये मंत्र के प्रभाव हैं। माँ के चरण कमल की सुगन्धि उपनिषदों और उनके भक्तों में फैलती है।

जब सभी वेद पुराणों में माँ की चरण वन्दना की तो माँ के चरणों के लाल चन्दन लेप वेद पुरुषों के मस्तक में लग गये और उनके ललाट की शोभा बढ़ाने लगे।

२९०. सकलागमसंदोहशुक्तिसंपुटमौक्तिका

सीप में जैसे मोती छिपे रहते हैं, माँ के मंत्र भी वैसे ही आगमों और

निगमों में छिपे रहते हैं।

२९१. पुरुषार्थप्रदा

जीवन के चतुर्विध पुरुषार्थ देती हैं। वह अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष का वरदान देती हैं।

२९२. पूर्णा

अपनी पूर्णता से वह योगियों में शान्ति भर देती है।

२९३. भोगिनी

जीवन मुक्त होकर वह ब्रह्माण्ड का भोग योगिनी में पाती है। अपने परिवार या आवरण देवताओं को वह पूर्ण भोग देती है।

२९४. भुवनेश्वरी

वह महाविद्या मंत्रमयी भुवनेश्वरी हैं। वह चौदहो भुवन की ईश्वरी है। कई मत भुवन को आकाश मानते हैं। वे व्योम पंचक कहते हैं (1) आकाश, (2) प्रकाश (3) तत्त्वाकाश (4) महाकाश (5) सूर्याकाश। श्री देवी व्योम पंचक की ईश्वरी है। "भुवनेश्वरी" उसी की स्तुति के वचन हैं।

२९५. अम्बिका

माँ वर और अभय से रक्षा करती है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया की शक्ति से श्री त्रिपुर सुन्दरी को अम्बिका कहते हैं। अम्बा रूप में वह बाला त्रिपुर सुन्दरी मानी जाती है।

२९६. अनादिनिधना

माँ की आयु का पता ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी नहीं है। वररुचि के अनुसार माँ अपने भक्तों को मृत्यु के अस्सी कारणों से बचाती है।

२९७. हरिब्रह्मेन्द्रसेविता

भगवान विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र निष्ठापूर्वक उनकी पूजा करते हैं।

२९८. नारायणी

मनुष्य का विश्रामस्थल (नर+अयण) नारायण है। माँ नारायणी है। सृष्टि के पूर्व आकाश रूप में मात्र नाद था। फिर जल में महाविष्णु आये, वे जलमय होने से नारायण कहलाते है। जीवन के लिए जल परमावश्यक है।

नारायण स्वामी है। माँ उनकी संगिनी नारायणी हैं।

२९९. नादरूपा

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी रूप में वह नादात्मिका है। सृष्टिक्रम के आरम्भ में माँ नाद रूपा रहती है। जब कुण्डलिनी मूलाधार में जागती है तो सूक्ष्म नाद के रूप में वह चित्रिणी में प्रवेश करती है। वहाँ नाद की चार अवस्थायें रहती है (1) आरम्भावस्था (2) घटावस्था (3) परिचयावस्था (4) निष्पत्यावस्था, अन्तिम या चतुर्थ है वेधन या तुरीय। नाद के ऊपर उठते समय मानवीय स्वभाव सूक्ष्म होता जाता है। नाद में लय किये बिना मन वशीभूत नहीं होता। नाद ही कुण्डलिनी है। ब्रह्म की प्रथम अवस्था है। कुण्डलिनी जब नाद ब्रह्मत्व पाती है तब योगी भी परब्रह्मत्व पाता है।

३००. नामरूपविवर्जिता

कुण्डलिनी गुरुपादुकापद्म में पहुँचने पर निर्गुण भाव में आ जाती है तो नाम रूप से परे हो जाती है।

श्री देवी यहाँ नामरूप विवर्जिता कही जाती हैं। माँ के पाँच भाव हैं (1) नाम (2) रूप (3) अस्ति (4) भाति और (5) प्रियम।

प्रथम दो उनका प्रकृति भाव है। अपनी शद्धावस्था में वह नाम रूप से वर्जित रहती है।

तृतीय अध्याय समाप्त

♦

चतुर्थ अध्याय

३०१. ह्रींकारी

ह्रीं से श्री ललिता की तीन क्रियायें साबित होती है। वे हैं सृष्टि, स्थिति और लय। माँ स्वयं ह्रीं बीज हैं। माया बीज हैं। ह्रींकार के उच्चारण से योगियों के शरीर में ताप का भान होता है। इससे कुण्डलिनी जगती है। इससे गुरु, मंत्र, देवता और आत्मा का ऐक्य स्थापन होता है।

३०२. ह्रींमती

माँ योगियों की प्रार्थना पर प्रकट हो जाती है। ह्रींमती से लज्जावती का भी भाव हैं माँ विवेकमयी है।

३०३. हृद्या

माँ योगियों और ऋषियों के हृदय का आनन्द बनकर है।

३०४. हेयोपादेयवर्जिता

माँ किसी प्रकार के द्वन्द्व में नहीं रहती है। शांत भाव से सदा विराजती है। माँ के लिए स्वीकार और अस्वीकार का द्वन्द्व नहीं है।

३०५. राजराजार्चिता

वह त्रिमूर्ति, सिद्धों और कौलों द्वारा पूजी जाती है। कुबेर ने उनकी पूजा की। माँ मोक्ष देती है।

३०६. राज्ञी

महाकामेश्वर ने श्री देवी को रानी कहा है।

३०७. रम्या

राज्याभिषेक के समय माँ की रमणीयता अतीव सुन्दर थी। देवता मुग्ध थे।

३०८. राजीवलोचना

कमल जैसे माँ के नयन हैं।

३०९. अञ्जनी

शिव को प्रसन्न रखती है। अपनी लाली से श्वेत शिव को भी लाल कर देती है।

३१०. रमणी

भक्तों को रमण देती है। सभी लोकों में निर्भय होकर रमण करती है।

३११. रस्या

प्रज्ञा द्वारा रसानुभूति दिलाती है।

३१२. रणत्किङ्किणिमेखला

माँ छुद्र घंटियों वाली स्वर्णिम मेखला पहनती हैं

३१३. रमा

वह महालक्ष्मी है। कामकला भी है। लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती को भी रमा कहते हैं।

३१४. राकेन्दुवदना

श्री देवी में षोडश कलायें हैं जो चन्द्र में है। माँ का मुखमण्डल चन्द्र सा है।

३१५. रतिरूपा

मन्मय की संगिनी जैसी सुन्दरी है। ''श्री'' रतिरूपा हैं। राकेन्दु वदना बिदु है। रति उपरति ध्यान है।

३१६. रतिप्रिया

रति ने अपने स्वामी को माँ की संजीवनी औषधि से जीवित किया। रति माध्यम से ध्यान-क्रम बताया गया है।

३१७. रक्षाकरी

माँ विघ्नों का नाशकर भक्तों की रक्षा करती है।

३१८. राक्षसघ्नी

माँ दैत्यों का विनाश करती है।

३१९. रामा

सदा प्रसन्न रहने वाली है।

३२०. रमणलम्पटा

पंचकृत्यों का भार माँ पर। शिव शक्ति सामरस्य का भाव है।

३२१. काम्या

मोक्षकामी लोग उनकी कामना करते हैं।

३२२. कामकलारूपा

श्री देवी काम कलामयी है। माँ का प्रस्तार ''अ''से ''ह'' तक है। ''अ'' काम और ''ह'' कामकला है। 'अहं' का प्रस्तार कामकला रूप में है। माँ शिव की इच्छा शक्ति है। असीम क्षेत्र है।

३२३. कदम्बकुसुमप्रिया

माँ महापद्माटवी में कदम्ब के फूलों की सुगन्धि लेती रहती है। श्री चक्र के तीनों वृत्तों का गुप्त नाम कदम्ब कुसुम है। माँ को श्री चक्र से स्नेह है।

३२४. कल्याणी

मलयपर्वत की देवी कल्याणी है। माँ सबका भला करती है। श्री देवी कल्याणी कहलाती है।

३२५. जगतीकन्दा

वह संसार की जड़ है।

३२६. करुणारससागरा

करूणा दया है। नव रसों में एक है माँ की दया सागर जैसी व्यापिका है। वह भक्तों की कृपा सागरी है।

३२७. कलावती

वह सभी कलाओं का आधार है। चौंसठ कलाओं की मूर्त्ति है।

३२८. कलालापा

वह कलाओं की अभिव्यक्ति है।

३१९. कान्ता

उनका रूप परम कान्तिमय है।

३३०. कादम्बरीप्रिया

मुक्ति का मधु पसन्द करती है। माँ को कादम्बरी मधु प्रिय है। भोजन के पूर्व इसका सेवन करने से क्षुधा की वृद्धि तथा स्वास्थ्य का पोषण होता है। चावल एवं अन्य पदार्थों के सुरा द्वारा कादम्बरी मद्य बनाते हैं।

३३१. वरदा

त्रिमूर्ति को वरदान देती है। वरदा, विष्णु की एक कला है।

३३२. वामनयना

माँ की आँखें सुन्दर है। सुन्दर फल देती है। मद्य सेवन से भी माँ की आँखों पर उसका प्रभाव रहता है।

३३३. वारुणीमदविह्वला

वारुणी एक प्रकार का मद्य है। खजूर से निकलता है। वारुणी रस तेज होता है। माँ इसे पचा लेती है। योगीजन मन की गति संयम हेतु इसका सेवन करते हैं। वारुणी नामक एक नाड़ी भी है जिसके द्वारा साधक सहस्त्रार में पहुँचते हैं। वाह्य वृत्तियों से तब मन शून्य हो जाता है।

३३४. विश्वाधिका

माँ का यश सारे संसार में फैला है। श्रुति में ''विश्वाधिको रुद्रो महर्षि'' आया है।

३३५. वेदवेद्या

वेद में परब्रह्म का रहस्य छिपा है। श्री देवी उसकी चैतन्यमयी सत्ता है। वेद ही चिन्तामणि गृह के चार द्वार बनाते हैं। माँ चिन्तामणि गृह में रहती है। वेदों के द्वार से ही साधक वहाँ जा सकता है।

३३६. विन्ध्याचलनिवासिनी

माँ विन्ध्याचल में रहती है। उसकी चोटी अदृश्य है। माँ कृपा प्राप्त करने के हेतु शास्त्रों ने साधना के लिए कई कई गुप्त स्थान बताये हैं। एक स्थान विन्ध्याचल पर्वत भी है, जहाँ अकाश सदा तेजोमय रहता है। पिण्डाण्ड में दायां कान विन्ध्य पर्वत है। कुण्डलिनी शक्ति नादरूप में दायें कान में सुनाई पड़ती है। नाद स्वयं माँ ही है।

३३७. विधात्री

वेदों और विद्याओं की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी है। माँ ने ही सभी शास्त्र बनाने के लिए सरस्वती का रूप धारण कर लिया है। श्री देवी ने ही सभी शास्त्रों की प्रतिष्ठा की है।

३३८. वेदजननी

प्रलय काल में श्री देवी ने बीजों के रूप में सभी वेदों को सुरक्षित रखा है। उत्पत्ति काल में उन्हें मौलिक रूप में फिर रचा। इसी से माँ वेद जननी कही जाती है। 105 वर्णों की मातृकाओं से वेद बने हैं। माँ शब्द ब्रह्ममयी है। वेद उसके श्वास-प्रश्वास है।

३३९. विष्णुमाया

विष्णु की माया शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। जब कामेश्वर और कामश्वरी ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की सृष्टि की तो श्री देवी महाविष्णु के साथ प्रकट हुई। विष्णु को मायारूपी भी कहते हैं। श्री देवी उनकी बहन के रूप में माया शक्ति कहलायी। माँ विष्णु को भी अपनी माया में रख देती है। सृष्टि के चैतन्य की ओर प्रथम स्फुरण को अव्यक्त कहते हैं। श्री देवी को करुणा सागर और कोमल हृदया कहा है। माँ ने संसार पर शासन करने के लिए अष्टमूर्त्ति की रचना की जो कठिन हृदय है। अष्टमूर्त्तियों में एक विष्णु हैं और उनकी शक्ति (श्री देवी का माया रूप), विष्णु माया कहलाती है।

३४०. विलासनी

संसार उसका आनन्दमय स्वरूप है। माँ भक्तों के लिए आत्म अनुभूति का द्वार खोलती और बन्द करती हुई विलास करती है। विलास एक प्रकार की मोदमयी क्रीड़ा है। निर्वाण चक्र नामक एक मोटी झिल्ली से ब्रह्मारंध्र के ऊपरी भाग का प्रवेश द्वार सदा बन्द रहता है। हीरे के तेज नोक से भी वह द्वार शीघ्र नहीं खुलती है। माँ वहाँ विलासिनी रूप में आसीन है। श्री देवी भक्तों की सगुण साधना में मूलाधार से स्वाधिष्ठान होकर आज्ञा और गुरुमण्डल तक जाने में रक्षा करती है। गुरुमण्डल से कुण्डलिनी निर्गुण और सगुण भाव में झूमती रहती है। निर्गुण में साधक प्रवेश करता है तो कितनी आपदायें आ घेरती है और उन पर नियंत्रण रखना कठिन हो जाता है। अतः साधक श्री देवी तक पहुँचने में बड़ा विघ्न पाता है। निर्वाण चक्र नामक इस

स्थान पर सैकड़ों रुद्र, और ब्रह्मा और ब्राह्मी शक्तियों पर विजय पाना पड़ता है। ब्रह्मरंध्र के निकट सैकड़ो पतली तहें रहती है। रस्सी की तरह द्वार को घेरे रहती है। वे ही शक्तियाँ हैं।

प्राण शक्ति या हंस की तीव्र भावना से योगी इन तहों को पिघला देते हैं और निर्वाण चक्र में प्रवेश पाते हैं। श्री देवी अपने श्री चरणों से शीघ्र ही हंस या उर्ध्वरेता बिन्दु इस भांति पतित होता रहता है, माँ सिद्धावस्था नहीं देती। जब तक साधक विलासिनी स्थान को पार नहीं कर लेता है तब तक वह माया को जीत नहीं सकता है। जो साधक मायातीत हो जाता है, उसे इस स्थान के बिन्दु पर नियंत्रण हो जाता है और वह साधक परापर गुरु हो जाता है। बहुत से योगी औषधि सेवन द्वारा इस बिन्दु पर विजय पाते हैं।

३४१. क्षेत्रस्वरूपा

स्थूल भाग में चैतन्य का देश कालमय समावेश रहता है। माँ इसी से क्षेत्र स्वरूपा कहलाती है।

३४२. क्षेत्रेशी

माँ उस क्षेत्र की ईश्वरी है।

३४३. क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिनी

श्री देवी की सुरक्षा में एकमात्र योगीजन ही उस क्षेत्र में पहुँचते हैं।

३४४. क्षयवृद्धिविनिर्मुक्ता

माँ क्षय और वृद्धि से मुक्त है। ह्रास और विकास नहीं होता है।

३४५. क्षेत्रपालसमर्चिता

भैरव रूप में शिव क्षेत्रपाल हैं। वे माँ की पूजा करते हैं। क्षेत्रपाल जीव माँ की पूजा करते हैं। क्षेत्रपाल जीव को भी कहते हैं।

३४६. विजया

सभी कामों में सफलता देती है। विजय देती है। देवी पुराण के अनुसार वह कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी है। योगी की अभेद भावना विजयिनी है।

३४७. विमला

वह मलरहित निर्मल और स्वच्छ है। माँ विशुद्ध चैतन्यरूपा हैं।

३४८. वन्द्या

सभी देवता और मानव उसकी वन्दना करते हैं। माँ की भाँति सिद्ध योगी भी वन्दनीय है।

३४९. वन्दारुजनवत्सला

अपने बच्चों की तरह भक्तों को प्यार करती हैं।

३५०. वाग्वादिनी

माँ वाक् शक्ति हैं। माँ शब्द के भीतर की छिपी शक्ति है। श्री देवी वशिन्यादिधाक् देवता की मूर्त्ति हैं, अत: वह वाक् वादिनी हैं।

३५१. वामकेशी

श्री देवी के घुंघराले काले केश हैं। वामकेश्वर सदाशिव हैं और अष्टमूर्त्तियों में एक हैं।

३५२. वह्निमण्डलवासिनी

माँ अग्निमण्डल में रहती है। अग्नि भौतिक शक्तियों का प्रतिनिधि है। वह्निमण्डल विमर्श को कहते हैं। यहाँ नाद का स्वरूप रहता है। नारायण का भी भान है।

३५३. भक्तिमत्कल्पलतिका

कल्पना से मनोवांछित फल मिलता है। माँ भक्तों के लिए कल्पलता है। भक्ति, साम या सामवेद का अंग है। कल्पलतिका साम का भेद है। अग्निमण्डल में अपने स्थान को सुदृढ़ करेन वाली भक्ति रखने वाले योगियों को माँ वरदान देती है। उनकी इच्छा की पूर्ति करती है।

३५४. पशुपाशविमोचिनी

बन्धन ग्रस्त लोगों के बन्धन काटती है। वे बन्धन हैं (1) अविद्या, (2) मोह (3) वासना (4) भ्रम। ये अष्टपाश के अंग हैं। पाश काटकर माँ पशुता से मुक्त करती है। शिव को पशुपति कहते हैं। इसमें विश्वास रखने से माँ पाश हटा देती है। शिव भक्ति से सब पाश काटते हैं। ललिता ही शिव के संग रहकर भक्तों की अविद्या का नाश करती है। माँ के चरणों में आत्मसमर्पण होने से माँ अज्ञान का नाश करती हैं।

३५५. संहृताशेषपाखण्डा

पाखण्डी लोगों का संहार करती है। माँ शास्त्रों में विश्वास दिलाती है। नास्तिक में भी माँ वेद भक्ति दिलाती है।

दर्शनेषु समस्तेषु पाखण्डेषु विशेषित:
दिव्यरूपा महादेवी सर्वत्र परमेश्वरी

पाखण्ड वेद शास्त्रों में अविश्वास है। पाखण्डी लोगों की भी एक विशेष प्रकार की पूजा होती है। बाहर से वे भौतिकवादी रहते हैं और भीतर से शिव शक्ति सामरस्य या जीवात्मा का ऐक्य स्थापित करते हैं। संवित् मुद्रा का वे सहारा लेते हैं।

''मुदं द्रावयति इति मुद्रा''

कुल पार्वती और अकुल शिव के ऐक्य भाव को कौल योगी कला ध्यान से पाते हैं। वे मपंचक से काम लेते हैं।

मद अहंकार मद्य है।
मति मानस चर्वण है।
माया भ्रम मीन है।
ममता आसक्ति मांस है।
मूर्च्छना आनन्द मैथुन है।

यह गृहस्थों की वस्तु है।

३५६. सदाचारप्रवर्तिका

माँ अच्छा आचरण बताती है। शास्त्रों के द्वारा आचरण बताती है।

३५७. तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्द्रिका

श्री देवी के उपासक शरीर, मन और क्षुधा के ताप से मुक्त हो जायेंगे। त्रिपास से, दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से, छुटकारा देती है। माँ की शीतल किरणें चन्द्रिका की शीतलता बिखेरती हैं। माँ की स्नेहमयी किरणें हैं।

३५८. तरुणी

आनन्द की मूर्त्ति माँ सदा तरुणी ही रहती है।

३५९. तापसाराध्या

ऋषि और संतों की भक्ति से माँ प्रसन्न होती है। तपस्यारत ध्यानियों से वह पूजी जाती है।

३६०. तनुमध्या

वह शरीर का मध्यम है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में मध्यम यानि वह पंचदशाक्षरी हैं। पंचदशी ही तनुमध्या है। पतली कमर वाली इस देवी की आराधना कांचीपुरी की निभा नदी के किनारे अधिष्ठात्री देवी के रूप में होती है।

३६१. तमोपहा

माँ अविद्या का अन्धकार हटाती है। माँ सत्य के आवरण को दूर करती है।

३६२. चिति

सब में बुद्धि बनकर रहती है। माँ चित्कला है। माँ कामकला प्रकाश है।

३६३. तत्पदलक्ष्यार्था

भीतर साक्षी, बाहर परमात्मा, सगुण में, निर्गुण में, शिव और शक्ति में, वह उपस्थित रहती है और ''तत्त्वमसि'' के तत् का लक्ष्यार्थ माँ बताती हैं। माँ अखण्ड बोधवालों को महावाक्य जान पड़ती हैं।

३६४. चिदेकरसरुपिणी

निर्गुण से एकाकार रहने वाली। चित् ज्ञान की नहीं बल्कि अनुभूति की वस्तु है। सच्चिदानन्दमयी है। अनुभव की वस्तु है।

३६५. स्वात्मानन्दलवी भूत ब्रह्माद्यानन्दसंतति

ब्रह्मानन्द से सागर के जल बन्दु पर्यन्त माँ सदा आनन्द रूप में रहती है। माँ का आनन्द असीम है। आनन्द तो सच्चिदानन्द का स्वरूप है। हजारों प्रजापति का आनन्द मिलकर माँ का एक आनन्दमय रूप रहता है।

३६६. परा

श्री देवी स्वयं परा स्वरूपा है। अखण्ड परब्रह्म से निजशक्ति प्रकट हुई, निजशक्ति से परा शक्ति निकली। चन्द्रमण्डल के त्रिकोण का बिन्दु परा

है। सदा शिव की कलाओं में एक परा हैं।

३६७. प्रत्यक्चितीरूपा

पराशक्ति ब्रह्मा का प्रतिनिधित्व करती है। साक्षीभाव से सब जीवों में वह विद्यमान रहती है।

३६८. पश्यन्ती

माँ वाग्देवी शब्दब्रह्म का सूक्ष्म रूप है। पश्यन्ती रूप में वह रहती है। चन्द्रमण्डल में श्री देवी निर्वाण कला के रूप में चमकती है। चन्द्रमण्डल में त्रिकोण है। इस त्रिकोण पर पाँच स्थान है। यह नाम भी उनमें एक है। श्री चक्र में वह बिन्दु या प्रथम वृत्त के त्रिकोण का प्रतीक है। सृष्टिकारिणी इच्छा शक्ति का भाव इसमें अन्तर्हित है।

३६९. परदेवता

परदेवता रूप में श्री देवी का प्रथम स्थान है। इसे अमा कला कहते हैं। यह ध्यानगम्या माँ हैं।

३७०. मध्यमा

अग्निमण्डल में माँ तृतीय भाव में है। यह सूक्ष्मनादरूप है। सहस्रार के ये चार वाक् मूलाधार के परा पश्यन्ती से सर्वथा स्वतंत्र हैं।

३७१. बैखरीरूपा

वाक् का खर या उच्चारण है। चन्द्रमण्डल के त्रिकोण के पाँच स्थानों पर विजय पाना कठिन है। पूर्ण साधना करने वाले योगियों की ही अन्तर्दृष्टि से यह संभव है।

३७२. भक्तमानसहंसिका

माँ भक्तों के मानस की हंसिनी है। त्रिकोण का वह चतुर्थ स्थान परविन्दु या निर्वाणशक्ति है। जीव यहाँ हंस माना जाता है। यह परविन्दु मानसरोवर कहा गया है। माँ यहाँ हंसिनी रूप में भक्तों को आनन्द देती है।

३७३. कामेश्वरप्राणनाड़ी

माँ कामेश्वर शिव की प्राणनाड़ी है। उनके बिना शिव मात्र शव रहते हैं।

३७४. कृतज्ञा

सृष्टिकला में माँ के हाथों पाँचों कार्य सौंप कर शिव समाधि में मग्न हो गये। माँ ने सभी कार्य किये। शिव ने कृतज्ञताज्ञापन किया। सूर्य, चन्द्र, मृत्यु, काल, पंचभूत सभी पदार्थों की माँ साक्षिणी रहती है। वे सभी कृत हैं, यश हैं, विराट् हैं, ब्रह्मज्ञान के अंश हैं। माँ इसी से कृतज्ञा हैं।

३७५. कामपूजिता

कामदेव और कामेश्वर शिव ने भी पूजा की। कामगिरिपाठ में माँ की पूजा होती है जैसा अरुणोपनिषद् में भी संकेत आया है।

३७६. शृङ्गाररससम्पूर्णा

श्री देवी ने शिव को शृङ्गार से प्रसन्न कर दिया।

शृङ्ग त्रिकोण है।

अर कमल दल है।

रस भव है।

अर्थ है माँ श्री चक्रमयी है।

३७७. जया

विजय है। बाधाओं पर वह विजय पाती है। वराह पर्वत की देवी जया है। शिव का प्रेम पाने के कारण वह जया है।

३७८. जालन्धरस्थिता

वह अनाहत चक्र के जालंधर पीठ पर रहती है। सब कुछ भुला देने वाली जालंधर मुद्रा में माँ बैठती है। रतिकार्य से थकित नारी के बैठने की मुद्रा जालंधर मुद्रा है। पुरुषों के इस भाव को क्षणिक ब्रह्मानन्द कहते हैं। योगी शारीरिक आनन्द को त्याग कर नित्यानन्द का साधन करते हैं।

३७९. ओडयाणपीठनिलया

माँ विलास पूर्वक ओड्यान पीठ में कदम्ब वन में समय बिताती है। श्री चक्र का नवस् भाव विन्दु है। सर्वानन्दमय चक्र है। यहाँ माँ मणिमाणिक्य से लदी हुई मुस्कुराती हुई बैठी है। वह सुगन्धित फूलों से सजे शिव के वायें जंघे पर स्वस्तिकासन मुद्रा में सिद्धासन में बैठी रहती है। साधक भ्रूमध्य ध्यान में ओड्यान पीठ में माँ को देखते हैं।

३८०. विन्दुमण्डलवासिनी

सहस्रार के चन्द्रण्डल के त्रिकोण का पंचम स्थान विन्दु मण्डल है। कामेश्वर शिव के संग वह आनन्द का उपभोग करती है। ब्रह्मरंध्र के पार का स्थान है।

३८१. रहोयागक्रमाराध्या

गुप्त पूजा को रहोयाग कहते हैं। श्री देवी के दूतीक्रम सम्प्रदाय में रहोयाग का वर्णन है। लय योग का अभ्यास करनेवाले महान् योगी लता साधना द्वारा कुण्डलिनी को परम शिव से मिलाते हैं। श्री देवी इस उपासना से बहुत आनन्दित होती है। इस साधना में सावधानी का बड़ा महत्त्व है। दूसरे प्रकार की रहोयाग साधना स्थूल सुन्दरी मूर्त्ति के साथ की जाती है। इसे दूतीयाग कहते हैं। इसमें मन और शरीर पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाले ही सक्षम सिद्ध हो सकते हैं। ऐसा नहीं होने से व्यक्ति पागल हो जाता है। सौन्दर्य लहरी के नवम् श्लोक में इसकी चर्चा है। भावनोपनिषद् का अन्तर्याग भी इसका प्रतीक है। गुरुदेव निम्न प्रकार की शिक्षा देते हैं

वह ऐसी एकता स्थापित करें:

(1) श्री चक्र और तीनों शरीर में, साधक के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में।

(2) सहस्रारचक्र के चन्द्रमण्डल और श्री चक्र के सर्वानन्दमय बिन्दु में।

(3) विश्व शक्ति एवं व्यक्तिगत शक्ति में, प्रकाश और विमर्श में।

इस अनुभूति के बाद साधक अखण्ड चिन्मय महासागर में गोता लगाता है।

३८२. रहस्तर्पणतर्पिता

माँ गुप्त पूजा या अर्पण से प्रसन्न होती है। श्री ललिता की संविदाग्नि में गुप्त रूपसे सर्वार्पण करने पर माँ मुदित रहती है। विन्दु मण्डल में दिव्य मिलन के फलस्वरूप अमाकला रूपी अमृत विन्दु से बरसने लगता है। चित्रिणी के द्वारा वह शरीर की सभी नाड़ियों से संचरित होता है। दीर्घकाल के योगाभ्यास से शिथिल नाड़ियों में नवजीवन आ जाता है। ब्रह्माण्ड की भाँति सभी देवता पिण्डाण्ड में भी रहते हैं। सूक्ष्म रूप से उनका वास रहता है। योगी

जब उन्हें अमृत अर्पण करते हैं, आहुति देते हैं तो वे देवता पूर्ण प्रसन्न ही जाते हैं। योगियों द्वारा अमाकला की आहुति से माँ परम प्रसन्न हो जाती है।

३८३. सद्यःप्रसादिनी

भक्त को दिव्य दृष्टि की प्राप्ति माँ का कृपा का अर्थ है। यह आत्म ज्ञान है, आत्म दर्शन है और मुक्ति का साधन है।

३८४. विश्वसाक्षिणी

वह निरपेक्ष भाव से ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड की गतिविधि को देखती रहती है। महाकामेश्वरी रहोयाग के महामिलन की साक्षिणी रहती है।

३८५. साक्षिवर्जिता

माँ स्वयं विश्वसाक्षिणी है अतः उसे अन्य साक्षी की आवश्यकता नहीं है। सद्यः प्रसाद से जीव जीवनमुक्त हो जाता है और विश्व का शांत, तटस्थ साक्षी रहता है। भक्त की यह तूरियावस्था है। इसके परे माँ तूरियातीता भाव में रहती है जहाँ एकाकीपन है उसका। अतः कोई साक्षी नहीं है।

२८६. षडङ्गदेवतायुक्ता

माँ की छः अंग देवियाँ हैं। श्री चक्र का नवम् भाग विन्दु है। शिवशक्ति का स्थान है। हृदय देवी, शिरोदेवी, शिखा देवी, नेत्रदेवी, वक्त्र देवी और अस्त्र देवी से वह घिरी है। अन्य छः देवियाँ भी षडङ्ग देवियाँ हैं। वे हैं सर्वज्ञा शक्ति, नित्यतृप्ति, अनादि भूतशक्ति, सर्व स्वतन्त्राशक्ति, नित्यम्लुप्तशक्ति और अनन्त शक्ति। पर ये श्री देवी के षडङ्ग नहीं हैं। इन छः बीजों को भी षडङ्गदेवता कहते हैं

ह्रां, ह्रीं, ह्रू, ह्रैं, ह्रों और ह्रौं

किसी भी देवता या मन्त्र के छः भाग या अंग होते हैं। वे हैं हृदय, शीर्ष, शिखा, नेत्र, कवच और अस्त्र।

३८७. षाड्गुण्यपरिपूरिता

माँ छः सद्गुणों से भरी है। पुराणों में षड्ऐश्वर्य यश, दृष्टि, धन, बुद्धि, अकाम और धर्म माने गये हैं। षड्कोण यन्त्र से भी भाव है।

३८८. नित्याक्लिन्ना

माँ का हृदय करुणा से सदा द्रवित रहता है। 16 नित्याओं में तीसरा स्थान है। नित्यक्लिन्ना सभी सृष्टियों को नियंत्रित रखती है। श्री चक्र के अष्टम

भाग त्रिकोण को पन्द्रह कलायें (16) घेरे रहती है। नित्यक्लिन्ना तीसरी है।

३८९. निरूपमा

माँ को उपमा के योग्य के कोई नहीं है। वह अपना उदाहरण स्वयं है।

३९०. निर्वाणसुखदायिनी

माँ सिद्धों को निर्वाण का आनन्द देती है।

३९१. नित्याषोडशिकारूपा

15 कलाओं का योग या प्रकाश षोडशी कला के रूप में भासमान होता है। इसे महानित्या कहते हैं। इसमें श्री देवी विन्दु रूप में विश्राम करती है। श्री कामेश्वरी से लेकर त्रिपुर सुन्दरी तक षोडश नित्यायें हैं। वह स्वयं महानित्या ही है।

३९२. श्रीकण्ठार्धशरीरिणी

अष्टमूर्त्तियों में श्री कण्ठ के साथ श्री देवी एक हैं। प्रथम परमेश्वर हैं।

३९३. प्रभावती

सूर्य और चन्द्र को माँ आलोक देती हैं। श्री चक्र के आवरण देवता के रूप में माँ की किरणें हैं।

३९४. प्रभारूपा

सभी जड़-चेतनों में माँ प्रभा रूप में हैं।

३९५. प्रसिद्धा

सबों में 'अहं' भाव से प्रसिद्धा है। सबों को माँ प्यार देती हैं। इसी से उसका इतना यश है।

३९६. परमेश्वरी

अष्टमूर्त्तियों में परमेश्वर प्रथम हैं। यह उनकी शक्ति है। श्री देवी ही हैं।

३९७. मूलप्रकृती

वह शिव की आदिशक्ति या माहामाया है। सृष्टि के आधार को मूल प्रकृति कहते हैं।

३९८. अव्यक्ता

वह परब्रह्म की अदृश्य अवस्था है। 'अहं' की बीजस्थिति है।

३९९. व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी

सगुण, निर्गुण, अदृष्ट, नामरूप में और परे भी है।

४००. व्यापिनी

श्री देवी की शक्ति सभी जड़ चेतन में व्याप्त है। सदाशिव की कलाओं में व्यापिनी एक है। वह सर्वव्यापिका है। वह आत्म शब्द की एक जड़ है।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

♦

पञ्चम अध्याय

४०१. विविधारा

माँ ने विभिन्न प्रकृति वाले अनेको संसार की सृष्टि की है। उसने जड़-चेतन और नाम-रूप की सृष्टि की है। पुराणों में तो कहा है कि पर्वतों वृक्षों की भी अपनी वाणियाँ हैं।

४०२. विद्याविद्यास्वरूपिणी

माँ स्वयं ज्ञान और अज्ञान होकर हैं। प्रकाशमय अमृत चैतन्य विद्या का द्योतक है। स्वरूपिणी से आत्मज्ञान का तात्पर्य है। अविद्या जीव को बन्धन देती है और विद्या मुक्ति देती है।

४०३. महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुदी

कुमुद को जो प्रसन्नता चन्द्रकिरण से होती है वही प्रसन्नता माँ को देखकर महाकामेश को होता है। शिव, माँ की दृष्टि का पूर्ण आनन्द लेते हैं। महाकामेश से ब्रह्मज्ञानी का भाव है। वह कैवल्य का आनन्द देती है। श्री महाकामेश सदा समाधि में रहते हैं। माँ जब पास में पहुँचती है तो उनके प्रकाश से शिव की आँखें खुल जाती है।

४०४. भक्ताहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्तती

भक्तों के हृदय के अज्ञान तिमिर को माँ सूर्य किरण सी दूर करती है।

४०५. शिवदूती

अष्टकुण्डलिनियों में शिवदूती एक है। गुरु कृपा से दूतीयाग का रहस्य मिलता है। श्री देवी अपने शिव का दूती बनती है। अज्ञान तिमिर को दूर कर माँ अखण्ड की झलक देती है। चिन्मय स्वरूप के सुधासिन्धु में भक्त अव्याहत आनन्दमय गोते लगाते हैं। शिव भक्ति से ही माँ के चरण मिलते हैं। षोडश नित्याओं में शिवदूती एक है। पुष्कर तीर्थ की वह अधिष्ठात्री देवी है। एक विद्या या मंत्र 'शिवदूती' है।

४०६. शिवाराध्या

शिव उनकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न कर लेते हैं। शिव ने माँ की पूजा

पञ्चदशी विद्या से की है।

४०७. शिवमूर्त्ति

समयामाता सदाशिव की मूर्त्ति है। माँ मोक्ष स्वरूपा है। शिव अष्टमूर्त्तियों में प्रथम हैं। माँ उनकी शक्ति है, इसी से शिवमूर्त्ति कहलाती है।

४०८. शिवंकरी

शिव महाकल्याणकारी है। माँ भी वही हैं।

४०९. शिवप्रिया

सभी वेद प्रेमपूर्वक माँ की श्रद्धा करते हैं।

४१०. शिवपरा

शिव से परे हैं क्योंकि शिव उनके आश्रित हैं। माँ परब्रह्म स्वरूपिणी हैं। जल में जैसे चीनी अदृश्य रहता है वैसी ही माँ में वेद अदृश्य रूप से पड़े हैं।

४११. शिष्टेष्टा

वह शिष्ट लोगों की इष्ट देवी है। शास्त्रोक्त विधि से पूजा करने वाले शिष्ट हैं। निर्गुण ब्रह्म के साधकों के लिए माँ यज्ञस्वरूपिणी हैं।

४१२. शिष्टपूजिता

वैदिक मार्ग के अनुशीलन करने वालों द्वारा वह पूजिता है।

४१३. अप्रमेया

उसे शीर्घ नहीं जान सकते। उसका मापदण्ड नहीं है। उसे शिष्ट या योगी भी जल्द नहीं जान पाते हैं।

४१४. स्वप्रकाशा

अपने प्रकाश या ज्ञान से ही वह चमकती है। वह इन्द्रियों को ज्योति देती है। वह स्वयं ज्योति है।

४१५. मनोवाचामगोचरा

वह मन और वाणी से परे है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है।

४१६. चिच्छक्ती

माँ अज्ञान दूर करने वाली संवित् स्वरूपिणी है।

४१७. चेतनारूपा

माँ जीवन ज्योति बनकर सबों में रहती है। चेतनामयी माँ की सोलहवीं कला है।

४१८. जडशक्ति

वह देश, काल और ताप जैसी जड़ शक्ति है।

४१९. जडात्मिका

जड़ जगत माँ को नहीं समझ सकता है। माँ उसका भी स्वरूप है।

४२०. गायत्री

माँ गायकों की रक्षा करने वाली है। त्रिपादात्मिका गायत्री ही वेद माता है। इसके द्वारा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष मिलते है। माँ के गुणगान करनेवालों को वरदान देती है। गायत्री भूमि भी है, इसी से माँ पृथ्वीरूपिणी है।

४२१. व्याहृति

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं ये सातों मंच या वर्ण भी माँ हैं। ॐ से युक्त होकर इन सातों का उच्चारण होता है। ये चेतना के विभिन्न स्तर हैं। ये गायत्री की भूमिका हैं।

४२२. संध्या

शिव शक्ति की मिलन वेला है। दिवा रात्रि में संगम काल में गायत्री की उपासना करते हैं। श्री देवी ही संध्या कहलाती है। मनोमय कोश को भी संध्या कहते हैं जो पाँच कोशों के मध्य में है। ज्ञाता और ज्ञेय के बीच का क्षण संध्या है। सर्वसाक्षिणी ही संध्या है। तूरीयापाद का 'परो रजसे सावदोम' संध्या है।

४२३. द्विजवृन्दनिषेविता

ब्राह्मण उसे पूजते हैं। जन्म रहस्य देखेंगे। भौतिक शरीर से पृथक होने पर जीव धूम वर्ण में चन्द्रमण्डल में प्रवेश करता है। वहाँ वह पाप और पुण्य का फल पाता है। शेष कर्मों के द्वारा वर्षा के सहारे पौधों में आता है। धान, चावल के माध्यम से अन्न में आता है। वहाँ से शरीर में आकर वीर्य का रूप धारण करता है। तीन महीनों में पुरुष भाव में विकसित होता है। फिर यौन सम्मेलन में स्त्री के शरीर में प्रवेश करता है। (छान्दोग्य उपनिषद् की पञ्चाग्नि

विद्या द्रष्टव्य है।) अतः जीव शक्ति ने वीर्य कीट और रज तत्त्व का रूप धारण स्त्री में किया। सभी जीव ऐसे ही बनते हैं। द्विज से दो जन्मों का संकेत हैं। एक पाञ्च भौतिक शरीर का और दूसरा आध्यात्मिक जीवन का है। अतः द्विज शब्द सभी वर्णों में भी उपयुक्त हो सकता है। वृन्द समूह का द्योतक है। गायत्री कल्प में है

''गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तेन कथ्यते''

''माँ अपने गुण गाने वालों की रक्षा करती है इसी से वह गायत्री कही जाती है।''

४२४. तत्वासना

गायत्री का, वेद माता रूप में तीन प्रकार है

(१) **स्थूल रूप** व्याहृति है

(२) **सूक्ष्म रूप** संध्या है

(३) **कारणरूप** तत्त्वासन।

गायत्री ही 36 या 96 तत्त्वों का प्रतिनिधि है। यज्ञोपवित में इसका रहस्य है।

४२५. तत्त्वमयी

यह नाम तीनों भागों में विभक्त है। तत्+त्वं+अयी।

तत् से सबों में स्थित परमात्मा का भाव है।

४२६. त्वं

त्वं तुम श्री देवी ही सगुण रूप हैं, अखण्ड परब्रह्म।

४२७. अयी

योगी और अद्वैतवादी श्री देवी से अपने को अभिन्न जानते हैं। माँ को अयी कहकर पुकारते हैं।

४२८. पञ्चकोशान्तरस्थिता

पञ्चकोश में वास है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश हैं। अन्तर से गुहा का संकेत है। माँ पाचों कोशों में आसक्त और अनासक्त भाव में रहती है। उपनिषदों के आधार पर विकाश का भाव है। भगवान से माया अभिन्न है। माँ ने मायामय भौतिक रूप ग्रहण किया। वह

सगुण शक्ति बनी। यह माया शक्ति या निज शक्ति ही सगुण शक्ति के दो भागों में विभक्त हो गई धर्म और धर्मी।

(1) सगुण में निर्गुण धर्म बना और सगुण में सगुण धर्मी बना।

(2) फिर निज शक्ति ने परा शक्ति के रूप में अपने को प्रकट किया।

(3) पराशक्ति को अपरा शक्ति का सृजन किया।

(4) अपराशक्ति ने सूक्ष्म शक्ति का सृजन किया।

(5) अन्त में सूक्ष्म शक्ति ने महाकुण्डलिनी शक्ति का सृजन किया।

इन पाँचों में पाँच सूक्ष्म शक्तियों के योग से महामाया ने मानव देह की रचना की और पचीस तत्त्वों से इसे युक्त किया। इसी महामाया शक्ति से रक्त-मांस वाला मानव शरीर रचा गया। माँ ने नारी, स्नायु तन्तुओं का जाल बनाया जो प्राणवायु को सम्यक चाप में रखे, तथा ग्यारह द्वार भी बनाये। फिर इस शक्ति ने भौतिक शरीर के भीतर भी एक प्रणाली की रचना की। पौष्टिक भोजन और पेय से वीर्य बना। फिर यौन भावना जगी और शुक्ल और रज का मिश्रण हुआ जिससे नये शरीर की रचना हुई उसी प्रकार की।

अतः शिव और शक्ति का रहस्यमय मिलन तत्त्वों के आवरण में हुआ। परमात्मा का लघुरूप जीवात्मा है। वह जीवात्मा शरीर में प्रवेश करे उसकी योजना माँ ने रची।

माया शक्ति ने मानव सृष्टि के लिए इतने उपाय रचे। शुक्ल और रक्तविन्दु के मिलन से मिश्र विन्दु बना। फिर मातृगर्भ में शिशु विकसित होने लगा। माया समष्टि का ही तो लघुरूप व्यक्ति रचा गया। अतः पिण्ड शरीर ही क्षुद्र ब्रह्माण्ड या पिण्डाण्ड है।

योग प्रणाली में इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से करते है। इस भौतिक शरीर में नवचक्र हैं, षोडश आधार हैं, सात निम्न लोक हैं, तीन भूः भूवः स्वः संसार है, अष्ट दिक्पाल हैं (दश भी मानते हैं), 14 भुवन हैं, सप्त समुद्र हैं, सप्त द्वीप हैं, नौ खण्ड हैं, 8 कुल पर्वत हैं, नव नाड़ी हैं (नदी) 27 नक्षत्र हैं, 12 राशि हैं, नव ग्रह हैं, 15 तिथि हैं, अगणित तारे हैं, तैंतीस कोटि देवता हैं, अगणित देवयोनि संभूत हैं, नाग हैं, सनकादि ऋषि हैं, सभी शक्ति मान देवता हैं, सभी सिद्ध हैं, नव मेघ हैं और सूर्य तथा चन्द्र हैं, जिस तरह बीज

में विशाल वृक्ष छिपा रहता है वैसे ही शिशु के शरीर में सब भरे पड़े हैं। भगवान कृष्ण का विश्वरूप दर्शन इन्हीं तत्वों का पौराणिक प्रमाण हैं। पिण्डाण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन उन्होंने कराया। यह भौतिक शरीर अन्न के द्वारा ही रक्षित है। यह प्रकट होता है, बढ़ता है, क्षीण होता है, वृद्ध होता है तथा अन्त में मर जाता है। इसी से इसको अन्नमय कोश कहते हैं। प्राणमय कोश पाँच कर्मेन्द्रियों से बना है वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ। इनमें पञ्च प्राण रहते हैं प्राण, अपान, ध्यान, उदान और समान। प्राणमय कोश अन्नमय कोश के भीतर है। मनोमयकोश प्राणमय कोश के भीतर है। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय हैं त्वक्, कान, आँख, जीभ, नाक। विज्ञानमय कोश मनोमय कोश के भीतर है। जब बुद्धि पाँच ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होती हैं तो इसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। आनन्दमय कोश विज्ञानमय कोश के भीतर है। पाँच कृत्य, काम, अभाव, क्रीड़ा तथा अन्तःकरण चतुष्टय, मन बुद्धि, अहंकार और चित्त ही उस आनन्दमय कोश के उपादान हैं।

४२९. निःसीममहिमा

माँ की महानता की सीमा नहीं है। इसी से इसकी प्रशंसा है।

४३०. नित्ययौवना

वह सदा युवती ही रहती है।

४३१. मदशालिनी

बुद्धि, धन, जाति, भोजन, वैभव, विषयानन्द, अहंकार, तुष्टि, साहस, कार्य और आनन्द से सदा उल्लसित रहती है। ये सभी मानवों में मद की सृष्टि करती है। माँ की मस्ती निराली है।

४३२. मदघूर्णितरक्ताक्षी

आध्यात्मिक आनन्द से लाल आँखें घूमती रहती हैं। माँ मधुपान कर अपनी आखों से सब कुछ देखती रहती है।

४३३. मदपाटलगण्डभूः

आनन्द से उसके गाल लाल रहते हैं। लगता है कस्तूरी मिश्रित गुलाब से गाल रंगे हों।

४३४. चन्दनद्रवदिग्धाङ्गी

माँ के अंगों में चन्दन का लेप है। श्रीखण्ड का वास है।

४३५. चाम्पेयकुसुमप्रिया

माँ चम्पा फूल पसन्द करती है। उसका स्वरूप चम्पा जैसा स्वर्णिम है। उसके पाँच दल शिव के पंचमुख का रूप या गायत्री के पाँच मुख का रूप है।

४३६. कुशला

वह समस्त संसार पर शासन करने में कुशल है।

४३७. कोमलाकारा

माँ का शरीर अति कोमल है। यद्यपि वह संसार पर शासन करती है फिर भी हृदय की कोमलता ज्यों की त्यों बनी रहती है।

४३८. कुरूकुल्ला

यह विमर्शमय सर की अधिष्ठात्री देवी है। श्री चक्र की एक देवी है। वाह्य पदार्थों में, जो सत्य दृष्टिगत होती है वह इसी के द्वारा होती है। अतःकरण चतुष्टय के चारों अंगों यथा मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त पर नियंत्रण कुरूकुल्ला देवी रखती है। इस रूप में रहकर देवी भक्तों को गल्ती करने से रोकती है।

४३९. कुलेश्वरी

वह कुल तांत्रिक साधनों या पूजाओं में कुलशास्त्र की श्वामिनी है। कुण्डलिनी शक्ति को भी कुलेश्वरी कहते हैं। कुल पर्वतों में भी घूमने वाली वही है। कल्याणानन्द भारती स्वामी के मत से ये तीनों नाम सुषुम्ना के ही है।

४४०. कुलकुण्डालया

कुल कुण्ड ब्रह्म ही है या ब्रह्म में ही है। मूलाधार को भी कुलकुण्ड कहते हैं। वहीं से कुण्डलिनी ऊपर चढ़ती है।

४४१. कौलमार्ग तत्पर सेविता

कुण्डलिनी साधना को कौल मार्ग कहते हैं। कुण्डलिनी ही श्री देवी हैं। महाकुण्डलिनी ब्रह्माण्ड नायिका श्री देवी हैं। और कुण्डलिनी पिण्डाण्ड नायिका हैं। यहाँ वाम मार्ग या कौलमार्ग से श्री ललिता की साधना का उल्लेख है।

४४२. कुमारगणनाथाम्बा

कुमार भगवान कार्त्तिकेय हैं। ये चेतना को दिव्य करते हैं। गणेश जी

विघ्न–बाधाओं का नाश करते हैं। मूलाधार ही सुषुम्ना नाड़ी का प्रवेश द्वार है। मूलाधार से चलकर षट्चक्रों के ऊपर विवर स्थान है। यहाँ सुषुम्ना, इड़ा और पिगला का मिलन होता है। भगवान कार्त्तिकेय यहाँ रक्षा करते हैं। योगाभ्यास में ये दो स्थान महत्त्व के हैं। मूलाधार से विवर स्थान तक सगुण अवस्था है। विवर के परे निर्गुण अवस्था है। साधना प्रारम्भ में योगी मूलाधार में गणेश का आर्शीवाद प्राप्त करते हैं, जो इनके विघ्नों को दूर करते हैं। वहाँ विवर पर पहुँचने पर भगवान कार्त्तिकेय से वर लेकर निर्गुण साधना करेंगे। माँ दूसरे की अपेक्षा अपने पुत्र पर ही रक्षा के काम में अधिक विश्वास रखती है। योग साधना के मार्ग में दोनों स्थानों पर माँ ने अपनें पुत्रों को वहाँ रख दिया है। महागणेश और भगवान कार्त्तिक ही साधकों की परीक्षा लेते हैं, कि साधक माँ के पास जाने का अधिकारी है या नहीं।

४४३. तुष्टि :

माँ आनन्द और सन्तोष का स्वरूप है। माता अपने दोनों पुत्रों के रक्षा कार्य से सदा सन्तुष्ट रहती हैं। योगी भी अपने खण्ड अहं को जीत कर तुष्ट रहते हैं। सूर्य की कलाओं में तुष्टि एक है।

४४४. पुष्टि

आभा सुन्दर गठित शरीर से चमकती है। माँ जीवों को पुष्ट करती रहती है। अहं छोड़कर साधक पुष्ट और स्वस्थ हो जाता है। पुष्टि सोम की कलाओं में एक है।

४४५. मति

माँ आनन्दपूर्ण शान्तिमयी मती है।

४४६. धृति :

माँ प्रज्ञास्वरूपा है। योगाभ्यास से इन्द्रियाँ मर जाती हैं। सोम कलाओं में धृति एक है।

४४७. शान्ति :

सगुण में माँ सभी गुणों से पुष्ट रहती है। निर्गुण में माँ शान्त रहती है। द्वैत में अशांति और अद्वैत में शांति रहती है।

४४८. स्वस्तिमती

वह सत्यों में परम सत्य एवं कल्याणमयी है।

४४९. कान्ति :

ज्योतिमयी है। जीवन ज्योति की कान्ति है। सोम कलाओं में एक कान्ति है।

४५०. नन्दिनी

वह आनन्द में रहती है। प्रज्ञा ब्रह्म या गंगा भी है।

४५१. विघ्ननासिनी

भक्त को विशुद्ध ज्ञान देकर विघ्नों का नाश करती है। माया को काटती है।

४५२. तेजोवती

सूर्य चन्द्र को वह तेज देती है।

४५३. त्रिनयना

विराट् रूप में सूर्य, चन्द्र और अग्नि उसके नयन हैं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन तीन नयन या पथ है।

४५४. लोलाक्षीकामरूपिणी

धन की देवी है और अपनी इच्छा के अनुरूप शरीर धारण करनेवाली है। माँ अपने रूप से स्त्रियों को मुग्ध कर लेती है।

४५५. मालिनी

माला पहने हैं। अ से ह तक की माला है और क्ष सुमेरु है।

४५६. हंसिनी

हंस मंत्र या अजपा मंत्र है जो श्वास उच्छ्वास से जप में चलता है। सन्यासी भी हंस ही रहते हैं। माता हंसिनी के रूप में प्रख्यात है।

ह+स+विन्दु=के योग से हंस बना है। सहस्रदल पद्म में महाकामेश्वर शिव का प्रतिनिधि वर्ण 'ह' है। भगवती कामेश्वरी कुण्डलिनी रूप में चित्रिणी में प्रकाशमयी रूप में प्रकट होती है और शिव से मिलना चाहती है। वह 'स' कार रूप में रहती है। ह स के मिलन क्रम में विन्दु की ध्वनि प्रकट होती है। तीनों मिलकर हंस बने। शिव और शक्ति के मिलन से अमाकला की सृष्टि होती है। इसे विन्दु कहते हैं जो बुद्धि तत्त्व है। जब विन्दु तत्त्व 'ह' कार से युक्त होता है तो आत्मज्ञान प्रकाशित होता है। जब बुद्धि तत्त्व 'स' कार से

युक्त होता है तो जीव मायामय संसार में भ्रमण करता है। संयासी 'हंस' तत्त्व का अभ्यास करते हैं। यह मोक्षमय है। सहस्रार के अग्निमण्डल में जब वे पूर्ण दक्ष हो जाते हैं तो वे परमहंस कहलाते हैं।

हंस तत्त्व निम्न प्रकार की तीन शक्तियों के मिलन से प्रकट हुआ है

(1) शिव शक्ति का अमाकला के योग से

(2) प्रकाश और विमर्श विन्दुओं के योग से मिश्र विन्दु बनने से

(3) शुक्ल और शोणित के पिण्ड मिलने से

(4) तत्+त्वं के तत्त्वमसि से

(5) ह+स के अमृत योग से

सभी मानवीय शरीरों में कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से ऊपर उठती है। इसके संचालन में ही मानव शरीर जीवित रहता है। सहस्रदल के मूल अष्ट दल में हंस गति होने से ही जीव का जीवन धारण सार्थक रहता है।

(1) जब कुण्डलिनी शक्ति अष्टदल के पूर्व दल पर हंस रूप में विश्राम करती है तो आत्मा में प्रार्थना का भाव जगता है और भक्ति भाव जगता है।

(2) जब हंस दक्षिण पूर्व के दल पर विश्राम करता है तो आत्मा की शांति को भग्न करता है।

(3) जब हंस दक्षिण दल कमल पर विश्राम करता है तो स्वार्थ का भाव भर देता है।

(4) हंस जब दक्षिण पश्चिम कमल दल पर विश्राम करता है तब आत्मा का जीव कुकर्म करता है।

(5) जब वह पश्चिम दल पर चलता है तो जीव सांसारिक सुख भोग करता है।

(6) जब हंस उत्तर पश्चिम कमल दल पर चलता है तो जीव को यात्रा का भाव जगता है।

(7) जब उत्तर कमल दल पर हंस रहता है तो भोजन करने की इच्छा होती है।

(8) जब ईशान कोण के कमल दल पर विश्राम करता है तो जीव

पर सेवा या परोपकार में प्रवृत्त होता है।

(9) जब हंस मध्यदल कमल में बैठता है तो आत्मा को सभी क्रियाओं से रोकता है।

योगाभ्यास में हंस तत्त्व पर विजय प्राप्त करने से हंस ही बन जाता है। हंस होकर उसे परब्रह्म तक जाना है। श्री देवी उसे अष्टदल कमल के विभिन्न दलों पर धकेल देती है जिससे साधक सांसारिक भोगों में ही फसा हुआ रहे। अत: योगी इन सब प्रलोभनों को त्याग कर परब्रह्म तक उड़ जाए। यदि सहस्रदल में उलझ जाए तो फिर अष्टदल में गिरने से बच जायगा। फिर वह सुलझकर प्रभु से मिलने में, माँ से साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकेगा।

४५७. माता

वह जड़ चेतन सबों की जननी है।

४५८. मलयाचलवासिनी

वह दक्षिण के मलय पर्वत पर निवास करती है। वह भगवती कही जाती है। मलय, मूलाधार के कुछ पर्वतों में एक है।

~~४५९. सुमुखी~~

मलयाचल पर मानव श्री देवी की प्रसन्नता शीघ्र प्राप्त कर लेता है। माँ प्रसन्न हो जाती है और सुमुखी लगती है। बुद्धिमता से व्यक्ति सुमुख हो जाता है।

४६०. नलिनी

गंगा को भी कहते हैं। माँ का सर्वांग कमल जैसा है जिससे वह नलिनी कही जाती है।

४६१. सूभ्रू :

उसके भ्रूद्वय भी सुन्दर हैं।

४६२. शोभना

उनका रूप सतत शोभायुक्त है।

४६३. सुरनायिका

देवताओं का नेतृत्व करती है।

४६४. कालकण्ठी

गर्दन काले रंग की है। लोगों को मान्यता है कि सतत मधुपान से ऐसा है। माँ के गले में काले रंग का एक आभूषण भी है। भगवान कालकण्ठ शिव की संगिनी होने से माँ को कालकण्ठी कहते हैं। दारुकासुर को मारने के लिए भगवान ने कालकण्ठी का निर्माण या आह्वान किया था जैसा लिङ्ग पुराण में लिखा है।

४६५. कान्तिमती

माँ सर्वत्र कान्ति से युक्त हैं।

४६६. क्षोभिणी

माँ जड़ चेतन को क्षुब्ध कर देती है। दस मुद्रा देवियों में क्षोभिणी एक है। यह श्री चक्र के भूपुर के तीसरे भाग में है।

(1) वह सृष्टि कार्य में है।

(2) माँ अनन्त शक्ति की सृष्टि करती है।

(3) ''किंचित क्षुभिता'' ऐसा योग वाशिष्ट में कहा है।

४६७. सूक्ष्मरूपिणी

माँ सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है।

४६८. वज्रेश्वरी

नित्या देवियों में छठी वज्रेश्वरी है। श्री चक्र के आठवें भाग त्रिकोण में वज्रेश्वरी का वास है। वह अव्यक्त स्वरूपा देवियों में एक है।

४६९. वामदेवी

भगवान कामेश्वर के पाँच मुख हैं।

उत्तर का मुख वामदेव हैं।

पश्चिम का मुख सद्योजात है।

पूर्व का मुख तत्पुरुष है।

दक्षिण का मुख अघोर है।

केन्द्र का मुख ईशान है।

भगवान शिव ने अपना वायाँ अंग श्री देवी को दे दिया है। देवी को अपनी बाँयी जाँघ पर बिठा कर उन्होंने माँ का सम्मान किया। वामदेवी सुन्दरी

युवती को कहते हैं। माँ सबसे सुन्दरी हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में सामवेद से सम्बन्धित वामदेव मिथुन स्रोत है। माँ अर्द्धनारीश्वर का आधा हैं।

४७०. वयोऽवस्थाविवर्जिता

माँ वयस से परे हैं।

४७१. सिद्धेश्वरी

वह सिद्ध पुरुषों की अधिनायिका हैं। देवताओं की दूसरी पंक्ति सिद्धों की है जिन्हें देवयोनिसम्भूत कहते है। वे बराबर श्री देवी की आराधना में लगे रहते हैं।

४७२. सिद्धविद्या

बाला, पञ्चदशी, षोडशी के मंत्र श्री विद्या नाम से विख्यात है। ये मंत्र सबों के लिए कल्याणप्रद है। ये माँ के ही रूप हैं। दो प्रकार की सिद्ध विद्यायें हैं। एक है यक्ष विद्या जिससे सिद्धि में सहायता मिलती है। दूसरी है ब्रह्मविद्या जिसकी साधना कठिन है। उससे शाश्वती शक्ति वशीभूत होती है।

४७३. सिद्धमाता

वह सभी सिद्ध पुरुषों की माता है। वह भक्तों की रक्षा में सतत संसिद्धा है।

४७४. यशस्विनी

आगे आनेवाले 62 नामों में मूलाधार से सहस्रार तक उनके सात रूपों का वर्णन है। योगिनी न्यास के अनुसार सभी चक्रों में माँ के विभिन्न रूप, नाम, भोजन एवं धातु सम्बन्धों का वर्णन आता है। योगियों को अन्तर्याग क्रम में सबों की अनुभूति होती है। माँ का यश सर्वव्यापी है। महान शक्तियों को उसने वशीभूत कर रखा है।

४७५. विशुद्धिचक्रनिलया

माँ विशुद्ध चक्र के षोडशदल कमल में रहती है। श्री देवी विशुद्धि में डाकिनी योगिनी के रूप में रहती है।

४७६. आरक्तवर्णा

डाकिनी योगिनी लाल रंग की है।

४७७. विलोचना

डाकिनी देवी की तीन सुन्दर आँखें हैं।

४७८. खट्वाङ्गादिप्रहरणा

पलंग की टांग ही खट्वांग है। (कोई खप्पर भी कहते हैं) डाकिनी देवी के एक हाथ में खट्वांग एवं अन्य तीनों में अन्या हथियार हैं।

४७९. वदनैकसमन्विता

एक मुख है।

४८०. पायसन्नप्रिया

वह दूधवाला भोजन पसंद करती है। खीर।

४८१.त्ववस्था

शरीर के चर्मभाग में इसका वास है।

४८२. पशुलोकभयङ्करी

अष्टपाश युक्त लोगों के लिए वह भयङ्करी है।

४८३. अमृतादिमहाशक्तिसंवृता

श्री डाकिनी देवी षोडश महाशक्तियों से घिरी हैं। ये शक्तियाँ अमृता आदि हैं जो विशुद्ध चक्र में है।

४८४. डाकिनीश्वरी

विशुद्धि में ही विशेष रूप से यह डाकिनी देवी हैं।

४८५. अनाहताब्जनिलया

द्वादशदल पद्मोंवाला अनाहत चक्र में श्री देवी राकिनी योगिनी के रूप में रहती हैं।

४८६. श्यामाभा

श्यामवर्ण की षोडशी देवी जैसी राकिनी देवी है।

४८७. वदनद्वया

राकिनी देवी के दो सिर हैं। दो मुख हैं।

४८८. द्रंष्ट्रोज्ज्वला

उनके दाँत चमकीले हैं।

४८९. अक्षमालादिधरा

वे 'अ' से 'क्ष' तक की वर्णों की माला पहने हैं।

४९०. रुधिरसंस्थिता

वह रक्त तन्तु में बसती हैं।

४९१. कालरात्र्यादिशक्त्योघवृता

वे काल रात्रि आदि शक्तियों से घिरी हैं। काल रात्रि से टंकारी तक अनाहत पद्म में हैं।

४९२. स्निग्धौदनप्रिया

घी एवं चिकने भोजन और भात बहुत पसन्द करती है।

४९३. महावीरेन्द्रवरदा

तूरिया में विचरने वालों को वरदान देती है।

४९४. राकिण्यम्बास्वरूपिणी

अनाहत ही में माँ राकिनी देवी रहती है।

४९५. मणिपूरब्जनिलया

दस दल पद्म वाले मणिपुर में वह लाकिनी योगिनी है।

४९६. वदनत्रय संयुता

श्री लाकिनी योगिनी के तीन मुँह हैं।

४९७. वज्रादिकायुधोपेता

उनके पास वज्र एवं अन्य आयुध हैं।

४९८. डामर्यादिभिरावृता

डामरी आदि योगिनियाँ उन्हें घेरे हैं।

४९९. रक्तवर्णा

लाकिनी देवी लाल वर्ण की है।

५००. मांसनिष्ठा

वह मांस में जीवनी शक्ति है। उनकी निष्ठा मांस में है।

(पञ्चम अध्याय समाप्त)

♦

षष्टम् अध्याय

५०१. गुडान्नप्रीतमानसा

वह भात, गुड़ आदि से प्रसन्न होती है।

५०२. समस्तभक्तसुखदा

लाकिनी देवी अपने भक्तों को सभी प्रकार के सुख देती है।

५०३. लाकिन्यम्बास्वरुपिणी

वह माँ लाकिनी के रूप में वहाँ है।

५०४. स्वाधिष्ठानाम्बुजगता

महाकामेश्वरी स्वाधिष्ठान में काकिनी रूप में हैं।

५०५. चतुर्वक्त्र मनोहरा

माँ काकिनी के चार मुख हैं।

५०६. शूलाद्यायुधसम्पन्ना

उनके वास शूलाधि अस्त्र हैं।

५०७. पीतवर्णा

काकिनी का पीला रंग है।

५०८. अतिगर्विता

अपनी शक्तियों से अतिगर्व में रहती है।

५०९. मेदोनिष्ठा

मेदा में निष्ठा है, वास है।

५१०. मधुप्राता

मधु से प्रसन्न होती है।

५११. बन्धिन्यादि समन्विता

वह बन्धिनी आदि छः शक्तियों से घिरी है।

५१२. दध्यन्नासक्तहृदया

दधिवाले भोजन को हृदय से चाहती है।

५२३. काकिनीरूपधारिणी

स्वाधिष्ठान में माँ काकिनी रूप में हैं।

५३४. मूलाधाराम्बुजारूढ़ा

मूलाधार के चार दल कमल में वह शाकिनी योगिनी के रूप में है।

५१५. पञ्चवक्त्रा

उनके पाँच मुख हैं।

५१६. अस्थिसंस्थिता

वे अस्थियों की जीवनी शक्ति है।

५१७. अंकुशादिप्रहरणा

हाथ में अंकुश आदि अस्त्र हैं।

५१८. वरदादिनिषेविता

साकिनी को वरदा आदि चार शक्तियाँ घेरे हैं।

५१९. मुग्दौदनासक्तचित्ता

चावल और चना का पका भोजन वह पसन्द करती है।

५२०. साकिन्यम्बास्वरूपिणी

श्री कामेश्वरी मूलाधार में साकिनी का रूप धारण करती है।

५२१. आज्ञाचक्राब्जनिलया

यहाँ दो दल कमल हैं। हाकिनी के रूप में माँ विराजिता है भ्रूमध्य में।

५२२. शुक्लवर्णा

हाकिनी देवी का रंग शुक्ल है।

५२३. षडानना

यहाँ माँ के छः मुख हैं।

५२४. मज्जासंस्था

शरीर के मज्जा में इनका वास है।

५२५. हंसवती मुख्यशक्तिसमन्विता

आज्ञा में हाकिनी हंसवती आदि शक्तियों के साथ रहती है।

५२६. हरिद्रान्नैकरसिका

पीत रंग का भोजन पसन्द करती है।

५२७. हाकिनीरूपधारिणी

इस चक्र में हाकिनी देवी का वास है।

५२८. सहस्त्रदलपद्मस्था

आज्ञाचक्र और निरालम्बपुरी के ऊपर सहस्रदल कमल है। यहाँ श्री देवी याकिनी योगिनी के रूप में हैं।

५२९. सर्ववर्णोपशोभिता

पचास मातृका शक्तियाँ से घिरी बीच में याकिनी शक्ति चमकती है। 'अ' से 'क्ष' तक के वर्ण हैं इसमें।

५३०. सर्वायुधधरा

माँ सभी अस्त्रों से पूर्ण हैं।

५३१. शुक्लसंस्थिता

माँ ओजस 'बीज' होकर वास करती है।

५३२. सर्वतोमुखी

उनका मुख सभी ओर है। दशों दिशाओं में देखती है।

५३३. सर्वौदनप्रीतचित्ता

वह सभी प्रकार के भोजन पसन्द करती है।

५३४. याकिन्यम्बास्वरूपिणी

याकिनी देवी के रूप में महाकामेश्वरी अपनी शोभा से जगत को मोहित किए हैं। सप्तलोकों में सबसे ऊपर है।

५३५. स्वाहा

यज्ञ के हवन में अपनी ही दिव्यवाणी रूप में हैं। स्वाहा माहेश्वरी पीठ की अधिष्ठात्री देवी हैं। मंत्रों के अन्त से स्वाहा का उच्चारण ही पल्लव है। हवनमंत्र के अन्त में स्वाहा बोलते हैं। अग्नि देव में आहुति देने से लोगों को विश्वास रहता है कि वे सभी देवों का हवि उन्हें पहुँचा देंगें। अग्नि की दो देवियाँ हैं स्वाहा और स्वधा। अत: स्वाहा कहकर हम शक्ति को जगाते हैं। माँ ही ये दोनों शक्तियाँ बनी है।

५३६. स्वधा

पितृ श्राद्ध में स्वधा शक्ति का बड़ा काम होता है। स्व-धा ब्रह्म धाम या ब्रह्म ही है।

५३७. अमतिः

मति या बुद्धि का अव्यक्र रूप है।

५३८. मेधा

जिसमें सभी ज्ञान और बुद्धि का समावेश रहता है। काश्मीर की पूजा देवी है।

५३९. श्रुति

कान से या वेदमाता से सुनी जाती है। माँ वेद या श्रुति का स्वरूप है। माया की सगुण शक्ति को निज शक्ति कहते हैं। निज शक्ति ने ही धर्म और धर्मी रूप धरा है। वेद भी नादरूप में सुन पड़ा है। इसी से श्रुति नाम पड़ा।

५४०. स्मृतिः

नियम ग्रंथ है जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, माँ स्मृत रूपा हैं। मन्वन्तराधिप मनु विश्व पर दीर्घ काल तक शासन करते हैं। अभी वैवस्वत मनु हैं।

५४१. अनुत्तमा

इससे उत्तम धर्म कोई नही है। माँ से अधिक चमत्कृत कुछ भी नहीं है।

५४२. पुण्यकीर्त्तिः

श्री देवी की महत्ता और पुण्य की तत्त्व से योगीजन जानते हैं।

५४३. पुण्यलभ्या

श्री विद्या पूर्ण योगियों को उपलब्ध है।

५४४. पुण्यश्रवनकिर्तना

माँ स्तुति सुनकर प्रसन्न हो जाती हैं।

५४५. पुलोमजार्चिता

पुलोम ऋषि की कन्या ने माँ की पूजा की। नहुष को तप के बाद

इन्द्र पद मिला था। इन्द्र ने नहुष को अपने स्थान पर आसीन देखकर लज्जित होकर अपनी स्त्री शची को छोड़कर अज्ञात स्थान की ओर प्रस्थान किया। नहुष ने शची देवी को इन्द्राणी समझ कर उसे अपनी अर्द्धांगिनी होने का आग्रह किया। शची देवी अपने पति इन्द्र को पाने के लिए व्याकुल थीं। उसने नहुष के भय से श्री देवी की विस्तृत पूजा की। श्री देवी उनकी पूजा से प्रसन्न हो गई और उसे वरदान दिया कि उसकी मनोकामना पूरी होगी। शची देवी को अपने पति इन्द्र तो मिल ही गये साथ ही इन्द्र अपने पूर्व पद पर भी प्रतिष्ठित हो गये। शची का नाम पुलोमजा है।

वरूण की पुत्री पुलोम ने भृगुमहर्षि से विवाह किया। पुलोम के गर्भ से च्यवन ऋषि का आविर्भाव हुआ। उन्हें पुलोमज भी कहते हैं। पुलोमज ने श्री देवी की आराधना की, इसीसे माँ को पुलोमजार्चिता भी कहते हैं।

५४६. बन्धमोचनी

जिस तरह श्री देवी ने इन्द्र पत्नी शची को नहुष के बन्धन से छुड़ाया उसी प्रकार माँ सभी के बन्धन काटती हैं।

५४७. बर्बरालका

गलत ढंग से पूजा करने वालों को माँ कठिन दण्ड देती हैं। यहाँ माँ के केश के गुच्छों की कमनीयता का वर्णन है।

५४८. विमर्शरूपिणी

नामरूप मय संसार की सृष्टि माँ अपने विमर्श द्वारा करती है। विमर्श ज्ञान सत्य और असत्य का विवेचन है। माँ की विश्चषणात्मिका शक्ति का वर्णन है।

५४९. विद्या

मुक्ति दात्री मंत्र ही विद्या है। सदाशिव की कलाओं में विद्या एक है।

५५०. वियदादिजगत्प्रसूः

श्री देवी पञ्चभूतमयी सभी सृष्टियों की जननी है। आकाशादि पञ्चभूत उसी से बने हैं।

५५१. सर्वव्याधिप्रशमनी

माँ तन और मन की सभी व्याधियाँ हर लेती हैं।

५५२. सर्वमृत्युनिवारिणी

सभी प्रकार के मृत्युओं को दूर भगाती है। कैवल्य कुम्भक और अजपा सिद्धि द्वारा माँ अमरत्व देती हैं। अजपा सिद्धि वाले योगी अमर भाव में विचरण करते हैं।

५५३. अग्रगण्या

उसका सर्वत्र प्रथम स्थान है। सबसे आगे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी उसके बाद ही आते हैं।

५५४. अचिन्त्यरूपा

उसकी पवित्रता का चिन्तन कैसे हो। असीम भी है, सूक्ष्मतम भी है। उसका पार पाना कठिन है।

५५५. कलिकल्मषनाशिनी

कलि के पापों का नाश करती है। उसके चरण कमल के स्मरण से पाप दूर भागते हैं। माँ दिशा निर्देश कर भक्तों की रक्षा करती है।

५५६. कात्यायनी

यह ओड्यान पीठ की देवी है। षष्ठी देवी है। उनका तेजस स्वरूप है। कत् मुनि की कन्या है।

५५७. कालहन्त्रि

समय का नाश करती है। भगवान कामेश्वर को महाकाल कहते हैं। श्री देवी शिव की संगिनी हैं, इसी से कालहन्त्री कही जाती है।

५५८. कमलाक्षनिषेविता

कमलाक्ष भगवान विष्णु हैं। श्री विष्णु श्री देवी को पूजते हैं। श्री देवी ने अष्टमूर्त्तियों में एक विष्णु की भी सृष्टि की तथा संसार के पालन का भार उन्हें दिया। श्री विष्णु कृतज्ञतापूर्वक श्री देवी की पूजा करते हैं।

५५९. ताम्बूलपूरितमुखी

माँ का मुख पान से भरा रहता है। माँ सदा महामंत्र जपती रहती है।

५६०. दाडिमीकुसुमप्रभा

माँ का विसर्जन ब्रह्माण्ड में है। माँ का मुख अनार के फूल जैसा लाल है।

५६१. मृगाक्षि

उनकी आँखें मृग जैसी हैं। उसके नयन सचेष्ट, सावधान एवं चकित रहते हैं।

५६२. मोहिनी

मोहित करने वाली शक्तियों में मोहिनी एक है। समुद्र मंथन के समय विष्णु भगवान ने मोहिनी रूप धारण कर राक्षसों को भ्रमित किया था।

५६३. मुख्या

सृष्टि का कारण और आधार होने से वह मुख्या कहलाती है।

५६४. मृडानि

माँ मृड या शिव की संगिनी है।

५६५. मित्ररूपिणी

माँ द्वादश आदित्यों के स्वरूप में है।

५६६. नित्यतृप्ता

माँ अपनी क्रियाओं से सदा तृप्त रहती है। श्री देवी की षट् शक्तियों में नित्यतृप्ता एक है।

५६७. भक्तनिधि

माँ अपने भक्तों का वैभव बनकर रहती है।

५६८. नियंत्री

माँ सदा नियम अनुशासन की रचना करती है।

५६९. निखिलेश्वरी

वह सबों की ईश्वरी स्वामिनी है।

५७०. मैत्र्यादिवासनालभ्या

जीव के पर्वजन्म के कर्मफल को वासना कहते हैं। वे चार प्रकार की है मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। जब तक कर्मवासना है जीव को जन्म तरण के चक्र में आना है। वासना का क्षय किये बिना अमरत्व असंभव है। बड़े योगियों ने श्री देवी की कृपा पाकर सभी वासनाओं का क्षय किया।

सुखी लोगों से मित्रता रखना, पर द्वेष नहीं। दीन-दुखी पर करुणा का भाव आना, पुण्यात्माओं को देखकर आनन्द पाना, पापियों की उपेक्षा करना ये

ही चार वासनायें हैं।

५७१. महाप्रलयशाक्षिणी

प्रलय काल में महाशिव महाकालाग्निरुद्र का रूप धारण करते हैं। समस्त शरीर में विभूति रमाकर महा भैरव नाच करते हैं। माँ एकाकी उनका प्रलयताण्डव देखती है। वह साक्षी कला है।

५७२. पराशक्ति

वशिष्ठ संहिता का कथन है : शरीर में नौ तन्तु हैं और दशम उन नवों को प्रकाशित करने वाली शक्ति है। प्रत्येक भूत में विद्यमान शक्ति ही शिव है। उस शिव की शक्ति गौरी है। श्री देवी को पराशक्ति कहते हैं।

५७३. परानिष्ठा

माँ निष्ठामयी अन्तिम लक्ष्य स्थान है। सहस्रार के चन्द्रमण्डल के त्रिकोण का पंचम स्थान है। यहाँ माँ का निर्गुण और सगुण भाव रहता है। यहाँ योगियों की सभी वासनायें क्षीण हो जाती है। ब्रह्म के साथ वह एकाकार हो जाता है। यही परानिष्ठा अवस्था है। यह आनन्द वर्णन के परे है।

५७४. प्रज्ञानघनरुपिणी

शाश्वतज्ञान या शाश्वत शक्ति प्रज्ञान है। माँ परिवर्त्तनहीन पद है। वह सगुण और निर्गुण में परम चैतन्यमयी है।

५७५. माध्विपानालसा

महाकामेश्वरी माध्वी पान में अधिक रूचि रखती है। मधु एवं अन्य द्रव्यों से माध्वी बनाते हैं। योग साधना में योगियों द्वारा यह मधु व्यवहृत होता है। कुलाणर्व आदि तंत्रों में इसका विशद उल्लेख है।

५७६. मत्ता

मस्ती छायी रहती है। आनन्दातिरेक की अवस्था रहती है। नामरूपमय संसार खो जाता है।

५७७. मातृकावर्णरुपिणी

माँ षट्चक्रों में विराजमान हैं इन मातृकाओं के रूप में।

५७८. महाकैलाशनिलया

वह श्री चक्ररूपी महाकैलाश में विन्दु रूप में रहती है।

५७९. मृनालमृदुदोर्लता

माँ की बाहें कमल दल एवं लता जैसे सुकुमार हैं।

५८०. महनिया

पर ब्रह्म की महत्ता से वह महनीया है।

५८१. दयामूर्त्ति

सभी योगियों के लिए वह दया की मूर्त्ति है।

५८२. महासाम्राज्यशालिनी

वह महान साम्राज्य की महारानी है। महाकैलाश की शासिका है।

५८३. आत्मविद्या

वह अहं, आत्मस्वरूप या आत्मसाक्षात्कार देनेवाली विद्या है। आत्म विद्या ब्रह्म विद्या है।

५८४. महाविद्या

वह वन दुर्गा मंत्र है। दश प्रकार की महाविद्यायें हैं। काली, तारा, षोडशी, धूमावती, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरसुन्दरी, बगला मुखी और मातङ्गी। षोडशी ही श्री विद्या हैं। इसमें अनेक मंत्रों के पारायण होते हैं।

५८५. श्रीविद्या

बाला, पञ्चदशी, षोडशी को श्री विद्या कहते हैं। वे वर्णात्मिका हैं। श्री बीज की महत्ता है जिससे श्री विद्या कहलाती है।

बाला पुर विद्या है, पञ्चदशी परा विद्या है और षोडशी परापरा विद्या है बाला कामेश्वरी की पुत्री हैं और मूलाधार में विश्राम करती है। उनका मंत्र तीन अक्षरों का है। मूलाधार में दशवर्षीया कुमारी के रूप में वह रहती है। अनाहत चक्र में युवती (यौवनवती, 15 पञ्चदशी) रहतीं हैं। पञ्चदशी उसका सूक्ष्म मंत्रमय रूप है। सहस्रार में वह वयस्का षोडशी रूप में रहती है।

५८६. कामसेविता

ममन्थ माँ की पूजा करते हैं। श्री कामेश्वर शिव श्री देवी की आराधना करते हैं। कामनामुक्त होकर सभी माँ को पूजते हैं।

५८७. श्रीशोडशाक्षरीविद्या

16 वर्णों का राजराजेश्वरी मंत्र है।

16 कलाओं में एक-एक वर्ण में एक-एक है।

इसमें अनेक ऋषियों को पूजा परम्परायें हैं।

५८८. त्रिकूटा

महागायत्री, महापञ्चदशाक्षरी, षोडशी इत्यादि उसके कूट विभाग है। कूट एक शृंखला है स्थान भी है। योग मार्ग में विवर स्थान ही त्रिकूट है। सगुण और निर्गुण अवस्थाओं के बीच में यहाँ कुण्डलिनी रहती है। पञ्चदशी मंत्र के तीन कूट हैं वाग्भव, कामराज और शक्तिकूट।

५८९. कामकोटिका

अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में कामेश्वर और कामेश्वरी अभेद हैं।

५९०. कटाक्षकिङ्करीभूतकमलाकोटिसेविता

माँ की एक दृष्टि में करोड़ों लक्ष्मी की सृष्टि होती है। भक्तों को एक ही दृष्टि में विभव से तुष्टि मिलती है।

५९१. शिरःस्थिता

मोक्षद्वार में श्री देवी परापर गुप्त रूप में शोभती है। ब्रह्मरंध्र में माँ का वास बताया है।

५९२. चन्द्रनिभा

सहस्रार में माँ चन्द्रप्रभा से अमृत बरसाती है।

५९३. भालस्था

सहस्रार में चन्द्रमण्डल है। वहाँ विन्दुरूप में माँ चमकती है। ललाट का सबसे ऊपरी भाग समकक्ष में रहता है। 'ह्रीं' बीज में है।

५९४. इन्द्रधनुःप्रभा

अर्द्धचन्द्राकार रूप में अमाकला, निर्वाणकला, अग्निकला और निर्वाण शक्ति के रूप में इन्द्र धनुष की भाँति चमकती है माँ।

५९५. हृदयस्था

चन्द्रमण्डल मध्य में परमात्मास्थान में वह चमकती है। कामराज बीज

रूप में वह हृदय में है। परा बीज मंत्र को हृदय कहते हैं। कोई-कोई अनाहत का भी उल्लेख करते हैं। वह मंत्रों की जीवनी शक्ति है।

५९६. रविप्रख्या

सूर्य के प्रकाश से वह परमात्मा में चमकती है।

५९७. त्रिकोणान्तरदीपिका

वह त्रिकोण के भीतर की दीपशिखा है। वह श्री चक्र के त्रिकोण का विन्दू है। मूलाधार और स्वाधिष्ठान को अग्निमण्डल कहते हैं। मणिपुर और अनाहत को रविमण्डल कहते हैं। विशुद्ध और आज्ञा को चन्द्रमण्डल कहते हैं। सहस्त्रार को उत्तम चन्द्रमण्डल कहते हैं।

५९८. दाक्षायणी

दक्ष की पुत्री, शिव की संगिनी है। दाक्षायणी के प्रगट होने की कथा भी है एक बार हरि और हर को अपनी अपनी शक्ति पर अभिमान हो गया। वे यह भूल गये कि उन्हें कहाँ से शक्ति प्राप्त हुई थी। अत: वे शक्ति हीन हो गये। स्थिति और संहार का कार्य रुक गया। संसार में संतुलन समाप्त हो गया और अराजकता फैल गई। अत: ब्रह्मा जी के आदेशानुसार सनकादि मुनियों ने श्री देवी से प्रार्थना की। श्री देवी ने हरि और हर की खोई शक्तियों को वापस देने का वचन दिया। आदि शक्ति का एक अंश क्षीर सागर से प्रकट हुआ। वह स्थिति शक्ति थी। दूसरे अंश से संहार शक्ति प्रकट हुई जो दक्ष प्रजापति के घर दाक्षायणी रूप में हर से मिली।

६९९. दैत्यहंत्री

उसने भण्ड आदि असुरों को मारा। मनुष्य में वह आसुरी प्रवृत्तियों को मारती है। दक्षयज्ञ से ही उसका पहला संहार कार्य प्रारम्भ हुआ।

६००. दक्षयज्ञविनाशिनी

दक्ष ने शिव का अपमान कर अपने यज्ञ में उनका भाग नहीं रखा था। माँ ने योगिनी प्रकट कर आत्म आहूति दे दी और दक्ष के यज्ञ को विनाश किया, ध्वंश किया।

(षष्टम् अध्याय समाप्त)

♦

सप्तम अध्याय

६०१. दरान्दोलितदीर्घाक्षी

दक्षयज्ञ में क्रोध के कारण माँ की बड़ी-बड़ी आँखें लाल हो गईं। माँ की आँखें अपने भक्तों के भय को दूर करती हैं।

६०२. दरहासोज्ज्वलन्मुखी

भक्तों को सन्मार्ग दिखाते समय माँ का उज्ज्वलमुख मुस्कान से चमकता रहता है।

६०३. गुरुमूर्त्तिः

सभी गुरु ललिता के स्वरूप हैं। पूजा में गुरु और देवता में कोई भेद नहीं रहता है। भक्त जब सर्वार्पण कर देता है तो माँ स्वयं गुरुमूर्त्ति बनकर उसे सब विद्या देती है। मुक्ति के मार्ग पर ले जाती हैं।

६०४. गुणनिधिः

अव्यक्त के निर्झर-स्त्रोत से सत्त्व, रज और तम इत्यादि गुण निकले हैं। माँ दया, कृपा, भक्ति, श्रद्धा, आनन्द, भोग शृंगार, वस्तुग्रहण, स्वार्थ, विवाद, कलह, शोक, वध, वंचना आदि गुणों की निधि हैं।

६०५. गोमाता

माँ कामधेनु हैं। 'गो' वाक् हैं। पृथ्वी रूप में वह भोजन देती है। वाक् देवी रूप में वाक् सिद्धि देती है। साधक, माँ कामेश्वरी की पूजा निर्भय होकर करते हैं।

६०६. गुहजन्मभू

गुह भगवान कार्त्तिकेय हैं और माँ उनकी जननी हैं। गुह से प्रणव तत्त्व की गोपनीयता का भाव है। श्री देवी का ऐसा रहस्यमय कार्य है।

६०७. देवेशी

वह देवताओं की ईश्वरी है।

६०८. दंडनीतिस्था

पापियों के लिए दण्ड की नीति अपनाती है। माँ का विधान ही ऐसा है।

६०९. दहराकाशरुपिणी

हृदय कमल में दहराकाश हैं माँ वहाँ रहती है। आकाश, पराकाश, सत्त्वाकाश, महाकाश और सूर्याकाश ये पाँच हैं।

६१०. प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डल पूजिता

प्रतिपदा से पूर्णिमा तक चन्द्रकला का विकास होता है। इनके साथ ही नित्याकलाओं की पूजा होती है। वे हैं, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, मेरुण्डा, वह्निवासिनी, बज्रेश्वरी, शिवदूती त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनी, चित्रा। अपने-अपने विशेष तिथियों में इनकी पूजा होती है।

६११. कलात्मिका

(1) कला किरण का द्योतक है। 16 चन्द्रकलायें हैं, 10 अग्निकलायें और 24 सूर्य कलायें हैं।

(2) कला 'अ' से 'क्ष' तक का प्रस्तार है।

(3) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में जीव की अवस्था है।

(4) अरुणोपनिषद् के अनुसार 360 कलायें हैं जो माँ के चरणों से किरणों के रूप में निकलती हैं।

६१२. कलानाथा

वह सभी कलाओं की स्वामिनी है। श्री चक्र में 73 कलायें हैं (सूर्य 12+चन्द्र 16+अग्नि 10+ब्रह्म 10+ब्रह्म+10 रुद्र 10+चिदीश्वर 4 सदाशिव 1=73)। विन्दु से भूपुर तक 73 देवताओं या देवियों को इन कलाओं के रूप में बताया है। पूजापद्धति में श्री चक्र में 108 देवतायें हैं।

भूपुरत्रय में 10 मुद्रादेवता, 10 सिद्धदेवता, 8 शक्तियाँ, 6 षड्ंगदेवता, 4 आयुर्देवता कुल 38 में 3 हटाकर 35 रखते हैं+73=108 देवतायें हैं। कलानाथा होने से माँ सबकी स्वामिनी हैं।

६१३. काव्यालापविनोदिनी

वह साहित्य काव्य की चर्चा से विनोद करती है। कालिदास इत्यादि कवि उन्हीं की कृपा से जाग्रत पुरुष बन गये हैं। माँ उन साहित्य या काव्यों में अपना स्वरूप पाकर ही आनन्द लेती हैं।

६१४. साचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता

श्री लक्ष्मी और सरस्वती चामर लेकर सदा उन्हें शीतल वायु देती रहती है।

६१५. आदिशक्ति

माँ ही विश्व की आदि शक्ति हैं।

६१६. अमेया

माँ से बाहर कोई वस्तु उसे मापने में समर्थ नहीं है इससे वह अमेया है। वह सर्वव्यापिनी है।

६१७. आत्मा

आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा रूप में माँ सर्वत्र विराजमान है।

६१८. परमा

अव्यक्त, पुरुष, व्यक्त और काल रूप में माँ परमा है।

६१९. पावनाकृति

वह सभी पापों को नाश करती है। वह पुण्यवती है।

६२०. अनेककोटिब्रह्माण्डजननी

अनेकों कोटि ब्रह्माण्ड की माता हैं। इनकी इच्छा पर ही जगत आश्रित है।

६२१. दिव्यविग्रहा

वह दिव्यमूर्त्ति है, आसुरी भाव को नष्ट करती है।

६२२. क्लींकारी

वह इच्छा जगानेवाली कामबीज है। इससे विष्णु तत्व की सिद्धि होती है।

६२३. केवला

माँ ज्ञानियों का कैवल्य है। उनका सूक्ष्म रूप समझना कठिन है। स्वगत सजातीय और विजातीय हैं और क्लीं बीज से भक्तों को मोक्ष देती हैं।

६२४. गुह्या

वह अन्तःकरण और पंचकोशों में गुप्त रहती है। केवला अकेले रहने से हैं। यह माँ का विश्रान्ति स्थान है। बड़े-बड़े योगी भी गुप्तभाव से उनकी पूजा करते हैं।

६२५. कैवल्यपददायिनी

महाशून्य में साधना से माँ कैवल्यपद देती है। वह निर्विकल्प समाधि

देती है।

६२६. त्रिपुरा

पुर शरीर है, नगर है तथा किला भी है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर को त्रिपुरा कहते हैं। श्री देवी इन तीनों में बसती है और जीव की इन तीनों शरीरों में रक्षा करती है। इसीसे त्रिपुरा नाम है। भगवान् को त्रिपुर कहते हैं क्योंकि उनका शरीर ब्रह्मा, विष्णु और शिव से बना है। शिव के अभेद भाव से माँ त्रिपुरा हैं।

सनातन सिद्धान्त के अनुसार जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में या आर्यावर्त में हमारा बास है।

सृष्टि के क्रम के विषय में काशीखण्ड का कथन है कि

प्रारम्भ में मात्र नाद था। वहाँ आकाश था। आकाश से (वायु और) अग्नि बने। वरुण देवता को जल देने का आदेश हुआ। वृष्टि के बाद राख में जल मिले। फिर वायु देवता ने परमाणुओं का मिलाया। इस समय वट पत्र पर भगवान् विष्णु प्रकट हुए और अपने नाभि कमल से उन्होंने ब्रह्मा की सृष्टि की। ब्रह्मा ने विभिन्न आकार प्रकार की सृष्टियाँ की। सूर्य के द्वादश आदित्य ने जल भाग को सोख लिया और पृथ्वी बनी। जो पृथ्वी अंश सबसे पहले जल से ऊपर आया वह पृथ्वी का सर्वोच्च भाग कहलाया। वह महाकैलाश बना। शिव और शक्ति ने जहाँ आकर वास किया। सबसे पहले शिव और शक्ति ने जहाँ आकर वास किया वह स्थान काशी कहलाया। फिर भरतखण्ड में सभी देवी देवताओं का वास हुआ। श्री कामेश्वरी ने काश्मीर में वास लिया जो महापद्माष्टमी वन से युक्त है। कामेश्वर ने नेपाल में वन वृक्षों के बीच में घर बनाया। कामेश्वर और कामेश्वरी ने अपनी पुत्री कन्यका परमेश्वरी को (बाला को) दक्षिण दिशा में कुमारी अन्तरीप में भेजा। इन तीनों कोणों (त्रिपुर) ने भारत को त्रिकोणाकार रूप में रक्षित किया। शिव, शक्ति एवं शिव शक्ति ने भारत की रक्षा का भार लिया। यह अवस्था तब तक चली जब तक पृथ्वी सुगठित हुई और लोगों के बसने योग्य बन गई।

जिन-जिन स्थानों पर देवताओं का वास हुआ वहाँ-वहाँ अभी (97) मन्दिर विद्यमान हैं। 50 मुख्य शक्ति मन्दिर 1118 शिव मन्दिर और 108 विष्णु मन्दिर इस त्रिकोणकार भरत खण्ड के अन्तर्गत माने गये हैं। इस आर्यावर्त को विन्दु चक्र माना जाता है। श्री चक्र को पूजा की सुविधा के

अनुसार विभिन्न खण्डों में बाँटा गया है। विन्दु स्थान की तुलना काशी से की गई है। त्रिकोण के कोण काश्मीर, नेपाल और कन्याकुमारी है। विन्दु स्थान अखण्ड परब्रह्म का द्योतक है। काशी को अविमुक्त स्थान कहते हैं। अखण्ड परब्रह्म स्थान भी उसे कहते हैं।

शिव शक्ति और बाला के स्थान की तुलना प्रकाश, विमर्श और मिश्र विन्दु से की गई है। चूँकि ये तीनों विन्दु काम कला रूप है (प्रथम सगुण शक्ति हैं।) आर्यावर्त को अखण्ड परब्रह्म या त्रिपुरा सुन्दरी तत्त्व कहते हैं। इसी से हमारे देश में वेद, शास्त्र, कला, धन और अन्य दिव्य विभूतियाँ एकत्र हो गई। अत: भारत को कामधेनू कहते हैं। भारत के इस त्रिभावात्मक आध्यात्मिक, सांकेतिक भूगोल का जो अध्ययन करते हैं वे बताते हैं कि दुराचार से बचाने वाली अगणित शक्तियाँ इसमें विद्यमान हैं। आत्म रक्षा व्यक्ति की प्रथम आवश्यकता हैं तीनों भागों को रक्षित रखने के कारण हमारे पूर्वजों ने त्रिपुरा नाम रखा। वेदान्त-विशारद अपने दिव्य ज्ञान से हमारे खण्ड को सदा समृद्ध रखें। नव कुमारियों में दो वर्ष की बच्ची त्रिपुरा हैं। उनका ध्यान श्लोक इस प्रकार है

त्रिपुरां त्रिगुणां धारां ज्ञानमार्गस्वरूपिणी
त्रैलोक्य वन्दितां देवीं त्रिपुरां पूजयाम्यहम्

६२७. त्रिजगद्वन्द्या

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों संसार उनकी वन्दना करते हैं।

६२८. त्रिमूर्त्ति

इच्छा, ज्ञान, क्रिया
वामा, ज्येष्ठा, रौद्री
ब्रह्म, विष्णु शिव

इन तीनों रूपों की त्रिमूर्त्ति है।

६२९. त्रिदशेश्वरी

चन्द्र की त्र्योदशी कला सर्वमङ्गला है। श्री देवी रस रूप में चमकती है। देवताओं को त्रिदशा कहते हैं।

६३०. त्र्यक्षरी

त्र्यक्षरी तीन अक्षरों को कहते हैं। ऐं ह्रीं श्रीं, ऐं क्लीं सौ: ऐ ह्रीं क्लीं इत्यादि रूपों में त्र्यक्षरी है। वाग्भव, कामराज और शक्तिकूट के बीज इनमें है।

६३१. दिव्यगन्धाढ्या

वह हरिचन्दन आदि के दिव्य गन्धों से युक्त है।

६३२. सिन्दूरतिलकाञ्चिता

माँ के मस्तक पर सिन्दूर का लाल तिलक है। तिलक में कस्तूरी आदि का लेप है।

६३३. उमा

शिवसूत्र के अनुसार योगियों की इच्छा शक्ति उमा कुमारी हैं। पार्वती को तपस्या के समय सम्बोधन में माँ ने उमा (तप मत करो) कहा था। उमा, इन्दु कला और देवी प्रणव भी हैं।

६३४. शैलेन्द्रतनया

पर्वत राज की पुत्री है। हिमवान की कन्या रूप में माँ आई।

६३५. गौरी

गोरा वदन-शंख जैसा है। इसी से गौरी है। सती ने योगाग्नि में देह त्याग दिया। फिर गौरी रूप में अवतरित हुई। कुण्डलिनी की अति जाग्रत अवस्था है।

६३६. गन्धर्वसेविता

गन्धर्व देवयोनिसम्भूत रहते है। हिमालय पर वे अधिक समय क्रीड़ा रत रहते हैं। गौरी के अवतार की कथा सुनकर वे गान करने को वहाँ पधारे।

६३७. विश्वगर्भा

सारा विश्व उसमें है, वह सारे विश्व में है।

६३८. स्वर्णगर्भा

सुवर्ण मातृका और वेद है। सभी वेद, शास्त्र, मंत्र मातृका श्री गौरी से ही प्रकट हुई है।

६३९. अवरदा या वरदा

माँ देवताओं को वर प्रदान और असुरों को नाश में मिलाती है।

६४०. वागधीश्वरी

श्री गौरी वाक् की अधीश्वरी है।

६४१. ध्यानगम्या

ध्यान योग का लक्ष्य महा भाव है। यह गौरी की पूजा से सम्भव है।

६४२. अयरिछेधा

वह पूर्णता और शाश्वत सत्य का अवतार है। समय, विचार या देश से यह सीमित और खण्डित होने वाली नहीं है।

६४३. ज्ञानदा

ज्ञान देने वाली है। उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान शक्ति से वह भक्तों को ब्रह्मतत्व का अनुभव कराती है।

६४४. ज्ञान विग्रहा

चैतन्य प्रस्तार का नाम विग्रह है। गौरी सभी ज्ञानों की संवित् स्वरूपिणी है।

६४५. सर्ववेदान्त संवेद्या

ब्रह्म विद्या का निरूपण सभी धार्मिक ग्रन्थों में है।

६४६. सत्यानन्द स्वरूपिणी

माँ सत्य और आनन्द का स्वरूप ही है।

६४७. लोपामुद्रार्चिता

श्री देवी की पूजा लोपामुद्रा ने की। लोपामुद्रा मुनि अगस्त्य की पत्नी है और पञ्चदशी मंत्र के ऋषि भी हैं। स्त्रियों का अधिकार पञ्चदशी में दिखाया है। गौरी ने प्रसन्न होकर लोपामुद्रा को अपना पूजाक्रम सिखाया।

६४८. लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला

जिस तरह बच्चे खेलकूद में छोटे-छोटे घरौंदे बनाते हैं और तोड़ते हैं, गौरी माँ भी उसी तरह ब्रह्माण्ड के सृष्टि संहार का खेल करती रहती है।

६४९. अदृश्या

उसकी सृष्टि के सभी खेल दृष्टि पथ पर रहते हैं पर नाम रूप के भीतर की उसकी शक्ति दीख नहीं पड़ती।

६५०. दृश्यरहिता

बाहर की कोई सत्ता से वह दीख नहीं पड़ती है। क्योंकि वह सर्वव्यापिका हैं। अस्ति, भाति, प्रियं, सत्, चित, आनन्द भेद से जगत की ओट में पराशक्ति छिपी रहती है। इसी में नाम रूप मय प्रकृति है। ज्ञानी को उस अदृष्ट का अनुभव होता है।

६५१. विज्ञानी

उनमें चित् शक्ति के अन्तर्हित शक्ति है। माँ सब अनुभूतियाँ रखती है, सब कुछ जानती है।

६५२. वेद्यवर्जिता

उसके जानने योग्य कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि वह ज्ञाता, ज्ञेय और क्षेत्रज्ञ भी है।

६५२. योगिनी

मूलाधार से सहस्त्रार पर्यन्त विभिन्न योगिनियाँ है जो शिव शक्ति के मिलन में सहायिका हैं। आदि का व्यष्टिरूप कुण्डलिनी है। अजपासिद्ध द्वारा इसे जगाती है माँ। कुण्डलिनी का परस्वरूप अजपा है। श्री देवी को यहाँ योगिनी कहा है। श्री चक्र के नवावरण में श्री देवी ने योगिनियों का रूप ले रखा है।

६५४. योगदा

मंत्र, हठ, लय, राज योग से माँ जीव को मिलाती है।

६५५. योग्या

माँ में सबसे अधिक योग्यता है। जो कुछ भी अति सुन्दर है वह माँ की विभूति है। अत: माँ की साधारण पूजा भी उसे प्रसन्न कर देती है।

६५६. योगानन्दा

तूरीया अवस्था है। चन्द्रमण्डल में श्री देवी अपने स्वामी के संग योगानन्द की अनुभूति करती है। शिव शक्ति सामरस्य को ही योगानन्द कहते हैं। हंस+सोहं का निर्मल आनन्द है।

६५७. युगन्धरा

जुए पकड़े हैं। बैल गाड़ी में बैलों के कंधोपर के जुए से ही दोनों बैलों की शक्तियाँ जुटती है। विश्व की गति विधियों को जोड़ने में शिव शक्ति की एकता का ऐसा ही हाथ रहता है। विवाह में भी दूल्हे के कंधों में इसे सटाकर बताया जाता है कि वर दुल्हिन एक हो रहे हैं।

६५८. इच्छाशक्ति-ज्ञान शक्ति-क्रियाशक्तिस्वरूपिणी

इन तीनों शक्तियों की अपनी वृत्तियाँ हैं। इच्छा शक्ति में उन्माद, वासना वंचना, चित और चेष्टा। ज्ञानशक्ति में ज्ञान के विभिन्न अंग है। क्रिया शक्ति में स्मरण उद्योग, कार्य, निश्चय और स्वकुलाचार हैं।

६५९. सर्वाधारा

माँ अकेले ही संसार का आधार है।

६६०. सुप्रतिष्ठा

माँ में ही सभी पदार्थ प्रतिष्ठित हैं।

६६१. सदसद्रुपधारिणी

दृश्य संसार श्री देवी का अखण्ड जीवन सबों में है। माँ सत् और असत् रूपों में रहकर भी द्वन्द्वों से परे है।

६६२. अष्टमूर्त्ति

लक्ष्मी गौरी, मेधा तुष्टि, धरा प्रभा, पुष्टि धृतिः शक्तिरहस्य के अनुसार हैं। सूर्य-चन्द्र, पञ्चभूत यजमान हैं। पुराणों और तंत्रों में अनेक प्रकार की अष्टमूर्त्तियाँ हैं। यहाँ याग विद्या में श्री देवी की अष्टमूर्त्तियों का ही भाव है। श्री देवी ने सगुण अष्टमूर्त्तियों को निर्माण किया वे शिव, भैरव, श्री कंठ, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्म हैं। माँ इन दिव्य कार्यों के करने के हेतु स्वयं अष्टमूर्त्ति बनती है।

६६३. अजाजैत्री

वह अजन्मस्थिति को विजय करने वाली है। अपने आनन्द के लिए माँ जड़-चेतन माया प्रपंच रहती है। फिर समय पर माँ अपनी माया समेट लेती है।

६६४. लोकयात्राविधायिनी

संसार के जीवन चक्र का वह निश्चय करती हैं सृष्टि आदि पाँच कार्यों को श्री देवी अपने हाथों में रखती है। भगवान शिव को निर्गुण भाव में आनन्द मग्न छोड़कर माँ सगुण से उत्तर कर लोक जीवन की यात्रा के विधान का संचालन करती है। माँ काया विलास में मग्न रहती है।

६६५. एकाकिनी

वह अकेली है। अपने सगुण कार्यों का लोपकर वह एकाकिनी रहती है। इस नाम में आश्चर्यजनक सत्य है। उदाहरण स्वरूप इस वार्ता को लीजिए। एक व्यक्ति को माली के काम में जी लगता है। अनेकों प्रकार के पौधे लगाता है वह अपने आनन्द के लिए। आनन्द के साथ ही वह पौधों के पालन पोषण में अनेक प्रकार के कष्ट भी झेलता है। फिर आपदायें इतने प्रवल वेग में आती है कि वह उद्यान से तंग आकर क्रूरतापूर्वक सबों को नष्ट कर देता है। बाग

को खाली छोड़कर वह शान्त मन से बैठ जाता है। फिर वह चुप बैठा नहीं रह सकता है इसलिए नए ढंग से पौधे लगाकर बाग सजाना आरम्भ करता है। यहाँ उस माली की मनोदशा का चित्रण हैं श्री देवी की तो दिव्य अवस्थायें रहती है। लोक यात्राविधायिनी रूप में वह कार्यरत रहती है। सृष्टि कार्य से ऊब कर वह संहार कर एकान्त में रहती हैं। अधिक काल तक एकान्त में रुचि नहीं लेने के कारण वह फिर नई सृष्टि करती है। इसी तरह योगीजन ने भी एकान्त का सुख भोग कर लोक यात्रा में अपने को रखा है।

६६६. भूमरुपा

योग समाधि में श्री देवी अखण्ड परब्रह्म रूप में रहती है। वह ब्रह्म विद्यारूप में प्रकाशित है। जहाँ न कुछ देखा जाय। चैतन्य की उस अवस्था को भूमा कहते हैं।

६६७. निर्द्धेता

भूमा की अवस्था में माँ अद्वैत भाव में रहती है। द्वैत ही संसार है, वह मुक्त है।

६६८. अद्वैत वर्जिता या द्वैतवर्जिता

माँ सगुण और निर्गुण से भी मुक्त रहती है।

६६९. अन्नदा

माँ अन्न दान करती है। पञ्च कोशों में प्रथम अन्नमय कोश है।

६७०. वसुदा

धन देती हैं श्री सूक्त में कहा है कि लक्ष्मी की प्रार्थना से स्वर्ण एवं वैभव मिलते हैं।

६७१. वृद्धा

माँ सृष्टि के पहले से है इससे वृद्धा कही जाती है।

६७२. ब्रह्मात्मैक्यस्वरुपिणी

यद्यपि श्री देवी सगुण क्रिया में निमग्न रहती है फिर भी वह अपने निर्गुण रूप के एकान्त सुख का स्मरण करती रहती है। परब्रह्म की छाया इसमें मिल जाती है। वह 'अहम् ब्रह्मास्मि' में डूबी रहती है।

६७३. बृहती

वह बड़ी से भी वृहत है। अपनी सृष्टि में वह सबसे वृहत है। 'ऋते वृहत्' तैतरीय अरण्यक में आया है।

६७४. ब्राह्मणी

कूर्म पुराण के अनुसार शिव ब्राह्मण हैं। अत: देवी ब्राह्मणी है। योगी जनों की शक्ति ब्राह्मणी है।

६७५. ब्राह्मी

वह सभ कलाओं और विज्ञान की मूर्त्ति सरस्वती है।

६७६. ब्रह्मानन्दा

आनन्द के स्वरूपों में वह ब्रह्मानन्दा है।

६७७. बलिप्रिया

माँ पूजा होम और बलि से सदा प्रसन्न रहती है। बलि है

(1) जो अपनी इच्छाओं को जीत सके। (2) संस्कृत भाषा (3) पूजा की वस्तु

६७८. भाषारुपा

माँ भाषाओं के रूप में विराजती है। संस्कृत, प्राकृत, आदि अन्य भाषाओं के रूप मे रहती है।

६७९. बृहत्सेना

माँ के पास में बड़ी सेनायें हैं।

६८०. भावाभावविवर्जिता

नाम और रूप के संसार को भाव कहते है। अभाव नहीं रहने का कहते हैं।

६८१. सुखाराध्या

माँ की पूजा अन्तर्याग से होता है। माँ को 'अहं' नहीं है। जिस विधि से पूजा करें माँ प्रसन्न रहती है।

६८२. शुभकरी

सबका भला करती है। माँ भोग मोक्ष प्रदायिनी होने के कारण सबका कल्याण करती है। वह भक्तों को स्वानुभूति प्रदान करती हैं

६८३. शोभना सुलभागतिः

श्री विद्या से सांसारिक और आध्यात्मिक सद्गति मिलती है। सुख और दुख को पूर्व कर्म के आश्रित माना जाता है श्री देवी संचित कर्मों को मिटाकर शुभ फल देती है। आत्म अनुभूति का सब से सुलभ मार्ग माँ का है।

६८४. राजराजेश्वरी

अष्ट या दश दिक्पाल, त्रिमूर्त्ति की वह ईश्वरी है। वह इन शासकों पर शासन करती है।

६८५. राज्यदायिनी

वह साम्राज्य देती हैं वह पृथ्वी, वकुण्ठ और कैलाश तक का राज्य देती है।

६८६. राज्यवल्लभा

सभी संसार में, श्री चक्र के सभी भागों में वह सबों की प्रिया है।

६८७. राजत्कृपा

दया से पूर्ण रहती है। माँ कृपा कटाक्ष देती हैं।

६८८. राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता

उनके भक्त राज सिंहासन पर विराजते हैं।

६८९. राज्यलक्ष्मी

यह राज्यलक्ष्मी मंत्र की अधिष्ठात्री देवी है।

६९०. कोशनाथा

महाकामेश्वरी के पास कुबेर से भी अधिक धन है। पाँच प्रकार के कोश, आवरण माने जाते हैं। पाँच अवस्थायें इस प्रकार हैं

(क) महालक्ष्मी पाँच भावों में विराजती हैं

(1) महालक्ष्मीश्वरी
(2) विद्यालक्ष्मीश्वरी
(3) महाकामलक्ष्मीश्वरी
(4) त्रिशक्तिलक्ष्मीश्वरी
(5) साम्राज्य लक्ष्मीश्वरी

(ख) (१) विद्याकोशाम्बा

(2) परमज्योतिकोशाम्बा
(3) अजपा कोशाम्बा
(4) शांभवी कोशाम्बा
(5) मातृका कोशाम्बा

(ग) कल्पलतेश्वरी

(1) विद्या कल्पलतेश्वरी

(2) पंचकामेश्वरी कल्पलतेश्वरी
(3) पारिजात कल्पलताम्बा
(4) पंचवाणेश्वरी कल्पलताम्बा

(घ) कामदुगाम्बा

(1) श्री विद्या काम धुगेश्वरी
(2) अमृत पीठेश्वरी काम दुगाम्बा
(3) सुधास्तुकामा दुगाम्बा
(4) अमृतेश्वरी कामधुगाम्बा
(5) अन्नपूर्णा कामधुगाम्बा

(ङ) रत्नेश्वरी

(1) सिद्धलक्ष्मी रत्नाम्बा
(2) महाकाली लक्ष्मी रत्नाम्बा
(3) श्री राजमातंगेश्वरी लक्ष्मीरत्नाम्बा
(4) भुवनेश्वरी रत्नाम्बा
(5) वाराही रत्नाम्बा

६९१. चतुरङ्गबलेश्वरी

माँ के साथ चतुरंगिनी बलवती सेना है। माँ सबों पर नियंत्रण रखती है। घोड़ा, हाथी, रथ और पैदल सेना साथ हैं वह चारों वेदों की रानी है।

६९२. साम्राज्यदायिनी

माँ साम्राज्य देती है। अपने भक्तों को राजसूय यज्ञ का फल देती है। मोक्ष साम्राज्य से भी तात्पर्य है। श्री विद्या की पूर्ण दीक्षा या पूर्णपट्टाभिषेक से तात्पर्य है। माँ का दिया साम्राज्य पृथ्वी के किसी साम्राज्य से बढ़कर है।

६९३. सत्यसन्धा

सत्य का निवास है। जो अपने वचन को कभी नहीं तोड़ती है।

६९४. सागरमेखला

समुद्र की मेखला है। भूलोक कटि है। सप्तसागर मेखला है। सागर माया शक्ति का प्रतीक है। जिससे माँ घिरी हुई हैं।

६९५. दीक्षिता

वह मंत्र में दीक्षिता होकर है। वह अपने भक्तों में बसती है और उनके अज्ञान को दूर करती है।

६९६. दैत्यशमनी

भण्ड, विशुक्र आदि राक्षसों का माँ ने शमन किया है।

६९७. सर्वलोकवशङ्करी

माँ सारे लोकों को अपने वश में रखती है।

६९८. सर्वार्थदात्री

माँ जैसा प्यार देकर वह सभी कामनायें पूर्ण करती है। वह अर्थ, धर्म काम और मोक्ष देती हैं।

६९६. सावित्री

सविता, सूर्य अथवा भर्ग का नाम है। वह विश्व की सृष्टिकर्त्रीं शक्ति के रूप में सावित्री है। मंत्र शास्त्र के अनुसार गायत्री तत्त्व तीन प्रकार के हैं। चतुष्पाद गायत्री प्रथम है। दूसरा सावित्री है जो बाला अतिबाला है। तीसरा सरस्वती मंत्र है जो ऋक के वेद मंत्र का भाग है। पर सामान्यतया इन तीनों को गायत्री ही कहते हैं। इनके मंत्र दशाङ्ग यन्त्रदशाङ्ग और तन्त्रदशाङ्ग होते हैं। सावित्री को कामधेनु भी कहते हैं।

७००. सच्चिदानन्दरूपिणी

वह परब्रह्मस्वरुपिणी आनन्दमयी है।

सत् कालातीत हैं, चित्-ज्ञान हैं, आनन्द-सनातनी सुख हैं। ये तीनों माँ के ही रूप हैं।

(सप्तम अध्याय समाप्त)

♦

अष्टम अध्याय

७०१. देशकालापरिच्छिन्ना

देश काल से मुक्त रहकर वह सदा सर्वदा एक समान विराजती हैं। यही उनके सच्चिदानन्द रूप की विशेषता है।

७०२. सर्वगा

अणु से ब्रह्म तक वह सबका जीवन रहती है। सत् भाव सदा रहता है।

७०३. सर्वमोहिनी

अपनी माया-चिद्विलासशक्ति से वह लोगों को तथ्य के मिथ्या मूल्यांकन द्वारा आनन्द मनाती हैं। जीव को मोक्ष या सत्य के अनुभव से विलग रखती है। इसी से जीव सदा विषयानन्द खोजता है।

७०४. सरस्वती

वह मोह हटाकर सरस्वती रूप में ज्ञान देती है। द्वन्द्वमय संसार में श्री सरस्वती के रूप से ज्ञान देती है। अन्न उपजने के हेतु खेत में खाद्य देते हैं कमल पंक में रहते हैं। इसी प्रकार असत्यमय वायुमण्डल में भी सत्य का समावेश रहता है। निर्गुण भी सगुण में रहता है। सरस्वती नामक नाड़ी भी है जो अरुन्धती हैं यह कुण्डलिनी को जगा देती है।

७०५. शास्त्रमयी

श्री देवी शास्त्ररूपा हैं। वेद, पुराण, उपनिषद् शास्त्र हैं। वह शास्त्रों में भरा ज्ञान है।

७०६. गुहाम्बा

भगवान कार्त्तिकेय की माँ गुहा में रहनेवालों की माता है। अध्यात्म का विशेष ज्ञान की गुफा है। माँ दिव्य पाठों में रहती है।

७०७. गुह्यरूपिणी

वह इन्द्रियों से अतीत है। गुह्योपनिषद् में इसका वर्णन है। इनका अदृश्य रूप है। कुण्डलिनी गुह्य रूपा है।

७०८. सर्वोपाधिविनिर्मुक्ता

माँ सभी उपाधियों से स्वतंत्र है।

७०९. सदाशिवपतिव्रता

वह सदाशिव की संगिनी है। संसार के सभी कार्यों को करते रहने पर भी माँ सदाशिव की सभी सेवायें करती है।

७१०. सम्प्रदायेश्वरी

माँ सम्प्रदायों की ईश्वरी है। श्री विद्या का ज्ञान सिद्ध गुरुओं द्वारा ही चलता है। पुस्तक मात्र के ज्ञान से नहीं कुछ होता है। सिद्ध शक्तिपात द्वार सम्प्रदाय की रक्षा करते हैं। सम्प्रदाय से भारती, परमहंस, परव्राजक इत्यादि का भी बोध है जो शंकराचार्य की परम्परा में है।

७११. साध्वी

७१२. यै

शुद्ध आचरण की नारी है। साधक ब्रह्ममय होने पर साधु है। माँ प्रणव का सार है। माँ अहंकार के रहकर शिव की सेवा करती है सो साध्वी है। ''ई'' से परब्रह्म का भाव है।

७१३. गुरुमण्डलरूपिणी

षडाम्नाय रूपी विशेष वैदिक साहित्य शिव ने दिया। 'गुरुमण्डल' के देवताओं का मंत्र इनमें है। माँ गुरुमण्डल रूपिणी है। क्योंकि शिव से अभेद है। योग शरीर में गुरुमण्डल महत्वपूर्ण पीठ है। सहस्त्रदल से नीचे द्वादश दल का यह पीठ है। अकथादि रेखात्रय से विभूषित है। इसमें सभी मातृका वर्ण है। त्रिकोण के तीनों कोनों पर ह ल क्ष विन्दु है। इसे अबलालय या योनिचक्र कहते हैं। इस त्रिकोण के मध्य में दो मणिपीठ मण्डल है जो बिन्दु और नाद हैं। मूलाधार से स्वर्णिम आभा लिए कुण्डलिनी 'स'कार के रूप में चित्रिणी से ऊपर उठती है और गुरुमण्डल में 'ह'कार से मिलती है। 'ह'कार विन्दु है, 'स'कार नाद है। दोनों का मिलन हंस भाव है। ये दोनों चन्द्रकिरण से शीतल होकर चमकते रहते हैं। ''श्री नाथादि गुरुत्रयं'' इत्यादि से उनकी पूजा करते हैं। प्रथम गुरु शिव हैं उनके शिष्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं। से दिव्यौध हैं। उनके शिष्य हैं वशिष्ठ, सनक और सनन्दन। से सिद्धौध हैं। व्यास से अपने गुरुतक मानबौध हैं। अन्यत्र इसका पूर्ण विवरण दिया जायगा।

७१४. कुलोत्तीर्णा

गुरुमण्डल से ऊपर जाने पर माँ कुलोत्तीर्णा कहलाती है। कुलोत्तीर्णा तूरीया है।

७१५. भगाराध्या

वह शिव, सूर्य, चन्द्र से पूजिता है। भग के अनेक अर्थ है। श्री, कीर्त्ति, मोक्ष, सरस, वीर्य, महत्त्व, योनि, नीति, इच्छा, ऐश्वर्य सौरव्य, निस्पृह, ज्ञान, यत्न, सौन्दर्य, वैराग्य, धर्म, प्रेम और बल। इनमें से किसी के द्वारा भी श्री देवी की पूजा हो सकती है। निर्गुण भाव में योगी श्री देवी को सम्वित्-स्वरूपिणी जानकर पूजा करते है।

उत्तर कौल लोग योनि की पूजा करते हैं। इसे प्रत्यक्ष योनि पूजा कहते हैं।

७१६. माया

वह भ्रान्ति रूप में विराजती है। परशांभवी माँ माया शक्ति है। उसकी व्यापकता अपरिमेय है। असत्य को भी सत्य रूप में दिखा सकती है।

उसकी सृष्टि की सभी वस्तुयें उसकी माया शक्ति से घिरी हैं माया के अनेकों नाम लघुस्तवराज में दिये हैं।

७१७. मधुमती

मधु आनन्द है। वह स्वयं ब्रह्माण्ड है। वेदों के मंत्र से प्रारम्भ होनेवाले हैं। ज्ञान की शप्त भूमिकायें हैं, उनमें सर्वोच्च का नाम मधुमती है। ध्यान से परे इन अवस्था में परमहंस लोग ही जा पाते हैं। वह स्वयं वह अवस्था है।

मधु फूलों का रस है। मधु-मद्य है। माध्वी, मध्वासव आदि अनेक पेय भी हैं। श्री देवी को उसमें आनन्द मिलता हैं बत्तीस ब्रह्म विद्याओं में अठारहवीं मधुविद्या है। छिन्नमस्ता देवी का एक रूप मधुमती भी है।

७१८ मही

सब जगह विद्यमान है। प्राण शक्ति रूप में है। मही पृथ्वी है। मही सरस्वती भी है। मही अदिति और उपमय भी है।

७१९. गणाम्बा

श्री देवी सभी वर्गों के गणों की माता है। प्रथम गण-गणपति की माँ

है।

७२०. गुह्यकाराध्या

शरीर के नौ प्रकट एवं दो गुप्त द्वार हैं। ग्यारहवाँ मनोद्वारम् है। यह आत्म गुहा है। योगी और देवतागण यहीं श्री देवी की पूजा करते हैं। चन्द्रमण्डल में परमात्मा स्थान है, जो शून्य है, वही यहाँ मनोद्वार है।

७२१. कोमलांगी

माँ के कोमल स्वरूप की पहचान मनोद्वार में कठिन है। योग साधना से जान सकते हैं।

७२२. गुरुप्रिया

ब्रह्म विद्या में दीक्षा देने वाले गुरु उन्हें प्रिय हैं। प्रथम गुरु भगवान कामेश्वर है। स्वगुरु, परम गुरु और परमेष्ठि गुरु से गुरु त्र्यम् होता है। तीनों का सामूहिक रूप भगवान कामेश्वर हैं जो परापर गुरु हैं। महाप्रलय में देवी इनमें मिल जाती है। इसीसे वह गुरु प्रिया हैं। आदि गुरु शिव की संगिणी हैं।

७२३. स्वतंत्रा

श्री विद्या को स्वतंत्र तंत्र कहते हैं। इससे सभी पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।

७२४. सर्वतन्त्रेशी

वह सभी तंत्रों की ईश्वरी है। उनकी अधिष्ठात्री देवी है। तंत्रों के उपाय से दिव्य शक्तियाँ वशीभूत होती है। माँ स्वतंत्रता है अत: साधकों के वश में आना नहीं चाहती है। जो योगी उनके रहस्य को जानते हैं उन्हें वह सत्पथ द्वारा ब्रह्मत्व देती है। वे ही उसे और उसकी शक्ति को पहचानते हैं।

७२५. दक्षिणामूर्त्तिरूपिणी

भगवान कामेश्वर ने महान् गुरु दक्षिणामूर्त्ति के रूप में अवतार लिया। वे बराबार दक्षिण दिशा की ओर ही देखते रहते हैं। इस रूप से उन्होंने योगियों और ऋषियों में ब्रह्म विद्या का प्रचार किया। सनक सनन्दन ने सभी दक्षिणामूर्त्ति से दीक्षा ली। श्री कामेश्वर और कामेश्वरी एक ही हैं। इसलिए माँ को दखिणामूर्त्ति रूपिणी कहा है। जब सनक और सनन्दन ब्रह्म विद्या की वास्तविकता से अबोध थे तो भगवान ने एक सोलह वर्षीय बालक का रूप

धारण किया और तूरियावस्था में मौन साधकर दक्षिण की ओर मुँह रखकर बैठ गये। अत: दिव्य गुरु दक्षिणामूर्त्ति हैं। वह माँ का ही स्वरूप है। निधाये सर्व विद्यनाम्। वह सभी विद्याओं के निधान हैं, खजाना है।

७२६. सनकादिसमाराध्या

यद्यपि सनकादि ऋषियों ने ब्रह्मत्व प्राप्त कर लिया था, तथापि व बराबर निरभिज्ञान होकर गुरुदेव श्री दक्षिणामूर्त्ति और श्री देवी की उपासना करते थे।

७२७. शिवज्ञानप्रदायिनी

माँ शिव तत्त्व का ज्ञान देती है। जिस किसी माँ या सम्प्रदाय के साधक उपासना करता है माँ ही विमर्श शक्ति के रूप में ज्ञान देती है। माँ की दया से ही शिव तत्त्व का बोध होता है। अखण्ड परब्रह्म या अविमुक्त तत्त्व का बोध ही शिव ज्ञान है। सगुण क्रियाओं में लीन रहते हुए भी शंकर पार्वती अपने भक्तों की ब्रह्मबोध से उद्दीप्त करने में समर्थ है। अद्वैत से ऊपर या पार, अविमुक्त अवस्था है।

७२८. चित्कला

शुद्ध चैतन्य का भाग ही चित्कला है जिसका आश्रय भक्तजन लेते रहते हैं। पद्म पुराण में कहा है कि भगवती भक्तों के मन में चित्कला होकर विराजती है। जिस योगी ने शिव ज्ञान तत्त्व में तत्त्व में दीक्षा ली है वे श्री देवी के चित्कला रूप से परिचित हो जाते हैं। योगी की इस अनुभूति के द्वार संशय छिन्न हो जाते हैं। जीवन नि:संदेह हो जाता है।

७२९. आनन्दकलिका

श्री देवी का चित्कला रूप (सगुण रूप) आनन्द पूर्ण है। यह एक विशेष अनुभूति है। माँ सबों में आनन्द कलिका होकर विराजती है।

७३०. प्रेमरूपा

प्रेम या शक्ति उसके स्वरूप है। मातृत्वभाव है।

७३१. प्रियङ्करी

भगवान शिव को प्रिय लगने वाला माँ का स्वरूप है। लोगों को वह प्रिय वस्तु देती है।

७३२. नामपारायणप्रीता

माँ नाम जप से प्रसन्न होती है। नाम से यहाँ वेद मंत्र, गायत्री या पञ्चदशी का भाव है। परायण से अनुसंधान का तात्पर्य है। सोलह स्वर, 34 व्यञ्जन से बने उसके सभी नाम है, रूप है। ''कीर्त्तये नाम साहस्रं इदं मत् प्रियते सदा'' अ से क्ष तक मातृकाओं का प्रसार है। ये वर्ण शिव शक्त्यात्मक नादमय है। मंत्र इनके ही स्रोत से बनते हैं। स्त्रोत माला में इनके नामों की माला है। सगुण रूप में माँ इन नामों के कीर्तन से सदा प्रसन्न रहती है। ललिता सहस्रनाम से श्री देवी अतप्रसन्न होती है। बीजाक्षरों के नाम परायण की जानकारी सद्‌गुरु से लेना उचित है।

७३३. नन्दिविद्या

नन्दी भगवान कामेश्वर का वाहन है। शिव शक्ति की सेवा में रत रहने से वे नन्दीश्वर कहलाते हैं। उन्हें कामरूप शक्ति प्राप्त है। वे कोई रूप धारण कर सकते हैं। नन्दीश्वर की पूजा विधि सर्वोपरि है। इसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। अमनस्क अवस्था रहती है। भीतर बाहर परब्रह्ममय रहते हैं। इसे विरजा स्थिति कहते हैं। श्री देवी विद्या का सिद्धांत है।

इसीसे यह नन्दिविद्या कही जाती है।

७३४. नटेश्वरी

भगवान शिव आनन्द भैरव ताण्डव में निमग्न हो जाते हैं। प्रात: सन्ध्या वह सृजन और संहार का नृत्य करते हैं। माँ भी अपने पति के साथ नाचती है। अर्द्धनारीश्वर स्त्रोत में इसका वर्णन है। माँ का नृत्य और शिव का ताण्डव लास्य है।

७३५. मिथ्याजगदधिष्ठाना

माँ के हाथों में सर्प रज्जु जैसे मिथ्या संसार का अधिष्ठान है।

७३६. मुक्तिदा

माँ मुक्ति देती है। उसी की कृपा से मुक्ति मिलती है। जिस तरह भक्तों के लिए उसने बन्धन की रचना की उसी तरह मुक्ति भी देती है। योग्य योगियों को वह मुक्त करती है।

७३७. मुक्तिरूपिणी

माँ स्वयं मोक्षलक्ष्मी है।

७३८. लास्यप्रिया

लास्य, मंत्र का गुप्त अर्थ है। स्त्री के नृत्य को लास्य कहते हैं। माँ उसे पसन्द करती है। यहाँ सृजन और संहार का नृत्य है। माँ ऐसे नृत्य से विनोद करती है।

७३९. लयकरी

लय तूरीया के परे है। अतीत पद है। पाँचवीं अवस्था है। मन की क्रिया शून्य हो जाती है। माँ अनुभूति देती है। व्यक्तिगत चैतन्य समष्टिगत एकाग्र चैतन्य में विलीन हो जाता है।

७४०. लज्जा

''सर्व भूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता'' वह विवेक रूप से विद्यमान रहती है। उसका ''ह्रीं'' बीज है। यह शक्तितंत्र है। निर्विकल्प समाधि का संकेत है।

७४१. रम्भादिवन्दिता

स्वर्ग की देवियाँ रम्भा आदि उसकी वन्दना करती है। वे माँ के दरबार की नायिकायें हैं।

७४२. भवदावसुधावृष्टि

संसार में, जन्म मरण के चक्र में माँ अमृत वृष्टि के द्वारा भव बन्धन से छुड़ाती है अपने भक्तों को। जीव भाव मिट जाता है। भवदा-मोक्ष है। वसुधा-सांसारिक वैभव है। अपने उपासकों को माँ मुक्ति का आनन्द देती है।

७४३. पापारण्यदवानला

माँ अपने भक्तों के पापों के जंगल को जला डालती है। पाप का तनिक अंश भी शेष नहीं रहता।

७४४. दौर्भाग्यतूल वातूला

दुर्भाग्य (तूल वातूला) दूर करती है। तूफान से जैसे रूई उड़ जाता है।

७४५. जराध्वान्तरविप्रभा

सूर्य की किरणें जैसे अन्धकार को दूर करती है। उसी तरह माँ बुढ़ापा दूर भगाती है। माँ अविद्या की जड़ता दूर करती है।

७४६. भाग्याब्धिचन्द्रिका

माँ सौभाग्य का समुद्र बना देती है। पूर्ण चन्द्र भी समुद्र में तरंगों की उछाल देखता है। माँ की कृपा वृष्टि भक्तों पर होती है। उनका सौभाग्य बढ़ जाता है।

७४७. भक्तचित्रकेकिधनाधना

मेघ माला को देखकर जिस तरह मयूर मत्त होकर नाचता हैं उसी तरह भक्तों के मन भी माँ के दर्शन की मस्ती में नाच उठते हैं। योगी अपने सतत अभ्यास से माँ के चितकला स्वरूप का ध्यान करते हैं तो उसका मन योग मार्ग की कठिनाइयों और जटिलता को भूलकर मत्त होकर नाचता है।

७४८. रोगपर्वतदम्भोलिः

जिस तरह इन्द्र का वज्रायुध पर्वतों को नष्ट कर देता है उसी तरह माँ भी अपने वरदान से रोगों को नष्ट करती है। आध्यात्मिक उपलब्धियों के बाद भी योगियों को शारीरिक एवं मानसिक रोग होते हैं। माँ सबों को दूर करती है।

७४९. मृत्युदारुकुठारिका

माँ, मृत्यु के पेड़ पर पड़ने वाली कुल्हाड़ी है।

७५०. महेश्वरी

मही कामधेनु है। शिवगीता में महेश्वरी को संसार की सबसे बड़ी स्वामिनी कहा है। इस नाम से 756 वे नाम तक माँ के भयावह रूप का वर्णन है।

७५१. महाकाली

महाकाल शिव की पत्नी है। उज्जैन की रानी है। मृत्यु को नष्ट करने से महाकाली है। वह दश महाविद्याओं में प्रथम है।

७५२. महाग्रासा

बड़े ग्रास या कौर से खाती है। प्रलय में एक ही ग्रास में समस्त जगत को खा लेती है।

७५३. महाशना

माँ सबको अपना ग्रास बना लेती है।

७५४. अपर्णा

पत्ते हैं ही नहीं। शिव के लिए जब उसने अपने तन को तपस्या से सुखा डाला तो अपर्णा बनीं। पत्ते खाने भी उसने छोड़ दिये थे।

शिव के बिना माँ को कुछ भी नहीं भाता था।

७५५. चण्डिका

दुष्टों से क्रुद्ध रहने वाली। श्री देवी की भयावनी मूर्त्ति चण्डिका देवी हैं। उसने चण्ड राक्षस का नाश किया। चण्डिका जी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का समष्टि रूप है। नवदुर्गाओं में एक चण्डिका है। वह अष्टमूर्त्तियों में भी एक है। नव कुमारियों में वह छः वर्ष की बालिका है।

७५६. चण्डमुण्डासुरनिषूदनी

चण्ड और मुण्ड नामक दैत्यों को माँ ने मार डाला।

७५७. क्षराक्षरात्मिका

वह शाश्वती और अशाश्वती भी है। संसार और कूटस्थ भी है। वह सत्य और असत्य दोनों है।

७५८. सर्वलोकेशी

श्री देवी चण्डी रूप में सर्वमयी हैं। वह चौदहो भुवन की स्वामिनी है।

७५९. विश्वधारिणी

जिसने समस्त विश्व को धारण कर रखा है। माँ विश्वगर्भा है।

७६०. त्रिवर्गदात्री

वह धर्म, अर्थ और काम देती है।

७६१. सुभगा

श्री चण्डी देवी सभी वैभव देती है। वह सूर्य का आलोक देती है। वह ज्ञानदायी है।

७६२. त्र्यम्बका

माँ तीन आँखोंवाली है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि उनके नयन हैं। वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की जननी है। उनकी दृष्टि स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

७६३. त्रिगुणात्मिका

सत्व, रज और तम का रूप माँ धारण करती है।

७६४. स्वर्गापवर्गदा

स्वर्ग का सुख अल्प है। अपवर्ग–मोक्ष सुख अनन्त है। माँ दोनों देती हैं।

७६५. शुद्धा

माँ रागरहित परम निर्मला है। माँ द्विन्द्वविहीन ज्ञान है।

७६६. जपापुष्पनिभाकृतिः

माँ का रूप जपापुष्प की भाँति लाल है।

७६७. ओजोवती

ओजस परम तत्त्व है जिसमें तेज भरा रहता है। योग साधना में परिपक्व होने से ओजस की सृष्टि होती है। शरीर में एक चमक आ जाती है जो आँखों में चमकती है। सभी वेद और शास्त्र इस ओज का गुणगान करते हैं। गायत्री के ओजस की महिमा विख्यात है। माँ ओजोवती कहलाती है। शरीर का अष्टम धातु है। योगी के पसीने से कमल फूल की सुगन्धि आती है। आँखों में ब्रह्मतेज का समावेश हो जाता है। ओजस की सृष्टि में इन्द्रियों का व्यापार क्षीण हो जाता है। योगी को मानसिक शान्ति मिलती है। यह शक्ति श्री देवी की ही शक्ति है।

७६८. द्युतिधरा

प्रकाश को धारण करती है। ज्ञान ही वह प्रकाश है। कोई कोई उसे द्युतिधरा कहते हैं। ओजोवती होने से वह ब्रह्मतेज से चमकती है।

७६९. यज्ञरूपा

भगवान विष्णु को यज्ञरूप कहते हैं। श्री देवी ने ही विष्णु अवतार लिया इसी से वह यज्ञ रूपा हैं। माँ यज्ञ बनकर रहती है। भावनोपनिषद् के अनुसार माँ अन्तर्याग है।

७७०. प्रियव्रता

सभी व्रत एवं प्रतिज्ञा बनकर वह रहती है। व्रत तो भोजन है। माँ का भोजन हमरा व्रत है।

७७१. दूराराध्या

अयोग्य लोगों के लिए माँ की साधना कठिन है। बिना माँ के वरदान के उनकी पूजा कठिन है। पूर्वजन्मों की साधना का फल श्री विद्या में लगना है।

७७२. दुराधर्षा

माँ की कृपा के बिना उनकी साधना असम्भव ही है।

७७३. पाटलीकुसुमप्रिया

उन्हें फूलों के लिए प्रेम है। उनमें गुलाब की तो प्रभा ही है। शिव को विल्व प्रिय है और पार्वती को पाटल।

७७४. महती

माँ पूजायोग्य सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। अपनी महानता से वह स्वयं परिचित हैं।

७७५. मेरुनिलया

मेरु पर्वत पर माँ का सुन्दर आवास है। मूलाधार के सप्त कुलपर्वतों में मेरु भी एक है। श्री चक्र में विन्दु या नवम् भाग ही मेरु है। श्री चक्र के तीन क्रम है भूप्रस्तार, कैलाश प्रस्तार और मेरु प्रस्तार। जप माला के दो अंग मेरु के निकट मिलते हैं। (9) सभी वीजाक्षरमंत्र मेरु मंत्र कहे जाते हैं। शून्य से 1 बना और 9 तक गया, फिर शून्य में मिला। 9 को मेरु संख्या कहते हैं। मेरु वह स्वर्णिम पर्वत है जहाँ माँ विराजती है। द्वादशान्त का केन्द्र मेरु है। नौ वर्णों का मंत्र मेरु मंत्र है। जिसकी अधिष्ठात्री देवी श्री ललिता जी हैं। सनत्कुमार, सनन्दन और वशिष्ठ संहिताओं ने नित्या षोडशिका के पूजा क्रम में मेरु का वर्णन है।

७७६. मन्दारकुसुमप्रिया

माँ मन्दार फूल पसन्द करती है। मन्दार स्वर्ग पुष्प है। उसे श्वेतार्क भी कहते हैं।

७७७. विराराध्या

महायोगी, वीर, देवता, त्रिमूर्त्ति वीर कहे जाते हैं। श्री देवी की ये पूजा करते हैं। ये महावाक्यों का स्मरण करनेवाले हैं।

७७८. बिराड्रूपा

चौदहो भुवन का स्वामी वैश्वानर रूप में है।

७७९. विरजा

रज नहीं है। सत्व ही हैं। माँ गुणातीता है।

७८०. विश्वतोमुखी

माँ एक बार चारों ओर देखकर, कहाँ क्या होता है सब कुछ समझ जाती है।

७८१. प्रत्यग्रूपा

माँ सृष्टि के दुर्गुणों को जानती है। उस पर नियंत्रण रखती है उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी है।

७८२. पराकाशा

वह अनन्त आकाशमयी है। 'परमेव्योम्नि प्रतिष्ठिता' है। सृष्टि क्रम में आत्मा का प्रथम आवेश आकाश है।

७८३. प्राणदा

आकाश से परे माँ प्राणदायिनी है। माँ पञ्चभूतों में प्राण देती है।

७८४. प्राणरूपिणी

श्री देवी हंस (प्राण) रूपिणी है।

७८५. मार्तण्डभैरवाराध्या

अष्टभैरवों में एक मार्त्तण्ड भैरव है जिन्होंने ललिता जी की पूजा की। जब भैरव ने दिव्यमणि मूर्त्ति से माँ की पूजा की तो प्रसन्न होकर उन्हें माँ ने प्रकाश स्वरूप बना दिया। तब से वे मार्त्तण्ड भैरव कहलाए। सूर्य में रहने वाले नारायण हैं वह। द्वादश आदित्यों में एक मार्त्तण्ड हैं।

७८६. मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधू

राज्यश्यामला नामक मन्त्रिणी को वह शासन कार्य देती है।

७८७. त्रिपुरेशी

तीन पुरों की ईश्वरी है। श्री चक्र के सर्वाशापरिपूरक चक्र की स्वामिनी है।

७८८. जयत्सेना

माँ की सारी सेना विजयिनी है।

७८९. निस्त्रैगुण्या

वह तीनों गुणों से ऊपर है।

७९०. परापरा

वह मित्र भी, शत्रु भी है। वेद, पुराण, शास्त्र-अपरा विद्या है। वर्णन से परे परा है। वह दोनों है। दोनों द्वारा वह पूजी जाती है।

७९१. सत्यज्ञानानन्दस्वरूपा

वह सचिदानन्दमयी है। परा और अपरा का बोध है, वह आनन्दमयी चमकती रहती है।

७९२. सामरस्यपरायणा

गुह्यागार में शिव शक्ति का मिथुन होता है। महाशून्य में सामरस्य होता है।

७९३. कपर्दिनी

वह शिव की संगिनी है। आनन्दमय स्वरूप है।

७९४. कलामाला

शिव से मिलते समय वह सभी कलाओं से पूर्ण द्युतिमान रहती है।

७९५. कामधुक्

वह कामधेनु गौ की तरह सब पूरा करती है।

७९६. कामरूपिणी

माँ प्रेम और इच्छा का स्वरूप बनी रहती है।

७९७. कलानिधिः

वह अपनी कला से शिव को मुग्ध कर लेती है। शिव सूत्र के अनुसार वह सभी क्रियाओं की भोक्त्री है।

७९८. काव्यकला

माँ की कृपा से लोग कवि और कलाकार बन जाते है। माँ ही नाट्य, काव्य एवं साहित्यमयी है।

७९९. रसज्ञा

शिव शक्ति सामरस्य के ज्ञान से नवरस धन्य हो जाते हैं। माँ रसास्वादन करती है। माँ 'रसोवैस' को समझती है। माँ 'प्रज्ञा' की सभी विकृतियों से रसानुभूति लेती है।

८००. रसशेवधिः

रस या आनन्द का सागर है। भगवान कामेश्वर का वह शृंगार करती है।

(अष्टम अध्याय समाप्त)

♦

नवम् अध्याय

८०१. पुष्टा

सामरस्य से वह पुष्ट रहती है। सोम कलाओं में पुष्टा एक है।

८०२. पुरातना

जो पहले से ही रहती आ रही है। माँ की निज शक्ति है।

८०३. पूज्या

प्रारम्भ से ही देवता उनकी पूजा करते हैं।

८०४. पुष्करा

आकाश-नाद या नादमयी है। निज शक्ति से सूक्ष्म नाद और फिर नाद ब्रह्मा पुण्यजल की देवी पुष्करा है।

८०५. पुष्करेक्षणा

उसमें अखण्ड परब्रह्म का भाव है। उसकी आँखें कमल की तरह है।

८०६. परंज्योतिः

श्री देवी से अखण्ड प्रकाश निकलता रहता है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि की ज्योतिर्मयी आँखों को वह देखती है। वह मन को प्रकाश में लाती है।

८०७. परंधाम

सभी अवस्थाओं से परे उसका नाम है। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तत् धामं परमं मम्। तूरीया, तूरीयातीत, साक्षी, आत्मा, गौरी, शान्ति एवं सत्य उसके धाम के नाम रूप है।

८०८. परमाणुः

बीज रूप में बट बृक्ष जैसे छिपा रहता है। माँ वैसे ही 'अणोरणीमान्' हैं।

८०९. परात्परा

वह अष्टमूर्त्ति या त्रिमूर्त्ति से भी परे है।

८१०. पाशहस्ता

माँ के हाथ में पाश है। 'रागस्यरूपपाशाढ्या' पाठ है। ऊपर वाले बायें हाथ में पाश है, भक्तों के लिए स्नेह है, राग है।

८११. पाशहन्त्री

जीव सदा अष्टपाश से घिरा रहता है। सच्चे योगी श्री देवी का वरदान पाते हैं। पाश काटकर माँ शिवत्व देती है। माँ मुक्ति देती है।

८१२. परमन्त्रविभेदनी

वह शत्रु भाव का नाश करती है। मनु से दुर्वासा तक बारह भक्त हैं जिन्होंने श्री देवी की पञ्चदशी की साधना अपने ढंग से की और मन्त्रों को भेदकर वे ललिता जी के चरणों तक पहुँचे और उनकी प्रसन्नता तथा कृपा प्राप्त की। विभिन्न देवताओं के सप्त कोटि महामन्त्र है। बहुत से मन्त्र षडाम्नाय द्वारा प्रकट होते हैं। श्री देवी इन मन्त्रों का वर्गीकरण किया है, इसी से इन्हें परमन्त्रविभेदिनी कहते हैं।

८१४. मूर्ता

सगुण रूप में श्री देवी अनेक रूपों में रहती है।

८१४. अमूर्ता

इन्द्रियों की पहुँच के परे उनका अमूर्त रूप है। निर्गुण भाव है। वह अदृश्य है।

८१५. अनित्यतृप्ता

माँ नित्य कलाओं से पूजी जाती है फिर भी अन्य पूजा पद्धतियों से भी तृप्त होती है। कल्याणानन्द भारती ने कहा है कि वह सतत तृप्त रहती है। वह निप्य तृप्ता है।

८१६. मुनिमानसहंसिका

श्री देवी हंसिनी की तरह सुधा सिन्धु में रहती है। वह मुनियों की मानस हंसिनी है।

८१७. सत्यव्रता

तीनों गुणों में रहने पर भी उसमें परब्रह्म के सत्य तत्त्व का व्रत है। उसने व्रत को ही साधा है।

८१८. सत्यरूपा

वह स्वयं सत्य है, ब्रह्म है।

८१९. सर्वान्तर्यामिणी

सभी में अदृश्य रूप से अन्तर्यामी बनकर वही है।

८२०. सती

श्री पतिदेव श्री कामेश्वर के लिए वह पतिव्रता शिरोमणि है। वह दक्षपुत्री सती रही है। सभी सती नारियों के रूप में विराजती है।

८२१. ब्रह्माणी

ब्रह्म स्वयं आनन्दमय कोश है अणी पुछ है। 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठिता' श्रुति वाक्य है। वह आनन्दमय कोश में रहती है। वह सत्य की अन्तर्हित शक्ति है।

८२२. ब्रह्मजननी

८२३.

ब्रह्म जगत या वेद है। वह उनकी माता है। माँ की दया सबके ऊपर है।

८२४. बहुरूपा

सगुण भाव में माँ अनेकों रूप नाम धारण किए रहती है। "बहुनि यस्य रूपाणि स्थिराणि च चारिणी, देव मनुष्य स्थिर्यान च बहुरूपा ततः शिवे।"

८२५. वुधार्चित

पण्डितजन उनकी अर्चना करते हैं। श्री देवी अपने ज्ञानी भक्तों की विधिवत् अर्चना से प्रसन्न होती है।

८२६. प्रसवित्री

आकाश से समस्त सृष्टि तक उनकी सृष्टि है। अतः वह प्रसवित्री है।

८२७. प्रचण्डा

वह क्रोधपूर्ण भयावह रूप धर लेती है। तैतरीय उपनिषद् का कहना है "उसके भय से हवा बहती है।"

८२८. आज्ञा

माँ की आज्ञा से सभी पदार्थ निकले।

ज्ञा आत्मा है

आ उसका आनन्द है।

माँ अपनी आज्ञा से शासन और अनुशासन चलाती है।

८२९. प्रतिष्ठा

सबों की आधार है, सबकी भूमिका है। शिव के शैवगमन के अनुसार जिस गुण से भक्त की भक्ति बढ़े प्रतिष्ठा है।

८३०. प्रकटाकृतिः

माँ प्रकट स्वरूप भी दिखा देती है। वह स्वयं कृपा कर दिखा देती है।

८३१. प्राणेश्वरी

पञ्च प्राण की ईश्वरी है। वह प्राणों का प्राण है।

८३२. प्राणदात्री

सभी जीवों की आत्मा है।

८३३. पञ्चाशत्पीठरूपिणी

अ से क्ष तक शब्द ब्रह्म के रूप में हैं।

८३४. विश्रृङ्खला

सभी जीव अपने कर्मबन्धन में बँधे हैं। पुण्य और पाप के अनुसार कर्मों की शृंखला में माँ जीवों को रखती है। माँ का वरदान सभी बन्धनों को काट डालता है।

८३५. विविक्तस्था

एकान्त में स्थित रहती है। निर्जन स्थान में, आकाश में दिव्य प्रवाह चलते रहते हैं। साधक को चैतन्यानुभूति होती है। सत्य और असत्य का विवेचन करने वाले मुनिजन ही एकान्त का सुख जानते हैं। माँ उनके साथ रहती है।

८३६. वीरमाता

वीर साधकों की माता है। गणपति भी वीर है। स्वभाव वीर, विभव

वीर, सिद्ध वीर चरित्रवान् लोग है। कठिनाइयों के रहते हुए भी वे एकाग्र चित्त से माँ का ध्यान कर उपासना में संलग्न रहते हैं।

८३७. वियत्प्रसूः

उसने आकाश की सृष्टि की।

८३८. मुकुन्दा

वह मुक्ति देती है। वह गोपाल कृष्ण है।

''कदाचिद्या ललिता पुँरूपा कृष्ण विग्रहा'' (तंत्रराज)

मुकुन्द विष्णु हैं। विष्णु और श्री देवी साथ ही आये हैं। श्री देवी मुक्ति देती है। इससे माया पर विजय करते हैं।

८३९. मुक्तिनिलया

सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य, सायुज्य और ब्रह्म की अवस्थायें देती हैं। वह मुक्ति का निलय है, स्थान है।

८४०. मूलविग्रहरूपिणी

श्री देवी आदि शक्ति है। मूल विग्रह है। मूल रूप से ही उसने सभी नाम रूप रखे हैं। षडाम्नाय के उपदेशों के अनुसार चलने से व्यक्ति मुक्ति पाता है। मूल से ही बाला एवं आवरण देवता निकलते है। वह राज राजेश्वरी है।

८४१. भावज्ञा

जो भाव को जानती है। दूसरे के विचार को ध्यान से जानने को भावज्ञा कहते हैं। यह ''परेंगिताज्ञानसिद्धि'' है।

८४२. भवरोगघ्नी

संसार क्षणिक होते हुए भी सत्य मालूम देता है। यह स्वयं एक रोग है जिसको माँ दूर करती है। माँ मृत्यु से पार ले जाती है।

८४३. भवचक्रप्रवर्तिनी

वह शिव के मन को रक्षित रखती है। संसार चक्र को बदलती रहती है। वह जन्म मरण के चक्र को उलट देती है।

८४४. छन्दःसारा

छन्द वाणी का लय है। माँ वेदों या छन्दों का सार है। गायत्री स्वरूपा है। इच्छा शक्ति रूप में वह सबों का सार है।

८४५. शास्त्रसारा

सभी शास्त्रों के भीतर माँ का छिपा हुआ सार तत्व है। धर्मशास्त्र का सार मातृतत्त्व है।

८४६. मन्त्रसारा

सभी वेद मंत्रों का सार तत्त्व माँ है।

८४७. तलोदरी

तल या पाताल उनका उदर है। उसकी कटि क्षीण है। उसके सर्वांग सुन्दर ही हैं। कुण्डलिनी चित्रिणी के भीतर चमकती है।

८४८. उदारकीर्ति

उसका यश व्यापक है। गुप्त रूप से कुण्डलिनी का प्रकाश साधकों को मिलता है। तब से उसकी उदारता और कीर्त्ति का अनुमान पाते हैं।

८४९. उद्यामवैभवा

उसके वैभव की सीमा नहीं है। अभ्यास से कुण्डलिनी चन्द्रमण्डल में पहुँचती है। ज्योतिरूप में उसे साधक देखते हैं।

८५०. वर्णरूपिणी

वह चारों वर्णों के रूप में है। मातृका वर्ण भी उसके ही रूप हैं। कुण्डलिनी का परस्वरूप चमत्कृत है।

८५१. जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिनी

जन्म, मृत्यु और जरा पर विजय पाने वाले साधकों को वह शान्ति और विश्राम देती है। चन्द्रमण्डल में सूर्य और अग्नि से अमाकला द्रवित होती है। स्नायु तन्तुओं में अमृत स्राव होता है। योगी को विश्रान्ति मिलती है। यह सामरस्य की अवस्था है। मूलाधार की कुण्डलिनी का सम्बन्ध जन्म से और सहस्रार में मृत्यु से है दोनों के बीच जरा है। पूर्ण आत्मानुभूति ही विश्रान्ति है। वह लता साधना है।

८५२. सर्वोपनिषदुद्धुष्टा

सभी उपनिषदों का उद्घोष उसके समर्थन में है। सगुण और निर्गुण

रूप का वर्णन है। उप-ब्रह्म के निकट पहुँचना है।

८५३. शान्त्यातीताकलात्मिका

शान्त्यातीता द्वन्द्वविहीन अवस्था है। पराकाश में यह सबके साथ रहती है। सगुण भाव में भगवान कामेश्वर शान्ति स्वरूप में रहते हैं। निर्गुण में शान्त्यातीता कला है।

८५४. गम्भीरा

शास्त्रों में वह गम्भीर कही गई है। चैतन्य का गहरा सरोवर है।

८५५. गगनान्तस्था

वह आकाश में स्थित है। बिना किसी आसक्ति के वह अकाश में स्थित है। गगन आकाश है। लक्ष्य है। स्व अवस्था है। अतः सत्य आकाश से परे है।

८५६. गर्विता

वह संसार की सृष्टिकर्त्रीं के रूप में गर्विता है।

८५७. गानलोलुपा

सामगान के सुनने में वह मन लगाती है। वह गान द्वारा मुग्ध हो जाती है।

८५८. कल्पनारहिता

वह अखण्ड परब्रह्म है, अतः कल्पना से रहित उसका स्वरूप है।

८५९. काष्ठा

वह इच्छा शक्ति है परब्रह्म की पराकाष्ठा भी है। काष्ठ-लकड़ी-जड़ता-शान्ति का द्योतक है। भीम पत्नी को लोग काष्ठ कहते हैं।

सा 'साष्ठा' सा परागतिः कठोप निषद्।

८६०. अकान्ता

अक-पाप है, अन्त-नाश है। वह पापराशि का नाश करती है। अकान्ता वह बिना चमक के है। अदृश्य का सूचक है।

८६१. कान्तार्धविग्रहा

कान्त-कामेश्वर, भगवान शिव प्रकाश विन्दु तत्त्व है। कामेश्वर विमर्श विन्दु तत्त्व है। दोनों का संयोग मिश्र विन्दु तत्त्व है। मिश्र विन्दु अपने

स्थूल भाव में अर्द्धनारीश्वर स्वरूप है। इसीसे श्री देवी को कान्तार्धविग्रहा कहते हैं। भक्तों के सम्बन्ध में भी यही भाव जगता है।

८६२. कार्यकारणनिर्मुक्ता

कारण अव्यक्त तत्त्व है। कार्य नाम रूप का संसार है। माँ दोनों से परे है।

"न तस्य कारणं कार्य च विद्यते" श्वेताश्वरोपनिषद्

८६३. कामकेलितरङ्गिता

माँ के भाव में शिव की लीला के तरङ्ग हैं। काम इच्छा शक्ति है। शिव के साथ माँ असीम आनन्द भोगती है।

८६४. कनत्कनकताटङ्का

जब माँ भगवान शिव के साथ होती है तो उसके कानों में स्वर्ण कर्णफूल रहते हैं।

८६५. लीलाविग्रहधारिणी

अपने भक्तों के अनुकूल वह लीला विग्रह धारण करती है। भगवान शिव के संग रहने में सामरस्य भाव में अनेक लीलायें करती है।

८६६. अजा

माँ जन्म से परे है। अखण्ड परब्रह्म भाव से अवतरित हुई है।

८६७. क्षयविनिर्मुक्ता

वह क्षय या नाश से मुक्त है। वह शाश्वत सत्य है अतः उसके निकट मृत्यु नहीं है।

८६८. मुग्धा

मूर्ख माँ के निकट नहीं है। मुग्धा विवेक से माँ भरी है। क्षय से मुक्त होने से वह सदा मुग्धा है।

८६९. क्षिप्रप्रसादिनी

अपने भक्तों पर शीघ्र दया करती है। माँ समर्थ योगियों पर कृपा कटाक्ष करती है।

८७०. अन्तर्मुखसमाराध्या

निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि में स्थित लोगों पर वह शीघ्र दया करती

है। ऐसे लोग सदा उनकी आराधना करते हैं। सद्गुरु की कृपा से अन्तर्मुखी दृष्टि मिलती है और साधक धन्य हो जाता है।

८७१. बहिर्मुखसुदुर्लभा

श्री देवी को मात्र वाह्य पूजा से प्रसन्न कर लेना कठिन है। वाह्य पूजा से अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती है। अतः भीतर में ही विचार से उसका अनुसन्धान करना है।

८७२. त्रयी

कौल, समया, मिश्र तीन मार्ग हैं देवी के पूजा के। माँ तीनों में प्रकाशिता रहती है।

८७३. त्रिवर्गनिलया

सभी त्रिवर्गों में वह रहती है। तीन लोक, तीन गुण, तीन पदार्थ, तीन मात्रा रूप, तीन पाद इत्यादि में, ऊँ में वह है। सिद्धरूपिणी, ज्ञानरूपिणी और मोक्षलक्ष्मी रूप में है।

८७४. त्रिस्था

सगुण, निर्गुण और परब्रह्म भाव में स्थिता है।

८७५. त्रिपुरमालिनी

श्री चक्र का षष्टम आवरण है। सर्वरक्षा कर चक्र की देवी है। वहाँ चक्रेश्वरी है। अन्तर्दशार चक्र की स्वामिनी है। यह 'त्रि' सभी मालायें पहने हैं।

८७६. निरामया

वह भवरोग से मुक्त है।

८७७. निरालम्बा

उसका कोई आधार नहीं है। आज्ञाचक्र के ऊपर निरालम्बपुरी में शान्तिपूर्वक विराजती है।

८७८. स्वात्मारामा

माँ अपने आत्मा में रमण करती है। आत्मगुहा में अपने देव को पूजती रहती है।

८७९. सुधास्त्रुतिः

सहस्त्रसार में ललिता जी के ध्यान से साधक सुधा धारा से आप्लावित होता है।

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे

प्रतिप्रयाणेप्य मृताय मानां

अन्तः पदव्यां अनुसञ्चरन्तीं

आनन्द मुद्रां अवलोक्यामः

८८०. संसार-पङ्क-निर्मग्न-समुद्धरण-पण्डिता

पंक-कीच है, द्वन्द्व है। श्री देवी संसार पङ्क से उद्धार करने में पण्डिता है। वाराही शक्ति का प्रताप है।।

८८१. यज्ञप्रिया

नवावरण अर्चना को जगत ज्ञान कहते हैं। श्री देवी इस यज्ञ से अति प्रसन्न होती है। वेदों के प्रतिपाद्य यज्ञ ही माँ को प्रसन्न कर सकते हैं। यज्ञ विष्णु है और यज्ञप्रिया लक्ष्मी है।

८८२. यज्ञकर्त्री

यज्ञ के सिद्धान्तों को बताती है। यज्ञ की महत्ता जानकर गुप्तरूप से स्वयं वह यजन करती है। सुसंगतिकरण करती है। यज्ञ के पूर्णता के हेतु स्त्री साथ में रहती है।

८८३. यजमानस्वरूपिणी

यजमान में यज्ञदीक्षिता शक्ति के सूक्ष्मरूप में माँ विद्यमान रहती है। यज्ञ का व्रत लेने वाला यजमान रहता है। शिव की अष्ट मूर्त्तियों में एक यजमान है।

८८४. धर्माधारा

माँ धर्मों का आधार है। वेद विहित कर्म ही धर्म है। माँ इसके मूल में है। यज्ञ की वह मूलशक्ति है।

८८५. धनाध्यक्षा

महालक्ष्मी रूप में वह धन की अधिष्ठात्री देवी रहती है। कुबेर ने भी श्री विद्या की उपासना की थी। ध्याता ध्येय अभेद रहे।

८८६. धनधान्यविवर्धिनी

माँ धन और भोजन में वृद्धि करती है। अपने भक्तों को दोनों देती है।

८८७. विप्रप्रिया

माँ ब्राह्मणों की प्रिया है। ब्राह्मण वेदविहित मार्ग पर चलते हैं इससे माँ की कृपा उन पर रहती है।

८८८. विप्ररूपा

गुप्त भाव से विप्रों में रहती है।

८८९. विश्वभ्रमणकारिणी

भ्रामयण सर्व भूतानि यन्यारूढ़ाणिमायया गीता। माँ संसार में, ग्रह नक्षत्र में भ्रमण करती रहती है।

८९०. विश्वग्रासा

प्रलयकाल में संसार को ग्रास की तरह अपने में लिए रहती है।

८९१. विद्रुभामा

माँ विद्रुम की आभा लिए है, मोती जैसी चमक है। वह विशुद्ध ज्ञान स्वरूपा है।

८९२. वैष्णवी

वह महालक्ष्मी है, भगवान विष्णु की संगिनी है। अष्टमूर्तियों में एक विष्णु है। माँ उनकी देवी है। अष्ट शक्तियों में एक वैष्णवी है।

८९३. विष्णुरूपिणी

श्री देवी त्रिमूर्त्ति का स्वरूप है। वह विष्णुरूपिणी नाम से स्तुत्य है।

८९४. अयोनिः

योनि मूल कारण है। माँ के लिए ऐसा कोइ कारण नहीं। योनि श्री चक्र का प्रथम त्रिकोण है। अखण्ड परब्रह्म कामेश्वर और कामेश्वरी रूप में अभेद हैं। माँ अव्यक्त से परे है।

८९५. योनिनिलया

माँ श्री चक्र के त्रिकोण में चिन्तामणि गृह में निवास करती है। योनि पृथ्वी है। माँ मूल प्रकृति है। प्रथम माया शक्ति है इसी से योनि निलया कहा है।

८९६. कूटस्था

कूट अविद्या है अज्ञान है। वह मूल अज्ञान है। कूट पर्वत की चोटी है। कूट लुहार की निहाई है स्थिर। कूट अनेकों विश्व है। सब माँ में है। कूट-पञ्चदशी मंत्र के भेद है। कूटस्थ मूलपुरुष है ब्रह्म है। श्री देवी अखण्ड परब्रह्मरूप में विराजती है।

८९७. कुलरूपिणी

कुण्डलिनी रूप में सभी जीवों में विद्यमान रहती है। कोई भी स्त्री जिसमें सोलह प्रकार के आकर्षण रहते हैं श्री देवी का ही स्वरूप मानी जाती है। उसी का विशेष अंश उनमें रहता है भले ही वह कोई सम्प्रदाय या जाति की हो। माँ वर्णाश्रम धर्म की रचना करने वाली है।

८९८. वीरगोष्ठीप्रिया

कुण्डलिनी साधना में निमग्न जो कुलसाधक योगी है वे बड़े चरित्रवान और वीर होते हैं। श्री देवी वीरों की गोष्ठी को बहुत पसन्द करती है। और उन्हें ब्रह्म विद्या देती है। उपासक, परमहंस लोग जो महावाक्यों का अनुशीलन करते हैं माँ के प्रियपात्र रहते हैं।

८९९. वीरा

माँ स्वयं वीराङ्गना है। साहस और उल्लास दोनों है। उसने भण्ड एवं अन्य राक्षसों को नाश किया।

९००. नैष्कर्म्या

वह कर्म विहीन है। निवृत्ति का भाव है।

कुर्व्वाणापि न लिप्यते गीता

माँ अपनी क्रियाओं से सर्वथा अनासक्त है।

(वनम् अध्याय समाप्त)

♦

दशम अध्याय

९०१. नादरूपिणी

श्री देवी स्वयं नादरूपिणी है। शिवशक्ति तत्त्व की ओर ब्रह्म की प्रथम गति नाद है। जब अखण्ड परब्रह्म ने निज शक्ति का रूप धारण किया तो सर्वप्रथम परानाद के रूप में प्रकट हुआ। अनेक ऋषियों ने विन्दु तत्त्व के अविर्भाव के सम्बन्ध में अनेक मत रखे हैं। नाद शब्द ब्रह्म की जननी है।

कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से परानाद के संग उठती है। यह स्पन्दन हीन नाद है और अव्यक्त एवं अस्पष्ट है। दूसरी अवस्था में योग शरीर में यह पश्यन्ती नाद कहलाती है। इसमें थोड़ा स्पन्दन और अन्य अभिव्यक्ति रहती है। इन दोनों अवस्थाओं में थोड़ा साम्य है। तीसरी अवस्था मध्यमा है। हृदय के क्षेत्र में योग शरीर में इसकी अनुभूति होती है। अन्तिम नाद बैखरी है जो स्पष्ट है। 'खर'-साफ है-कटु जैसा है। ये अवस्थायें सत् रज और तम के अनुरूप है। जब नाद शक्ति योग शरीर में प्रकट होती है तो दश प्रकार से वह योगियों को सुन पड़ती है। वे हैं चिनि चिनि, घंटी नाद, शंख, वीणा, ताल, वंशी, भेरी, भृङ्ग। मेघनाद मिलकर ऊँकार नाद में मिल जाते हैं। अनाहत चक्र में, हृदय में, सदाशिव ऊँकार के संग वाण लिङ्गमय निर्वात् दीप शिखा की तरह विराजमान रहते हैं। विशुद्धि चक्र में नाद सरस्वती नाड़ी के द्वारा वाणी बनकर प्रकट होती है। यहाँ योगियों को बैखरी सिद्धि मिलती है। उनमें दिव्य सम्भाषण की क्षमता जगती है। वेद और शास्त्रों के अर्थ समझने की शक्ति जाग्रत हो उठती है। श्री देवी नाद ब्रह्म के रूप में चमकती रहती है और योगियों को सभी सिद्धियाँ देती है।

९०२. विज्ञानकलना

सब कुछ जानने वाली है। यह आत्म अनुभव की अवस्था है।

९०३. कल्या

माँ, सृजनमयी, स्वस्थ आनन्दमयी और सर्वस्व है। माँ का कला ज्ञान किसी से कम नहीं है।

९०४. विदग्धा

किसी भी पदार्थ में जीवनी शक्ति एवं क्षमता होकर रहने की कला माँ में है। अपने कार्य में माँ कुशल है।

९०५. वैन्दवासनी

श्री चक्र के विन्दु में माँ का आसन है। यह शिव का भी आश्रय है। यह भक्तों के मानस में सहस्त्रार का क्षेत्र है। आज्ञा चक्र में एक विन्दु है जहाँ श्री देवी परमात्मा के प्रतिनिधि प्रत्यगात्मा रूप में चमकती है। चन्द्रमण्डल में एक विन्दु है जहाँ माँ परमात्मा रूप में चमकती है।

९०६. तत्त्वाधिका

सृष्टि कर्म को पार कर जाती है। तत्त्व से शब्दब्रह्म का भी भाव है। प्रलय के पार उसका अस्तित्व है। शास्त्रों के पचीस, छत्तीस, एकावन, छियानवे इत्यादि तत्त्व सर्व विदित है पर लय योग में सभी तत्त्वों का समावेश है।

९०७. तत्त्वमयी

सभी तत्त्व माँ के सगुण भाव के द्योतक है। सम्प्रज्ञात समाधि में साधक समाधि सुख भी लेता है और प्रज्ञा भी रहती है। असम्प्रज्ञात समाधि में मानसिक क्रिया एकदम नहीं होती। वह आत्म तत्त्व विद्या तत्त्व और शिव तत्त्व तीनों ही है शैव सिद्धान्त के अनुसार छत्तीस तत्त्व है और वह सबों में विराजती है।

९०८. तत्त्वमर्थस्वरूपिणी

वह महावाक्य तत्वमसि, तत्-परमात्मा, त्वं तू जीवात्मा, असि वह दोनों है।

९०९. सामगानप्रिया

श्री देवी सामवेद के गान में अभिरूचि रखती है, हह उसे प्रिय है। वह सामगान करती है।

९१०. सौम्या

शान्त है शान्ति की अवस्था है, सामगान सुनकर सौम्या है। सोमयाग में वह सोमलता है। चन्द्रमण्डल में रहने से भी सौम्या है। सौम्या सबका भला

करती है।

९११. सदाशिवकुटुम्बिनी

पञ्च ब्रह्म में सदाशिव पंचम है। वह श्यामला, अश्वरूढ़ा आदि शक्तियों के स्वामी है। सदाशिव को परशिव भी कहते हैं। अत: उनकी कुटुम्बिनी है। अष्ट मूर्त्तियों में भी प्रथम सदाशिव ही है। अष्टमूर्त्तियाँ अष्टशक्तियों के बिना निष्क्रिय है।

९१२. सव्यापसव्यमार्गस्था

सव्य दक्षिण, उपसव्य वाम, मार्गस्था मानने का या मनाने का माध्यम। श्री विद्या सम्प्रदाय में दो मार्ग या पद्धति है। समयाचार श्री दक्षिणामूर्त्ति का मार्ग है। यह अन्तर्याग की आन्तरिक पूजा बताता है। इसमें साधक मानस पूजा से श्री देवी के सभी तत्त्वों का उद्‌बोधन करता है, श्री चक्र के नवावरणों की अर्चना अपने भीतर ही करता है। अधिष्ठान, अवस्थान और अनुष्ठान। साधक के मन में अद्वैत की भावना रहती है। समया मार्ग में दो धारायें है। प्रथम है चतुष्पदी और उसमें सगुण उपासना ही है। दूसरा है षट्‌पदी जो निर्गुण उपासना है। दूसरी धारा का रहस्य सनक सनन्दन ने दिया। ये दोनों योग पद्धति के परिचायक हैं।

सगुण निर्गुण साधना का दूसरा मार्ग कौल मार्ग है। आनन्द भैरव ऋषि ने इसे चलाया है। इसमें कुण्डलिनी योग, वाह्यपूजा, बलि और मुद्रायें हैं। कौल मार्ग में दत्तात्रेय, परशुराम, दुर्वासा आदि मुनियों ने आश्रय लिया है।

९१३. सर्वापद्विनिवारिणी

माँ सभी आपत्तियों को दूर भगाती है। दैहिक, दैविक और भौतिक आपदायें हट जाती है। अनेक प्रकार की विपत्तियाँ साधन काल में आती है और माँ सद्‌गुरु की सहायता से उन्हें दूर कर देती है।

९१४. स्वस्था

स्व=अपने में, स्थ=स्थित है। जब जीव और माया शक्ति पर विजय पा लेता है तब वह मायातीत हो जाता है, आनन्दमग्न रहता है और श्री देवी के परब्रह्म भाव को पाता है।

९१५. स्वभावमधुरा

माँ आनन्द स्वरूपिणी है। उसे क्रुद्ध करने से साधक नष्ट हो जाता

है। अतः सद्गुरु से उनकी उपासना का मार्ग जान लेना चाहिए।

९१६. धीरा

अद्वैत भाव में परमहंसों को धैर्य मिलता है। माँ उसका स्वरूप है।

९१७. धीरसमर्चिता

वीर एवं धीर लोगों ने माँ की पूजा की है।

९१८. चैतन्यार्ध्यसमाराध्या

वह आत्मा अर्घ्य में पूजी जाती है। चैतन्य परब्रह्म का संचित स्वरूप है। चैतन्य जागरण ही अर्चना है। समया मार्ग में अन्तर्याग से चैतन्यार्चन होता है। कौल मार्ग में कुण्डलिनी ही चैतन्य स्वरूप है। इसमें रेतस या स्वयंभू कुसुम का अर्घ्य देते हैं।

रेतसां तर्पयेन्देवीं कुल कोष्टि समुद्धरेत् कौलोपनिषद्

९१९. चैतन्यकुसुमप्रिया

आत्मज्ञान को वह अधिक पसंद करती हैं। चैतन्य कुसुम शोणित है। प्रथम पुष्पिणीं के रक्त को कहते हैं। स्मर प्रथम पुष्पिणीं रुधिरबिन्दुनीलाम्बरां।

९२०. सदीदिता

कुण्डलिनी शक्ति का भौतिक रूप चैतन्य कुसुम है। उदय काल में ही वह सदा रहता है। भक्तों के मन में यह भाव सदा उदित रहता है।

९२१. सदातुष्टा

माँ सदा संतुष्ट रहती है। उस चैतन्य कुसुम का ह्रास नहीं होता है।

९२२. तरुणादित्यपाटला

माँ का रंग तरुण सूर्य की भाँति पाटल है।

९२३. दक्षिणादक्षिणाराध्या

वह वाम और दक्षिण मार्ग से पूजी जाती है। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों उन्हें पूजते हैं।

९२४. दरस्मेरमुखाम्बुजा

माँ का कमलमुख सदा मुस्कान से पूर्ण रहता है।

९२५. कौलिनीकेवला

कौल और कैवल्योपासक भी पूजते हैं।

९२६. अनर्घ्य कैवल्यपददायिनी

माँ भक्तों को मुक्ति की भावना से भर देती है।

९२७. स्तोत्रप्रिया

माँ स्तुति से प्रसन्न होती है। सगुण अवस्था में गुणों से घिरी रहती है सो आनन्द लेती है। वह सहस्रनाम को प्रिय मानती है।

९२८. स्तुतिमती

माँ स्तुति ही के योग्य है।

९२९. श्रुतिसंस्तुतवैभवा

वेद एवं श्रुतियों के पाठ से श्री देवी के वैभव को लोग जानते हैं। शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति माहेश्वरी के चार रूप हैं।

९३०. मनस्विनी

मन पर नियंत्रण रखती है।

९३१. मानवती

वेद भी उसे मानते हैं।

९३२. महेशी

महेश्वर की देवी है।

९३३. मङ्गलाकृतिः

जिनका आकार मङ्गलमय है। वही महेशी है।

९३४. विश्वमाता

संसार की सृष्टिकर्त्री है।

९३५. जगद्धात्री

संसार का पालन करती है।

९३६. विशालाक्षी

काशी की देवी बड़ी आँखोंवाली है। असीम दृष्टि से संकेत है।

९३७. विरागिनी

माँ में वैराग्य है। अन्नपूर्णा के साथ बाबा विश्वनाथ रहते हैं फिर भी विशालाक्षी माता अनासक्त रहती है।

९३८. प्रगल्भा

अति शक्तिशालिनी है। अपनी पाँचों क्रियाओं में दृढ़ है।

९३९. परमोदरा

माँ की उदारता अनन्त है।

९४०. परामोदा

भक्तों के आत्म साक्षात्कार में आनन्द लेती है।

९४१. मनोमयी

वह मन की शुद्धावस्था है। मन ही भौतिक संसार है। पञ्चकोशों में मनोमय कोश भी माँ ही है। हंस मानस से सम्बन्धित है।

९४२. व्योमकेशी

व्योमकेश शिव की देवी है। मन आकाश रूप है। श्री देवी मन को सुन्दर बनाती है।

९४३. विमानस्था

विमानस्था देवता लोग हैं। विमान सात मंजिल का भवन है। सप्तमहल गोपुर विमान है। यह सहस्रार में श्री देवी का परम धाम है। हंस आकाश में सर्वाधिक ऊँचाई पर उड़ता है।

९४४. वज्रिणी

वह सची देवी का स्वरूप है। वज्रिणी सुषुम्ना के अन्दर का आवरण है जिसमें चित्रिणी रहती है। माँ अपने स्वभाव में दृढ़ है। वज्रायुध धारण किए हैं।

९४५. वामकेश्वरी

शिव के वाम भाग की इश्वरी है। निर्गुणभाव में जीव हंस चिन्तामणि गृह में प्रवेश चाहता है। ब्राह्मी अवस्था से आगे दो विसर्ग विन्दु है। दक्षिण विसर्ग हमें कविता धारा की ओर ले जाता है। वाम विसर्ग अमृत धारा की ओर ले जाता है। तभी जीव उस चिन्तामणि गृह में प्रवेश करता है जो वाम विसर्ग

के ऊपर है। वामक देवता है वह उनकी ईश्वरी है।

९४६. पञ्चयज्ञक्रिया

अग्नि होम, पितृ

दर्शपूर्णमास, देव

चातुर्मास्य, ब्रह्म

पाशु, भूत

सोम, मानुष्य के यज्ञ को वह पसन्द करती है। पाञ्चरात्रागम और कौलागम के यज्ञ भी वह पसन्द करती है। कौल मार्ग में नवावरण पूजा को जगत यज्ञ कहते हैं। पाँच भाग हैं

नवावरण पूजा या अर्चना, सुवासिनी अर्चना, दम्पत्ति अर्चना और कुमारी अर्चना। ये पाँच यज्ञ नवावरण पूजा के अंग है। श्री देवी की प्रसन्नता के साधन हैं।

स्वाधिष्ठान से आज्ञा तक के पाँच ब्रह्म भी इसके पञ्चयज्ञ के उपादान माने जाते हैं। ये पञ्चभूतों पर नियंत्रण रखते हैं। सगुण अवस्था पर विजय पाते हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रियों को मार कर निर्गुण सिद्धि पाते हैं। माँ प्रसन्न होती है।

९४७. पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सदाशिव महेश्वर ये पञ्च प्रेत हैं जो चारपाई के चारों खूटे बनते हैं और सदाशिव का आसन।

आज्ञाचक्र में जीव शक्ति परमात्मा की पराशक्ति का प्रतिनिधि है। सहस्रार के चन्द्रमण्डल में निर्गुण तत्त्व है।

सहस्रार चन्द्रमण्डल के त्रिकोण में पाँच ज्योतिर्मय रेखायें हैं।

(1) अमाकला अर्द्धचन्द्राकार है।

(2) निर्वाण कला अर्द्धचन्द्राकार का मध्य विन्दु है।

(3) निर्वाण कला के मध्य में अग्निमण्डल है।

(4) अग्निमण्डल मध्य में निर्वाण शक्ति है।

(5) निर्वाणशक्ति के मध्य में विन्दुमण्डल है।

ये पञ्चप्रेत स्थान कहे जाते हैं। माँ पाँचों से ऊपर है। विन्दु मण्डल के मध्य में शून्य है जो श्री देवी की गुहा है। माँ यहाँ निर्द्वन्द्व विश्राम करती है।

९४८. पञ्चमी

अष्टमातृकाओं में वाराही पञ्चमी है।
ब्रह्म रूपिणी पातु पञ्चमी पर देवता
पञ्च तत्त्वं तथा पञ्च यत्किञ्चित पञ्चमं स्मृतम्
नित्यं पञ्चगुणैः पातु पञ्चमी पर देवता
पञ्च पञ्चाक्षरमंन्त्रै पञ्चकूटैश्च पञ्चभिः
पञ्चमी पातु सततं नित्यं रक्षतु पञ्चमी
(त्रिपुरास्तवराज)

पञ्च दशाक्षरी मन्त्र को पञ्चमी विद्या कहते हैं। पचीस अक्षरों के एक मंत्र को पञ्चपञ्चाक्षरी कहते हैं। पञ्चप्रणव या पञ्चवार-पाँच वीजाक्षर हैं। सर्वार्थ साधक चक्र श्री चक्र का आवरण है। नवावरण पूजा में पञ्चमपात्र भोग पात्र है। दिग्पालों में पञ्चम जल के देवता वरूण है। श्री देवी ही जल में प्राण स्वरूपिणी हैं। षडाम्नाय में पञ्चम उत्तरआम्नाय है जिसमें पराशांभवी विद्या का समावेश है षडध्वा विद्या में तत्त्वध्वा पञ्चम है। आकाश तत्त्व पञ्चम है श्री देवी का नादरूप है। नवरात्रि में पाँचवी रात्रि वाला पञ्चमी है। इसीदिन शिव शक्ति ने बाला का रूप लिया। कौलमार्ग में लता साधना या सामरस्य ही पञ्चम है। कामेश्वर कामेश्वरी के विलास की परावस्था है।

९४९. पञ्चभूतेशी

वह पाँच भूतों की ईश्वरी है।

९५०. पञ्चसंख्योपचारिणी

माँ श्री देवी अनेक प्रकार के पञ्चोपचार से पूजी जाती है। पाँच प्रकार की भावनायें हैं। चक्र भी इन्हीं के अनुकूल है।

(1) राजचक्र (2) महाचक्र (3) देव चक्र (4) वीरचक्र (5) पशुचक्र। वीजाक्षर से, 'लं' इत्यादि, पञ्च पूजा करते हैं।

(1) गन्ध (2) पुष्प (3) धूप (4) दीप (5) नैवेद्य से माँ प्रसन्न होती है। वैदिक पद्धति में

(1) शैव (2) गाणपत्य (3) सौर (4) वैष्णव (5) शाक्त पाँच भाग हैं। श्री देवी की पूजा में पाँच मत हैं :

(1) समयामत (2) कौलमत (3) सांख्यमत (4) अमनस्क (5) वेदान्त मत।

९५१. शाश्वती

वह आत्मज्ञानियों में सदा प्रकाशित रहती है।

९५२. शाश्वतैश्वर्या

उसका राज्य चिरस्थायी है। उसका ऐश्वर्य सदा रहनेवाला है।

९५३. शर्मदा

माँ की प्रसन्नता पाकर पञ्चायतन पूजा करनेवाले सदा 'शर्म' प्रसन्न रहते हैं।

९५४. शम्भुमोहिनी

महामाया शक्ति से माँ शम्भुमोहिनी बनती है।

९५५. धरा

उसने सबकुछ धारण किये हैं। वह पृथ्वीस्वरूपिणी है।

९५६. धरसुता

वह हिममान की पुत्री है। वह ओषधीश की शक्ति है।

९५७. धन्या

उसके कृतज्ञ भाव हैं।

९५८. धर्मिणी

माँ सभी धर्मों का पालन करती है। उसने सत्य और ज्ञान को धारण किया है।

९५९. धर्मवर्धिनी

अवतार लेकर माँ ने धर्म की वृद्धि की, उसने मोक्ष दिया।

९६०. लोकातीता

वह सप्तलोक से ऊपर सहस्रार के सदाशिव लोक में है।

९६१. गुणातीता

वह तीन गुणों और सगुण से भी अतीत है। मूल प्रकृति है।

९६२. सर्वातीता

माँ नामरूप के सभी पदार्थों से परे है। माँ सगुण और निर्गुण के परे है।

९६३. शमात्मिका

माँ शान्तिस्वरुपिणी है।

९६४. बन्धूककुसुमप्रख्या

वह बन्धूक फूल की तरह लाल है।

९६५. बाला

बाला मन्त्र पुर विद्या मन्त्र है। मूलाधार में बालारूप में रहती है। दो से नौ वर्ष के बीच की बच्ची है जो खेलती रहती है।

९६६. लीलाविनोदिनी

बाला नौ रूपों में खेल करती है। वे नव कुमारियाँ हैं कुमारी, त्रिपुरा, कालिका, कामाक्षी, कालरात्रि, चंडिका शांभवी, दुर्गा, सुभद्रा।

९६७ सुमङ्गली

सभी मंगल कार्य करने से शिव की संगिनी सुमंगली कही जाती है।

९६८. सुखकरी

माँ सबों को सुख देती है।

९६९. सुवेषाढ्या

उसने सुन्दर वस्त्र आभूषण और वेष ले रखे हैं।

९७०. सुवासिनी

मृत्युञ्जय की पत्नी हैं। सुन्दरी स्त्री है सुवासिनी जिसमें श्री देवी का भाव पूजा द्वारा जगाया जाता है। वहाँ माँ इसी रूप में आ जाती है। नवावरण पूजा के बाद सुवासिनी अर्चना करते हैं। एक सुन्दर स्त्री का षोडशोपचार से पूजन होता है। भगवान हयग्रीव ने इस प्रकार लोपामुद्रा की पूजा की थी। पुण्यफलवाले ही सुवासिनी की पूजा कर पाते हैं। इसे सौभाग्यार्चन कहते हैं। बहुत लोग नवरात्रि के अवसर पर कुछ स्त्रियों को दान में देकर ही पूजा की तुष्टि पाते हैं।

९७१. सुवासिन्यर्चनप्रीता

माँ सुवासिनी अर्चना से प्रसन्न होती है। विवहिता स्त्रियों की पूजा देकर माँ प्रसन्न होती है।

९७२. आशोभना

माँ सदा युवा और सुन्दर लगती है।

९७३. शुद्धमानसा

श्री देवी शरीर में घुसकर मन को शुद्ध कर देती है।

९७४. विन्दुतर्पणसन्तुष्टा

विन्दु द्वारा तर्पण से श्री देवी प्रसन्न होती है। विन्दु संवित् तत्त्व है ज्ञान है। ज्ञानमार्गियों से माँ प्रसन्न होती है जब वे संवित् तत्त्व का लाभ करते हैं। अखण्ड परब्रह्म से नाद की सृष्टि हुई। नाद निर्गुण तथा तत्त्व शिव शक्ति का अभेद रूप है। नाद ने विभक्त होकर प्रकाश और विमर्श विन्दु बनाये। दोनों के मिलन से मिश्र विन्दु बना। यह प्रथम सगुण शक्ति हुई। अमाकला, हेमामृत, कुलामृत इसका नाम पड़ा। स्थूल शरीर में यह वीर्य रूप में रहता है जिसमें सृजन शक्ति से पूर्ण अगणित जीवाणु रहते हैं। इसी से कौल मार्ग से पञ्च भूतों की आहुति का माध्यम चुना है। विन्दुरूप में इस प्रकार का स्थूल तर्पण श्री देवी की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए किया जाता है। वैदिक पूजा में भी विन्दु तर्पण का महत्व है। पौण्डरिक यज्ञ में विन्दु तर्पण यज्ञ का अन्तिम भाग रहता है।

विन्दु को नरमेध भी कहते हैं जिसका महत्त्व आदिवासी लोग जानते हैं। महाकाली की वेदी पर युवकों की बलि दी जाती है। सहस्रार का द्वादशान्त ही लोग विन्दु मानते हैं।

९७६. पूर्वजा

श्री देवी सबसे पहले जन्मी है। मिश्र विन्दु या मूल प्रकृति प्रादुर्भूत सगुण शक्ति है।

९७६. त्रिपुराम्बिका

त्रिपुर जीव है जो स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर में रहता है। माँ सबों की माता है। नव शक्तियों को भी त्रिपुरा कहते हैं। माँ आद्या शक्ति है।

९७७. दशमुद्रासमाराध्या

मुद्रा दानों हाथों की कला है। देवता इससे प्रसन्न होते हैं और राक्षसों का विनाश होता है। पाँचों अँगुलियों में तत्त्वों का वास मानते हैं। वाम और दक्षिण हाथ शक्ति और शिव के भाग मानते हैं। श्री विद्या में दश देवताओं के लिए दश मुद्रायें हैं। श्री चक्र के भुपुर भाग की पूजा में वे रहते हैं। नाट्य शास्त्र में भी अभिनय के लिए मुद्रायें प्रदर्शित करते हैं। मुद्रा से जीव और शिव का मिलन मानते हैं। मन्त्र वीज उसके साथ रहते हैं। सर्व संक्षोभिणी से त्रिखण्डेशी तक उनकी संख्या दश है। यह गुरु गम्य है।

९७८. त्रिपुराश्रीवशङ्करी

श्री चक्र के पञ्चम चक्र की चक्रेशी त्रिपुराश्री है। वशंकरी चतुर्थ आवरण की देवी है।

९७९. ज्ञानमुद्रा

ब्रह्मज्ञान या संवित् स्वरूप में वह प्रकाशित रहती है। यह चिन्मुद्रा है। आकाश और वायु तत्त्व के मिलन से इसे दिखाते हैं।

९८०. ज्ञानगम्या

माँ शान्तिस्वरूपा है और उसके रहस्यों की जानकारी ज्ञान मार्ग से सुलभ है।

९८१. ज्ञानज्ञेयस्वरुपिणी

श्री देवी ज्ञान और ज्ञेय दोनों रूपों में रहती है।

९८२. योनिमुद्रा

दस मुद्रा में नवीं मुद्रा है। पश्यन्तीवाक् या मूल प्रकृति को नमस्कार करते हैं। इस मुद्रा के सहारे भक्त अपनी भ्रान्तियों से मुक्त होता है।

९८३. त्रिखण्डेशी

योनिमुद्रा तीन भाग में होने से त्रिखण्डा मुद्रा बन जाती है। दसवीं मुद्रा नवों मुद्रा की समष्टि है। त्रिखण्डा मुद्रा के रूप में माँ की प्रशंसा है। पञ्चदशी मन्त्र के तीन खण्डों को भी त्रिखण्डा कहते हैं।

९८४. त्रिगुणा

सत्य, रज और तम के रूप में वह रहती है। त्रिखण्ड मुद्रा, देवी के

तीन गुणों के द्योतक हैं।

९८५. अम्बा

मूल प्रकृति तीन गुणों की माता है।

९८६. त्रिकोणगा

श्री चक्र के सबसे भीतर के त्रिकोण में वह अव्यक्त रूप में रहती है।

९८७. अनद्या

वह किसी प्रकार के दु:ख या पाप से ऊपर है।

९८८. अद्भुतचारित्रा

उनके सगुण रूप के चरित्र आश्चर्य से भरे हैं। सृष्टि से अनुग्रह तक माँ की अद्भुत लीला है।

९८९. वाञ्छितार्थप्रदायिनी

भक्तों की मनोकामना पूर्ण करती है।

९९०. अभ्यासातिशयज्ञाता

निरन्तर ध्यान से वह जानी जाती है।

९९१. षडध्वातीतरुपिणी

अध्वा साधन या अभ्यास पद्धति। वे छः हैं

(1) पदध्वा ऊँकार से 81 शिव रूप निकले हैं।

(2) वर्णध्वा अ से क्ष तक एकावन वर्ण हैं।

(3) एक से पाँच वीज के मन्त्र सद्योजात आदि षडङ्ग देवता हैं।

(4) कलाध्वा मन्त्रों में अनेकों कला हैं।

(5) तत्त्वध्वा छत्तीस तत्त्व हैं।

(6) भुवनध्वा संख्या 224 हैं।

माँ षडध्वा से अतीत पद में हैं, परे हैं।

९९२. अव्याजकरुणामूर्त्तिः

बिना किसी शर्त के माँ दया की मूर्त्ति हैं। योगियों के संग स्त्री रूप में दया करती हैं, सेवा करती हैं। गलत राह पर जाने से उन्हें नष्ट कर देती हैं।

९९३. अज्ञानध्वान्तदीपिका

अज्ञानियों के लिए माँ दीप की रोशनी है। ज्ञान से अहं तत्त्व की पूर्णता का बोध होता है।

९९४. आवालगोपविदिता

ग्वालों या भेड़िहरों की तरह अज्ञानियों का दृष्टान्त है। उनमें न तो शास्त्र का ज्ञान ही रहता है और न तो आध्यात्मिक गतिमानता रहती है।

९९५. सर्वानुल्लङ्घयशासना

माँ के अनुशासन को काई नहीं टाल सकता है। त्रिमूर्ति भी नहीं टाल सकते हैं।

९९६. श्रीचक्रराजनिलया

श्री चक्र में माँ यन्त्रस्वरूपिणी रहती है।

९९७. श्रीमत्रिपुरसुन्दरी

श्री चक्र का नवम् आवरण सर्वानन्दमय विन्दु है। यह स्वयं कामेश्वरी है। विमर्श, प्रकाश मिश्र त्रिपुर सुन्दरी हैं। अखण्ड परब्रह्म की संगिनी हैं।

९९८. श्री शिवा

यह भागवान शिव की संगिनी है। माँ शिव से अभेद हैं।

९९९. शिवशक्त्यैक्यरुपिणी

मिश्र विन्दु में शिव शक्ति की एकता है।

१०००. ललिताम्बिका

लोक नटीत्य लालते ललिते तेन शक्यते

संसार में वह खेलती है इसी से ललिता है। परमात्मा स्वयं अम्बिका है। अखण्ड परब्रह्म से शिव शक्ति तत्त्व निकले हैं। दोनों मिलकर मूल प्रकृति विन्दु है। प्रथम सगुण रूप से अनेकों ब्रह्माण्ड हैं।

♦

फलश्रुति

इस तरह हे घटोद्भव, सहस्रनाम जो कहा गया वह रहस्यों में रहस्यमय और ललिता के लिए प्रीतिदायक है। ऐसा स्तोत्र भूत और भविष्य में भी दूसरा नहीं होने को है। इस स्तोत्र से सभी रोगों का प्रशमन होता है, सर्व सम्पत्तियों की वृद्धि होती है। सभी अपमृत्यु का शमन होता है और लम्बी आयु मिलती है। बिना पुत्र वालों को पुत्र मिलते हैं और सभी पुरुषार्थ मिलते हैं : श्री ललिता को यह स्तोत्र अतिप्रसन्नदायक है। ललिता की उपासना में तत्पर लोग इसका खूब जप करें। सबेरे नहा धोकर विधिपूर्वक संध्याकर्म समाप्त करे फिर पूजा गृह में जाकर चक्रराज की पूजा करे। विद्या का जप कर एक हजार, तीन सौ या एक सौ करे फिर सहस्रनाम का पाठ करे। जो व्यक्ति जीवन में एक बार भी इस सहस्रनाम का पाठ करता है उसके पुण्य मैं कह रहा हूँ। हे कुम्भसम्भव ''जो करोड़ों जन्मों तक गङ्गादि नदियों तीर्थों में स्नान करे, कोटि सुवर्ण भारों का द्विज को दान दे अथवा कोटिवार कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण-स्नान करे, निर्जल मरूभूमियों में जो कोटिकूप खुना दे अकाल में करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन देवे जो पुण्य श्रद्धापूर्वक हजारों वर्षों तक इन सबों को करने से संचित होता है वही पुण्य कई गुणा हो जाता है जब वह भक्त सहस्रनाम के किसी एक नाम को पढ़े। इसमें संशय नहीं है कि इस सहस्रनाम के एक नाम का पाठ हजारों पापों को नष्ट कर देता है। पूजा, पाठ जप छोड़ने का पाप भी नष्ट हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय। सुनिये जो कुम्भसम्भव! 14 भुवनों में होनेवाला कोई भी पाप ऐसा नहीं, जो इस सहस्रनाम के एक नाम से नष्ट न होवे। जो सभी पापों से मुक्त होना चाहता हो इस सहस्रनाम को छोड़कर वह वैसा ही है जो ठंढ़ा से बचने के लिए हिमालय पर जाकर बस जाय।

यदि कोई भक्त नित्य इस सहस्रनाम पाठ करे तो श्री ललिता उस पर प्रसन्न हो उसकी सभी मनोंकामनायें पूर्ण कर देती है।

जो इस सहस्रनाम नाम का पाठ न करता हो वह भक्त कैसे हो

सकता है। यदि वह रोज पाठ करने में असमर्थ है तो पुण्य दिनों में ही उसका पाठ करे।

संक्राति दिन को, जाड़ गर्मी के विषुव में, अपने तीनों जन्म दिनों में, अयन में, शुक्ल पक्ष के नवमी, चतुर्दशी को और शुक्रवार को पाठ करे। पूर्णिमा को चन्द्रविम्ब का ध्यान करता हुआ इस सहस्रनाम का पाठ करें। पञ्चोपचार से उसे पूजकर पाठ करे। वह व्यक्ति सभी रोगों से मुक्त हो जाता है और बड़ा लम्बा जीवन पाता है।

इसे आयुष्कर प्रयोग कहते हैं और कल्पों में इसका वर्णन है।

ज्वर से पीड़ित व्यक्तियों के सिर पर हथेली रखे और इस सहस्रनाम का पाठ करे जो ज्वर और सिर दर्द तुरन्त भाग जाता है।

सहस्रनाम से जप कर भस्म (हाथ से स्पर्शित पाठ में) लगावें तो सभी व्याधियों की निवृति हो जाती है। हे मुनि, कुंभ भरे जल को मन्त्र से सिक्त करे और सहस्रनाम से पाठ पूर्ण करे और ग्रह ग्रहीत व्यक्ति के सिर पर दे तो ग्रह उसे तुरन्त छोड़ देता है। सुधासागर के मध्य में बैठी माँ का ध्यानकर सहस्रनाम पाठ करे तो उसका विष उतर जाता है। बाँझ स्त्री के लिए सहस्रनाम से अभिमन्त्रित मक्खन देने से अवश्य ही पुत्र लाभ होता है।

रात को देवी का ध्यान करता हुआ इच्छित स्त्री को पाश से बाँधकर अंकुश से अपनी ओर लाते हुए सोचे तो वह उसके पास चली आती है भले ही वह राजमहल में क्यों न रहती हो।

राजा को जीतने के लिए जिस दिशा में राजा रहता हो उधर मुँह कर तीन रात सहस्रनाम का पाठ करे तो राजा अपनी सुधबुध खोकर घोड़े पर या हाथी पर सवार होकर उस श्रद्धावान भक्त के पास जाता है और दास की भाँति प्रणिपात होता है, झुक कर प्रणाम करता है। सहस्रनाम नित्य पाठ करने वाले के मुख देखने मात्र से तीनों लोक मोहित हो जाते हैं। भक्ति पूर्वक सहस्रनाम पाठ करने वालों के शत्रु शरमेश्वर के हाथों मारे जाते हैं। सहस्रनाम पाठ करने वालों के प्रति किसी के द्वारा यदि अभिचार होता है तो प्रत्यङ्गिरा देवी उसकी क्रिया को उलट कर उसे मार डालती है।

सहस्रनाम पाठ करने वालों को जो क्रूर-दृष्टि से देखता है उसे शीघ्र ही मार्तण्ड भैरव नाम का देवता अन्धा कर देता है। जो चोर सहस्रनाम पाठ करने वालों का धन हरता है वह चाहे कहीं भी छिपा हो क्षेत्रपाल उसे मार

डालता है।

जो विद्वान सहस्रनाम पाठ करने वाले से वादविवाद करता है वह नकुलीश्वरी नाम की देवी द्वारा वाक् स्तम्भण का शिकार बनता है। जब कोई व्यक्ति सहस्रनाम पाठ करने वालों से लड़ाई करता है तो दण्डिनी नाम की देवी उसका संहार कर डालती है। जो छः मास लगातार सहस्रनाम का पाठ करे तो लक्ष्मी निश्चला होकर उसके घर में बैठ जाती है। जो मास में एक बार सहस्रनाम का पाठ करता है या रोज या दिन में तीन बार तो भारती देवी उसकी जिह्वा पर सदा नाचती रहती है। बिना आलस्य से एक पक्ष तक पाठ करे तो देखने मात्र से स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं। सहस्रनाम के पाठक के सम्पर्क में यदि कोई आता हो, उसके देखने मात्र से पाप नष्ट हो जाता है। जो ब्राह्मण इस सहस्रनाम को जानता हो उसे भोजन, वस्त्र, धन, धान्य प्रचुर मात्रा में देवे, अन्य को नहीं। सच्चा अतिथि उसे ही जानिये जो पञ्चदशी जानता हो, श्री चक्र का पूजन करता हो तथा सहस्रनाम का पाठ करता हो।

जो पञ्चदशी न जानता हो, सहस्रनाम न पढ़ता हो, वह पशु के समान है। उसे दिया हुआ दान व्यर्थ है। अतः विद्वान को चाहिए कि वह ज्ञान की परीक्षा करे तब उसे दान देवे। जिस तरह श्री विद्या के समान कोई अन्य नहीं है, ललिता के समान देवता नहीं है वैसे ही हे कुंभ-सम्भव, सहस्रनाम के तुल्य कोई पाठ नहीं है। जो सज्जन इस सहस्रनाम को किसी पुस्तक में लिख कर भक्तिपूर्वक इसकी पूजा करे तो श्री सुन्दरी उस पर प्रसन्न हो जाती है। हे कुम्भसंभव, सभी तन्त्रों में इससे उत्तम कोई पाठ नहीं है। इस कारण से भक्त पूर्ण भक्ति श्रद्धा पूर्वक इसका पाठ करे। श्री चक्र की पूजा कमल, तुलसीपत्र, कदंबक, चंपक, जाति कुसुम, मल्लिका करवीरक, उत्पल, विल्वपत्र, कुंद, केसर, पाटल एवं अन्य सुगन्धित कुसुमों जैसे केतकी, माधवी से एक बार पूजा करे और साथ ही सहस्रनाम का पाठ करे उसके फल का वर्णन महेश्वर भी नहीं कर सकते हैं। वह एक माता श्री ललिता ही है जो श्री चक्र की पूजा की महत्ता का अनुभव कर सकती है। सीमित ज्ञान वाले ब्रह्मा आदि देवता कैसे जान सकते हैं। हर मास पूर्णिमाँ की रात मे जो उसकी पूजा करता है वह श्री ललिता से मिल जाता है और श्री ललिता उससे। श्री ललिता और उसके भक्त में कोई भेद नहीं है जो भेद माने वह पापी है। श्री चक्र के विन्दु में माँ को देखता हुआ जो व्यक्ति महानवमी को श्री माँ की सहस्रनाम

से पूजा करे उसकी मुक्ति अपने हाथ में रहती है। अब शुक्रवार को श्री चक्र में सहस्रनाम में पूजा का फल सुनिये। उसकी सभी इच्छायें पूर्ण हो जाती है, सर्व समृद्धि पाता है, बेटे पोते से भर जाता है। सभी अभिलषित वस्तु पाकर अन्त श्री ललिता का सायुज्य पाता है, जहाँ पहुँचना मुश्किल रहता है और श्री शिव आदि को ही ऐसा सौभाग्य मिलता है। जो हजार ब्राह्मणों की खीर, पूआ और षट्रस भोजन देता है माँ प्रसन्न होकर उसे मुक्ति साम्राज्य देती है। जो व्यक्ति निष्काम भाव से इस सहस्रनाम का पाठ करता है उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी पाना दुर्लभ नहीं है। वह ब्रह्म-ज्ञान पाता है जिससे वह मुक्त हो जाता है। जो धन चाहे उसे धन मिलेगा, यश चाहने वाले को यश मिलेगा। जो विद्या पाने का अभिलाषी हो उसे इस सहस्रनाम से विद्या मिलेगी। संसार में इस सहस्रनाम से बढ़कर ऐसी कोई वस्तु नहीं जो भाग और मोक्ष दोनों देवे। अतः मुक्ति और भुक्ति का प्रार्थी इसे जरूर पाठ करें चाहें चारों आश्रमों में किसी में रहने वाला हो। इस पाप पूर्ण कलियुग में धर्म रक्षा और पाप मुक्ति के लिए इस सहस्रनाम से बढ़कर कोई पाठ नहीं है।

सर्वसाधारण के लिए विष्णु सहस्रनाम का पाठ है। विष्णु सहस्रनाम से शिव का एक नाम उत्तम है, जिसमें दश श्रेणी मुख्य हैं। उन दश सहस्रनामों में यह सहस्रनाम सर्वोत्तम है। अतः कलि-दोष-निवृत्ति के लिए उसे ही पढ़ें। मूर्ख लोग इसे सर्वोत्तम नहीं मानते, कोई विष्णु और कोई शिव को ही मानते हैं।

एक तो श्री ललिता देवी का उपासक ही विरले मिलता है। दूसरे देवताओं का पूर्व के करोड़ों जन्मों में जप करने पर श्री देवी के नाम में श्रद्धा उत्पन्न होती है। जिस तरह सभी जन्मों के अन्त में श्री विद्या का उपासक है वैसे ही अन्तिम जन्म वाले को ही यह सहस्रनाम पाठ करने को मिलता है। जैसे श्री विद्या के उपासक दुर्लभ हैं वैसे ही इस सहस्रनाम के पाठक दुर्लभ हैं। श्री विद्या का अभ्यास, श्री चक्र की पूजा और इस सहस्रनाम का पाठ साधारण भक्तों के लिए नहीं है।

जो बिना सहस्रनाम पाठ किए श्री माँ को प्रसन्न करना चाहता हो वह विमूढ़ वैसा ही है जो आँखें बन्द कर किसी वस्तु को देखना चाहता हो। जो इस सहस्रनाम को छोड़कर सिद्धियाँ चाहता हो वह वैसा ही है जैसे बिना

भोजन किए ही पेट भर लेना चाहता हो।

श्री ललिता के भक्त को सदा इसका पाठ करना चाहिए अन्यथा करोड़ों जन्मों में भी श्री देवी प्रसन्न होने को नहीं है। अतः श्री माँ के इस सहस्रनाम को श्रद्धापूर्वक पाठ करना है।

इस तरह हे कुम्भसम्भव, यह रहस्यनाम आपके सामने है। जो श्री विद्या में दीक्षित नहीं है उन्हें आप यह नहीं देंगे और जो भक्त नहीं है उन्हें भी नहीं। जैसे श्री विद्या को गुप्त रखते हैं वैसे ही हे मुनि! इस सहस्रनाम को भी अदीक्षितों से दूर ही रखेंगे। पशु-स्वभाव वालों में कभी इसे न जाने दें। यदि कोई व्यक्ति अदीक्षित व्यक्ति को यह देने की धृष्टता करे तो योगिनियाँ उसे शाप दे देंगी। और इससे उसकी बड़ी ही हानि होगी। अतः इस सहस्रनाम को गुप्त रक्खें। मैंने हे अगस्त्य! अपनी इच्छा से इसे नहीं कहा। श्री ललिता देवी की प्रेरणा से यह पुण्य नाम आपसे प्रकट किया गया है। अतः हे कुम्भसम्भव, सदा श्रद्धा, भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेंगे।

इस तरह देवी आप पर प्रसन्न हो जायगी और आपको मनोवाञ्छित पदार्थ देगी।

सूत जी ने कहा

अगस्त्य को इस तरह शिक्षित कर हयग्रीव ने माँ ललिता का ध्यान किया, वे आनन्द मग्न हो गए, पुलकित होने से उनके रोंगटे खड़े हो गये।

इस तरह ब्रह्माण्डपुराण के उत्तर खण्ड के तृतीय फलश्रुति अध्याय की समाप्ति होती है जो हयग्रीव और अगस्त्य संवाद के नाम से विख्यात है।

♦

ॐ

ललिता महिमा

प्रस्थानत्रयी का शंकर भाष्य हिन्दू विचार-धारा की उत्कृष्ट मर्यादा है। अद्वैतवाद का दार्शनिक विवेचना तो है ही संग-संग विज्ञान के अर्द्धचन्द्र देश (Curvilinear Space) तथा संभावनाओं के तरंग waves of probability) वाले सिद्धांत यहाँ बच्चों का खेल सा लगता है। हिन्दू धर्म के सिद्धांत एवं आचार है इनमें। विभिन्न विचारों का साम्य एकत्र है इनमें। प्रतिकूलताओं में भी एक ही सत्य की पुष्टि है।

प्राग-पुराण काल में संशय बिखरने लगे जब बुद्ध धर्म और जैन धर्म चमक कर ह्रासोन्मुख होने लगे। पूर्वमीमांसा और कर्मकाण्ड का बोलबाला था। वेद और आगम में लोग सामंजस्य नहीं पा रहे थे। यही समय था जिसने ऋषि मुनि एवं आचार्यों को प्रकट कर उपनिषद की शिक्षाओं की जड़ मजबूत की। त्रिशतीकार वेदव्यास आये और भाष्यकार शंकर।

विवेकचूड़ामणि जैसे वेदान्त विचार वाले ग्रंथों के देखने से ऐसे कितने तथ्य उक्त दिखते हैं।

वस्तुसिद्धि विचारेन न किंचित कर्म कोटिभिः।

''ब्रह्म विचार से प्राप्त होता है न कि कोटि कर्मों से।''

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवान्
आत्मैक्य बोधेन विनापि मुक्ति
नं सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेपि

कोई शास्त्र पाठ करे, यज्ञ करे देवपूजन कर्म करे, ब्रह्म की एकता का ज्ञान हुए बिना सैकड़ों जन्मों में मुक्ति नहीं होती।

ज्ञानादेव तु कैवल्यम्

कैवल्य या मोक्ष मात्र ज्ञान से मिलता है। मन ''अहंब्रह्मास्मि'' को

पकड़ ले तो ज्ञान के लिए अन्य साधन की अपेक्षा नहीं।

मुक्तिनों शतकोटि जन्म सुकृतैः पुण्यैर्बिना लभ्यते।

मुक्ति तो अविधा-निरसन है जो सौ कोटि जन्मों में सुकृत एवं पुण्य कर्म से मिलता है।

ब्रह्मैव हि मुक्त्यावस्था
मुक्ति मात्र ब्रह्म ही है।
ब्रह्मसूत्र भाष्य १-१३-१९ में है

यद्विद्या प्रत्युप्रस्थापितम परमार्थिकं जैवं रूपं कतृत्व भोक्तृव राग द्वेषादि दोषकलुषित अनेकानर्थयोगीत द्विलयेनेन तद्विपरीतमपहृत पाप्मत्वादि गुणकं पारमेश्वरं स्वरूपं विद्याया प्रतिपद्यते; सर्पादि वलयनेनैव रज्वादीन।

अविधा-अज्ञान में स्थित जीव का रूप असत्य है। कर्त्ता, भोक्ता होने से वह अपवित्र हो जाता है पापमय होता है। यह रूप हट जाने से ज्ञान-प्रकाशमय परमेश्वर वैसे ही रह जाता है जैसे रस्सी प्रकट होने से सर्प का विचार पलायन कर जाता है। अविद्या अन्धकार मिटाने को मात्र मानसिक संयम और अनुशासन ही नहीं चाहिये बल्कि भगवान की कृपा चाहिये क्योंकि माँ ही एकमात्र कर्मफलप्रदा है सभी कर्मों का फल देती है। ज्ञान के आखेट में कहा है

विवेकिनो विरक्तस्य शमादि गुण शालिनः
मुमुक्षोरेव ब्रह्म जिज्ञासा योग्यतामत्स।

विवेक, विरक्ति एवं छः अन्यगुण जिसमें शम आदि हैं तथा मुक्ति की इच्छा ये सब ब्रह्म प्राप्ति के पूर्व आवश्यक साधन हैं।

सबसे ऊपर है **''मोक्ष कारण सामग्यां**
भकित रेव गरीयसी
स्व स्वरूपानु संधानं
भक्ति रित्याभिधीयते''

मुक्ति साधनों में भक्ति सर्वोच्च है भक्ति स्वस्वरूपानुसंधान ही है।

ब्रह्मात्मैक बोध ही भक्ति है। अद्वैत ज्ञान का पथिक तो श्रवण, मनन और निदिध्यासन का अवलम्ब लेकर चलता है तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि

महावाक्यों के द्वारा साक्षात्कार करता है परम सत्य का इसी क्रम में वह उपासना करता है, मन्त्रों का पुरश्चरण करता है, अन्तर्याग, वहिर्याग पूर्ण करता है और अपनी आत्मा में ब्रह्म को पाता है।

अत: अद्वैत सिद्धि में ज्ञान और भक्ति दोनों आवश्यक हैं क्योकि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

जो जीवनमुक्त नहीं हैं उन पर किसी न किसी अनुपात में अविद्या व्याप्त है। इस अविद्या को हटाने हेतु परब्रह्म पर ध्यान रखना है और परदेवता का साधन सम्पन्न करना है जीवन के प्रत्येक क्षण में। आचार्य शंकर का कथन है कि ब्रह्म उपास्य है, सोपाधिक है जब तक अविद्या है। उसी क्रम में आचार्य ने माँ, शंकर एवं विष्णु के अनेक स्त्रोत भी लिखे हैं।

अत: स्पष्ट है कि जीवन्मुक्त भी देवताओं को पूजते ही हैं जिससे साधकों को प्रेरणा मिलती है।

श्री ललिता सहस्रनाम स्त्रोत परदेवता के महानतम् स्तोत्रों में है। परदेवता को ललिता कह कर ब्रह्माण्ड पुराण के ललितोपाख्यान में यह आया है। ब्रह्माण्ड पुराण के रचयिता वेदव्यास माने जाते हैं परन्तु यह स्तोत्र वाग्देवी रचित कहा गया है। कहा है कि कठोर तप और साधना पूर्ण करने पर भी अगस्त्य मुनि को अपने में आध्यात्मिक अतृप्ति का भाव हुआ और उन्होंने अपने गुरु से याचना की। गुरुदेव हयग्रीव के चरण पकड़ कर तीन वर्षो तक विनय किया कि आध्यात्मिक पर्याप्ति का अनुभव करा देवें।

इस तरह गुरु और शिष्य को देख कर ललिता ने अपने नाथ कामेश्वर के साथ प्रकट होकर गुरु हयग्रीव को ललिता त्रिंशती सुनाने को कहा जिसकी रचना स्वयं दोनो ने की थी। उन्होंने कहा कि गुप्तत्रिंशती से उनके शिष्य को मुँहमाँगा फल मिलेगा तथा लक्ष्य की प्राप्ति होगी। जिस पुण्य दर्शन को पाने हेतु त्रिमूर्त्ति भी लालायित रहते हैं उस स्वरूप का दर्शन पाकर हयग्रीव के आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने अगस्त्य से कहा कि तुम्हारे ऐसे शिष्य पाकर मैं धन्य हूँ जिसकी अपार भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे कामेश्वर और कामेश्वरी का दर्शन हुआ है। फिर ललिता देवी की आज्ञा के अनुकूल उन्होंने अपने शिष्य को अति रहस्यमय ललिता त्रिंशती का पाठ दिया जिसके याद कर लेने से ही हृदय पूर्ण मनोरथ हो जाता है। पञ्चदशी के एक-एक अक्षर पर बीस-बीस नामों की रचना है, सो बताया। ये नाम ही नहीं सभी मंत्र हैं,

सो भी उन्हें चेतावनी दी।

शंकर भाष्य अनेक ग्रन्थ के हैं पर त्रिशती का शांकर भाष्य वृहत् है। इनमें शब्दचयन, बुद्धि प्राखर्य और आचार्य की स्वानुभूतियाँ भी रखी हैं।

अतिशय कृपादृष्टि कर

विस्तारितां बहुविधां बहुभि: कृतां च

टीकां विलोकयतु मक्षमतां जनानाम्

अनेक ज्ञान सम्पन्न साधकों के हेतु इसकी रचना हुई। जो त्रिशती के गूढ़ अर्थों को समझने में असमर्थ हैं उन्हीं के लिए आचार्य शंकर का यह भाष्य हुआ।

सर्वपद्योगं विवेकभानु

जो सभी शब्दों को विवेक भानु की तरह प्रकाशित करता हो। सूत्र भाष्य तो नास्तिकों में भी अद्वैत भाव संचार करने वाला है परन्तु त्रिशती भाष्य प्रस्थानत्रयी भाष्य के जैसा है जिनमें अनेक उदाहरण हैं और विशेषत: उपासकों के लिए नितान्त उपयोगी है। अद्वैत सिद्धान्तों को उपासना क्रम के माध्यम से समझाया गया है। सन्देह, भ्रम दूर हो जाते हैं और अद्वैत साधना में भक्ति और उपासना का समावेश सार्थक सिद्ध होता है।

♦